MAPH 113

काण्ट का दर्शन

अनुक्रमणिका

खण्ड–1–काण्ट के दर्शन की सामान्य रुपरेखा 3–35

इकाई–1 काण्ट की समस्या

इकाई–2 कोपरनिकसीय क्रान्ति

इकाई–3 काण्ट की आलोचनात्मक पद्धति

इकाई–4 निर्णयों का वर्गीकरण–संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय

इकाई–5 ज्ञान की संभावना

खण्ड–2– अनुभवातीत संवेदनशास्त्र 36–50

इकाई–6 देश व काल का तात्त्विक निगमन

इकाई–7 देश व काल का अनुभवातीत निगमन

इकाई–8 देश व काल की इन्द्रियानुभविक वास्तविकता तथा पारमार्थिक प्रत्ययात्मकता

खण्ड–3– अनुभवातीत तर्कशास्त्र 51–65

इकाई–9 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का स्वरुप

इकाई–10 अनुभवातीत ज्ञान तथा उसका अनुभवातीत प्रयोग

इकाई–11 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का विभाजन

खण्ड–4–बुद्धिविकल्पों का तात्त्विक निगमन 66–85

(Metapysical Deduction of Categories)

इकाई–12 संप्रत्ययों का तात्त्विक निगमन

इकाई–13 बुद्धि विकल्पों एवं निर्णयों के प्रकार

इकाई–14 विज्ञानवाद का खण्डन

खण्ड–5– सिद्धान्तों की विश्लेषकी 86–105

इकाई–15 आकारायण

इकाई–16 तर्कबुद्धि के सिद्धान्त

इकाई–17 विज्ञानवाद का खण्डन

खण्ड–6–संवृत्ति तथा परमार्थ **106–130**

इकाई–18 संवृत्ति एवं परमार्थ तथा भ्रांति का तर्कशास्त्र

इकाई–19 अतीन्द्रिय मनोविज्ञान और अतीन्द्रिय सृष्टिशास्त्र

इकाई–20 ईश्वर विषयक युक्तियों का खण्डन

****

काण्ट का दर्शन

काण्ट के दर्शन की सामान्य रूपरेखा

समीक्षावाद के जनक इमैनुएल काण्ट विश्व के महानतम दार्शनिकों में से एक हैं। जो महत्ता प्लेटो और अरस्तू को ग्रीक दर्शन में प्राप्त है वही महत्ता काण्ट को पाश्चात्य दर्शन में प्राप्त है। उन्होने तत्समय प्रचलित बुद्धिवाद एवं अनुभववाद की समीक्षा के उपरान्त उन्हें एकांगी एवं आंशिक सत्य पाया और दोनों का समन्वय अपने समीक्षावाद में करने का कार्य किया। उनका मानना है कि ज्ञान अपनी सामग्री के लिए इन्द्रिय संवेदन पर निर्भर रहता है और उसे ज्ञान बनाने के लिए बुद्धि विकल्पों की सहायता लेता है। ज्ञान के इस इन्द्रियातीत स्वरूप के कारण काण्ट ने अपने दर्शन को अतीन्द्रिय या प्रागनुभविक (Tanscendental) कहा है।

काण्ट के दर्शन पर वुल्फ एवं लाइबनित्ज के बुद्धिवाद, लॉक एवं ह्यूम के अनुभववाद, रूसो के भावुकतावाद एवं न्यूटन के भौतिकी के सिद्धांतों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। ह्यूम के संशयवाद के प्रभाव से ज्ञान को बचाने के लिए उन्होंने ज्ञान को अनिवार्यता, सार्वभौमिकता एवं नवीनता से युक्त माना। इस सम्बन्ध में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना का सिद्धांत प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। द्वैतवाद एवं अज्ञेयवाद काण्ट के दर्शन के प्रमुख दोष हैं, किन्तु इन दोषों के बावजूद काण्ट की कीर्ति एवं महनीयता कम नहीं होती है। काण्ट के परवर्ती दार्शनिकों पर उनकी गहरी छाप है।

.....0000.....

खण्ड–1

इकाई: 1 – काण्ट की समस्या

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 काण्ट का जीवनवृत्त

1.3 काण्ट की दार्शनिक पृष्ठभूमि

1.4 काण्ट की रूढ़िवादी मोहनिद्रा

1.5 काण्ट के दर्शन में पूर्व–मान्यताएँ

1.6 बुद्धिवाद एवं अनुभववाद में व्याप्त अन्तर्विरोध

1.6.1 बुद्धिवाद

1.6.2 अनुभववाद

1.7 काण्ट द्वारा बुद्धिवाद एवं अनुभववाद की परीक्षा

1.8 काण्ट का समीक्षावाद

1.9 ह्यूम के संशयवाद से प्राकृतिक विज्ञानों की प्रामाणिकता का संदिग्ध होना

1.10 ह्यूम के संशयवाद के सम्बन्ध में काण्ट का मत

1.11 तत्त्वमीमांसा को विज्ञान के रूप में स्थापित करना

1.12 शब्दावली

1.13 प्रश्नावली

1.14 संदर्भित पुस्तकें

.....

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत काण्ट के दर्शन के सृजन से पूर्व दर्शन जगत में व्याप्त उन समस्याओं की विवेचना की गयी है, जिनका समाधान काण्ट अपने दर्शन में करने का प्रयास करते हैं। ये समस्याएँ निम्नलिखित हैं –

(क) बुद्धिवाद एवं अनुभववाद में व्याप्त अपूर्णता व एकांगिकता।

(ख) ह्यूम के संशयवाद से प्राकृतिक विज्ञानों की प्रामाणिकता का संदिग्ध होना।

(ग) परिकल्पनात्मक तत्त्वमीमांसीय भ्रांन्तियों के कारण तत्त्वमीमांसा का संदिग्ध होना।

1.1 प्रस्तावना

कोई भी दर्शन शून्य से उत्पन्न नहीं होता है बल्कि अपने देश-काल की पृष्ठभूमि एवं समस्याओं को प्रतिबिम्बित करता है। काण्ट के सम्बन्ध में भी यह कथन सार्थक है। काण्ट ने भी अपने दर्शन के सृजन के लिए अपने समय की प्रचलित दार्शनिक विचारधाराओं –बुद्धिवाद एवं अनुभववाद में व्याप्त अन्तर्विरोधों और उससे उत्पन्न समस्याओं को चुना। इस हेतु उन्होंने इन विचारधाराओं का सम्यक् अध्ययन एवं मूल्यांकन कर सबल एवं निर्बल पक्षों की पहचान की तथा इसमें व्याप्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनका समाधान दोनों के समन्वय पर आधारित है।

3. काण्ट का जीवन-वृत्त

जर्मन विचारक इमैनुअल काण्ट (1724–1804) विश्व के महानतम दार्शनिकों में से एक हैं। दर्शन जगत् में उनका प्रमुख योगदान अपने समय में प्रचलित विचारधाराओं– बुद्धिवाद एवं अनुभववाद का समन्वय करना है। उनके विचारों पर वुल्फ, लाइबनित्ज, ह्यूम एवं रूसो का प्रभाव परिलक्षित होता है।

काण्ट का जन्म 22 अप्रैल 1724 ई0 को तत्कालीन जर्मनी के प्रशिया प्रान्त के कोनिंग्सबर्ग (Konigsberg) (आधुनिक रूस का लेनिनग्राद) शहर में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा धार्मिक आन्दोलन से प्रभावित थी। काण्ट की परवर्ती शिक्षा कोनिंग्सबर्ग विश्वविद्यालय में हुई, जहाँ उन्होंने धर्म, धर्मशास्त्र गणित एवं भौतिकी की शिक्षा प्राप्त की। परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उन्हें शीघ्र शिक्षा समाप्त करके सम्पन्न परिवारों में शिक्षण का कार्य करना पड़ा। 1770 ई0 में उनकी नियुक्ति कोनिग्जवर्ग विश्वविद्यालय में तत्त्वमीमांसा एवं तर्कशास्त्र के प्राध्यापक पद पर हो गयी। काण्ट का सम्पूर्ण जीवन सरल संयमित एवं नैतिकता से परिपूर्ण था। उनके सन्दर्भ में कहा जाता है कि वे कभी अपने शहर से बाहर नहीं गये तथा समय के अत्यधिक पाबंद थे। वे आजीवन अविवाहित रहे। काण्ट का देहावसान 80 वर्ष की अवस्था में 28 फरवरी 1804 ई0 को कोनिंग्सबर्ग में हुआ।

काण्ट की प्रमुख कृतियों में 'शुद्ध बुद्धि की समीक्षा' (Critique of Pure Reason) 'व्यावहारिक बुद्धि की समीक्षा' (Critique of Practical Reason), निर्णय मीमांसा (Critique of Judgement) नीतिशास्त्र का तत्त्व विज्ञान (The Metaphysics of Ethics), 'प्राकृतिक विज्ञान के तात्त्विक आधार' (The Metaphysical Foundations of Natural Science), 'किसी भावी तत्त्वमीमांसा का उपोद्घात' (Prolegomena to any future Metaphysics) इत्यादि हैं। काण्ट ने अपनी कृति 'सामान्य प्राकृतिक इतिहास एवं खगोल सिद्धांत'

(General Natural History and the theory of the Heavens) में सौर मण्डल की उत्पत्ति के इतिहास पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। जिसने कालान्तर में 'लाप्लास की निहारिका' परिकल्पना' का रूप लिया।

समीक्षावाद काण्ट द्वारा दर्शन को दी गई अनुपम भेंट है। काण्ट के दर्शन में तर्कबुद्धि, इन्द्रियानुभव एवं नैतिकता का अनूठा समन्वय है। काण्ट के आलोचक उनकी दार्शनिक स्थापनाओं से सहमत या असहमत हो सकते हैं, किन्तु उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। शोपेनहावर के शब्दों में, 'जिस दार्शनिक ने काण्ट को ठीक से नहीं समझा, वह दार्शनिक बाल बुद्धि वाला ही रह जाता है।'

1.2 काण्ट की दार्शनिक पृष्ठभूमि

काण्ट के प्रारंभिक काल में उन पर बुद्धिवादी मताग्रही वुल्फ एवं लाइबनित्ज का प्रभाव दिखता है। उनका कहना है कि तर्कबुद्धि से ज्ञान में निश्चयात्मकता एवं सार्वभौमिकता तो आ सकती है, किन्तु वास्तविकता एवं नवीनता के समावेश हेतु बुद्धि के साथ अनुभव की भी आवश्यकता होती है। इस हेतु उन्होंने ब्रिटिश अनुभववादी दार्शनिक डेविड ह्यूम का अध्ययन किया। यहाँ उन्होंने पाया कि ह्यूम ने अपने तर्कों के द्वारा बुद्धिवाद का खण्डन तो कर दिया किन्तु साथ ही अनुभववादी मार्ग का सम्यक् अनुसरण करने के कारण उनका दर्शन संशयवाद में परिणत हो जाता है, और समस्त प्राकृतिक विज्ञानों की प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाती है। इस प्रकार काण्ट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुद्धिवाद के समान ही अनुभववाद भी एकांगी विचारधारा है और ज्ञान में निश्चयात्मकता एवं वास्तविकता के लिए बुद्धि के साथ अनुभव भी अनिवार्य है। इसी सन्दर्भ में कहा जाता है कि ह्यूम ने काण्ट को मोहनिद्रा से जगा दिया। काण्ट के दर्शन पर फ्रांसीसी विचारक रूसो का भी प्रभाव दृष्टव्य है। काण्ट, रूसो के निबंध संग्रह **'एमिली'** (Emile) से अत्यधिक प्रभावित थे। इस कृति में रूसो ने बुद्धि के बजाय आस्था एवं अनुभूतियों के महत्त्व को विशेष रूप से रेखांकित किया है।

1.4 काण्ट की रूढ़िवादी मोहनिद्रा–

काण्ट की रूढ़िवादी मोहनिद्रा से तात्पर्य उसकी बुद्धि के प्रति प्रबल आस्था से है। उसका मानना था कि केवल विशुद्ध बुद्धि के द्वारा ही यथार्थ, सत् का ज्ञान हो सकता है। काण्ट का अपनी प्रारंभिक अवस्था में मानना था कि ईश्वर का प्रत्यय एवं ईश्वर के अस्तित्त्व में अनिवार्य सम्बन्ध है। मनुष्य इन्द्रिय प्रत्यक्ष के अभाव में भी शुद्ध-बुद्धि की सहायता से जगत के समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। विशुद्ध बुद्धि को ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र साधन मानना ही काण्ट की रूढ़िवादी मोहनिद्रा है। काण्ट ने जब ह्यूम का अध्ययन किया तो उसकी रूढ़िवादी मोहनिद्रा भंग हो गयी। कालान्तर में उसके दर्शन में तर्कबुद्धि एवं इन्द्रियानुभव का समन्वय दिखायी देता है।

1.5 काण्ट के दर्शन में पूर्वमान्यताएँ

काण्ट ने समीक्षावाद के अन्तर्गत तर्कबुद्धि एवं इन्द्रियानुभव का समन्वय तो कर कर दिया किन्तु उसका समीक्षावाद पूर्वमान्यताओं से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सका। काण्ट के दर्शन में सामान्यतः तीन प्रकार की पूर्वमान्यताएँ दिखायी देती हैं– मनोवैज्ञानिक पूर्वमान्यताएँ, तार्किक पूर्वमान्यताएँ एवं तात्त्विक पूर्वमान्यताएँ।

(क) मनोवैज्ञानिक पूर्वमान्यताओं का सम्बन्ध मानवीय मनोविज्ञान से है। इन्हें काण्ट द्वारा किए गए निर्णयों एवं अनुमानों के वर्गीकरण में देखा जा सकता है।

जैसे काण्ट संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक निर्णयों के वर्गीकरण में मनौवैज्ञानिक पूर्वमान्यता से ग्रसित दिखाई देते हैं।

(ख) तार्किक पूर्वमान्यताओं का सम्बन्ध तर्क से है। काण्ट जब अतीन्द्रिय रूपों और बुद्धि-विकल्पों की बात करते हैं तब तार्किक पूर्वमान्यताएँ उभर कर सामने आती हैं।

जैसे काण्ट बुद्धि के 12 विकल्पों की बात करते हैं और इन्हें भौतिक जगत तक सीमित करते हैं। यहाँ तार्किक पूर्वमान्यता स्पष्ट हो जाती है।

(ग) तात्त्विक पूर्वमान्यता का सम्बन्ध तत्त्वमीमांसा से है। काण्ट जब वस्तु-तन्मात्र की बात करते हैं (Things-in-themselves) की बात करते हैं तो तात्त्विक पूर्वमान्यता स्पष्ट हो जाती है।

1.6 बुद्धिवाद एवं अनुभववाद में व्याप्त अन्तर्विरोध

काण्ट के पूर्व पाश्चात्य दर्शन में दो दार्शनिक विचारधाराएँ बुद्धिवाद एवं अनुभववाद प्रचलित थीं। इन दोनों विचारधाराओं में व्यापक अन्तर्विरोध व्याप्त था।

1.6.1 बुद्धिवाद

बुद्धिवाद वह दार्शनिक विचारधारा हे जो ज्ञान के अन्तिम स्रोत के रूप में मानवीय तर्कबुद्धि को स्वीकार करती है। उसके अनुसार बुद्धि अपने स्वतः सिद्ध और सार्वभौम नियमों द्वारा तत्त्वज्ञान कर सकती है। इस धारा के प्रमुख विचारक स्पिनोजा, लाइबनित्ज इत्यादि हैं। इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

- यह ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र स्रोत तर्कबुद्धि को मानती है।
- यह ज्ञान को अनिवार्य एवं सार्वभौम मानती है।
- यह बुद्धि में ज्ञान प्राप्त करने की जन्मजात क्षमता को स्वीकार करती है अर्थात् बुद्धि ज्ञान के जन्मजात प्रत्ययों के साथ जगत में अस्तित्त्ववान होती है।
- बुद्धिवादी ज्ञान प्राप्ति के क्रम में निगमनात्मक विधि पर विशेष बल देते हैं।

1.6.2 अनुभववाद

अनुभववाद वह दार्शनिक विचारधारा है जो ज्ञान प्राप्ति के अन्तिम स्रोत के रूप में इन्द्रियानुभव को स्वीकार करती हैं। इस धारा के प्रमुख विचारक लाक, बर्कले, ह्यूम इत्यादि हैं। इस विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

- यह ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र स्रोत इन्द्रियानुभव को मानती है।
- यह ज्ञान को नवीन, वास्तविक एवं संभाव्य मानती है।
- यह बुद्धि में ज्ञान प्राप्ति के जन्मजात प्रत्ययों की उपस्थिति का निषेध करती है अर्थात ज्ञान बुद्धि में जन्मजात न होकर अनुभव से आता है।
- अनुभववादी ज्ञान प्राप्ति के क्रम में आगमनात्मक विधि पर विशेष बल देते हैं।

1.7 काण्ट द्वारा बुद्धिवाद एवं अनुभववाद की परीक्षा

काण्ट के अनुसार बुद्धिवाद एवं अनुभववाद दोनों ही एकांगी विचारधाराएँ हैं। जहाँ बुद्धिवाद ज्ञान को अनिवार्य एवं सार्वभौम मानते हुए बुद्धि को ही ज्ञान प्राप्ति का अन्तिम स्रोत मानता है और इन्द्रियानुभव की उपेक्षा करता है, जिससे बुद्धिवाद की परिणति रूढ़िवाद में होती है जहाँ नवीन ज्ञान की संभावना समाप्त हो जाती है। वहीं अनुभववाद ज्ञान को संभाव्य, वास्तविक एवं नवीन मानते हुए इन्द्रियानुभव को ज्ञान प्राप्ति का अन्तिम स्रोत मानती है और तर्कबुद्धि की उपेक्षा करती है। जिससे ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता के अभाव में अनुभववाद की परिणति संशयवाद में होती है। काण्ट के अनुसार ज्ञान के लिए अनिवार्यता, वास्तविकता एवं नवीनता तीनों अनिवार्य हैं जो तर्कबुद्धि एवं इन्द्रियानुभव के समन्वय से ही आ सकती है। काण्ट अपने समीक्षावाद में तर्कबुद्धि एवं अनुभव का समन्वय करते हैं।

1.8 काण्ट का समीक्षावाद

काण्ट ज्ञान की सृष्टि के लिए इन्द्रियानुभव एवं बौद्धिक आकार दोनों को अनिवार्य मानते हैं। इन्द्रियानुभव से ज्ञान की सामग्री प्राप्त होती है और बुद्धि उन्हें अपने आकारों द्वारा व्यवस्थित करती है। ज्ञान की सृष्टि के लिए इनमें से किसी भी घटक की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। काण्ट के इस ज्ञान सम्बन्धी सिद्धांत को समीक्षावाद या आलोचनावाद के नाम से जाना जाता है।

1.9 ह्यूम के संशयवाद से प्राकृतिक विज्ञानों की प्रामाणिकता का संदिग्ध होना

संशयवाद, ऐसी विचारधारा है जो इन्द्रियानुभव से प्राप्त ज्ञान को संभाव्य या संदिग्ध मानती है अर्थात् यह मानती है कि किसी वस्तु के विषय में निश्चयात्मक एवं असंदिग्ध ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। संशयवाद की सर्वप्रथम झलक सोफिस्ट दार्शनिकों में दिखती है। आधुनिक दार्शनिक देकार्त एवं ह्यूम के दर्शन में भी संशयवाद परिलक्षित होता है। जहाँ सोफिस्ट दार्शनिक पाइरो उग्र संशयवादी, देकार्त विधितः संशयवादी एवं ह्यूम विनम्र संशयवादी हैं। उग्र संशयवाद किसी भी ज्ञान की सम्भावना का निषेध करता है। विधितः संशयवाद संशय को ज्ञान प्राप्ति की विधि के रूप में प्रयोग करता है, जहाँ संशय ज्ञान प्राप्ति का साधन है। ह्यूम के दर्शन में संशयवाद का परिष्कृत या विनम्र रूप देखने को मिलता है। ह्यूम के अनुसार यदि अनुभववाद की विसंगतियों को दूर कर दिया जाये तो अनुभववाद का रूपान्तरण संशयवाद में हो जाता है। यह विनम्र संशयवाद है जो प्रक्रिया का परिणाम है।

ह्यूम कहते हैं कि इन्द्रियानुभव के आधार पर केवल भौतिक जगत के बाह्य स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जो देश, काल, वस्तु एवं घटना विशेष से सम्बन्धित होता है। यह संभाव्य होता है। इसमें कार्य-कारण की भी बात नहीं की जा सकती है क्योंकि कार्य-कारण सम्बन्ध सामान्य है। जबकि ज्ञान वस्तु-विशेषों तक सीमित होता है। ह्यूम कारणता को मनोवैज्ञानिक विश्वास कहकर इसकी अनिवार्यता का निषेध करते हैं। इस प्रकार ह्यूम ने कारणता का खण्डन कर विज्ञान जगत में अनिश्चितता उत्पन्न कर दी। ह्यूम गणित एवं तर्कशास्त्र में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता को स्वीकार करते हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध अमूर्त प्रत्ययों से है, जो विश्लेषणात्मक प्रागनुभविक अर्थात अनुभव से परे है। यदि गणित एवं तर्कशास्त्र का सम्बन्ध वस्तु जगत से किया जाये तो इनकी अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता खण्डित हो जाती है।

जैसे – 1+1=2 (गणित)

1 बूँद + 1 बूँद = 1 बूँद (वस्तु जगत से सम्बन्धित करने पर)

1.10 ह्यूम के संशयवाद के सम्बन्ध में काण्ट का मत

काण्ट, ह्यूम के मत से असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि देश (Space) तथा प्रकृति का प्रागनुभविक ज्ञान संभव है। इनके सम्बन्ध में सार्वभौम एवं अनिवार्य निर्णयों की स्थापना की जा सकती है। काण्ट कहते हैं कि इन निर्णयों को इन्द्रियानुभव से निगमित नहीं किया जा सकता है किन्तु इन्द्रियानुभव से इनकी सत्यता सिद्ध की जा सकती है। काण्ट का मत है कि विज्ञान के सिद्धांत न तो केवल इन्द्रियानुभव पर आधारित होते हैं और न केवल परिकल्पनात्मक तत्त्वमीमांसीय चिन्तन का विषय है बल्कि ये विज्ञान को दृढ़ आधार प्रदान करने वाली तत्त्व मीमांसा पर आधारित है। काण्ट अपनी कृति 'क्रिटिक आफ प्योर रीजन' 'ट्रान्सेडेंटल एस्थेटिक' एवं 'ट्रान्सेडेंटल एनालिटिक' में इसी समस्या पर सविस्तार चर्चा कर प्राकृतिक विज्ञानों की प्रमाणिकता की रक्षा करने का प्रयास करते हैं।

1.11 तत्त्वमीमांसा को विज्ञान के रूप में स्थापित करना

काण्ट परिकल्पनात्मक तत्त्वमीमांसा की भ्रान्तियों का निराकरण कर तत्त्वमीमांसा को विज्ञान के रूप में स्थापित करना चाहते हैं। उनका मानना है कि विज्ञान के रूप में स्थापित तत्त्वमीमांसा बुद्धि के विप्रतिषेधों से मुक्त होगी, जिससे मानवीय बुद्धि की सहज तत्त्वमीमांसीय जिज्ञासा भी शांत हो सकेगी। यह नैतिकता के संरक्षण में भी सहायक सिद्ध होगी। काण्ट मानवीय जीवन में विज्ञान के साथ नैतिकता को भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण मानते हैं किन्तु इन्द्रियजन्य ज्ञान की चरम परिणति संशयवाद में होने से विज्ञान एवं नैतिकता दोनों के ही सम्मुख अस्तित्त्व की चुनौती उत्पन्न हो गयी थी। काण्ट ने संशयवाद की इस चुनौती को स्वीकार किया और तर्कबुद्धि एवं इन्द्रियानुभव का समन्वय अपने समीक्षावाद के द्वारा करके परिकल्पनात्मक तत्त्वमीमांसा के स्थान पर अन्तर्वर्ती तत्त्वमीमांसा की स्थापना की, जो तत्त्वमीमांसा को एक विज्ञान के रूप में स्थापित कर संशयवाद के निराकरण का सम्यक प्रयास है।

अतएव कहा जा सकता है कि काण्ट ने अपनी सूक्ष्मवेषी दृष्टि से अपने समय की दार्शनिक समस्याओं को पहचाना और दूर द्रष्टा विचारक की भाँति इनका सम्यक् समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उन्होंने दार्शनिक जगत को 'समीक्षावाद' नामक एक नवीन दार्शनिक प्रणाली से परिचित कराया। उन्होंने ज्ञान को भिन्न प्रकार से परिभाषित किया तथा संशयवाद से उत्पन्न प्राकृतिक ज्ञान की संदिग्धता को सशक्त तत्त्वमीमांसीय आधार प्रदान कर निराकृत किया।

1.12 शब्दावली

(1) प्रागनुभविक – इन्द्रिय-अनुभव से पहले।

(2) अमूर्त – जो निराकार, निरवयव एवं अप्रत्यक्ष है।

(3) तत्त्वमीमांसा–दर्शन की वह शाखा जो ब्रह्माण्ड के **परम तत्त्व के स्वरूप का अध्ययन** करती है।

(4) विप्रतिषेध– एक विषय के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी निष्कर्ष।

(5) पूर्व मान्यता– पहले से प्रचलित परम्परा को बिना तर्क के स्वीकारना।

(6) परिकल्पनात्मक तत्त्वमीमांसा– इन्द्रिय-सम्वेदनों के अभाव में केवल बुद्धि के आधार पर अतीन्द्रिय जगत का ज्ञान प्राप्त करने का दावा करना।

1.13 प्रश्नावली

लघु-उत्तरीय प्रश्न

(1) काण्ट के दर्शन की प्रमुख समस्याएँ बताएं।

(2) काण्ट की दार्शनिक पृष्ठभूमि का वर्णन करें।

(3) बुद्धिवाद की प्रमुख विशेषताएँ बताएं।

(4) अनुभववाद की प्रमुख विशेषताएँ बतायें।

(5) काण्ट के दर्शन की पूर्वमान्यताएँ क्या हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) समीक्षावाद, बुद्धिवाद एवं अनुभववाद का समन्वय है, सिद्ध करें।

(2) संशयवाद ने प्राकृतिक विज्ञानों की प्रामाणिकता किस प्रकार संदिग्ध की। काण्ट द्वारा इसके निराकरण को प्रस्तुत करें।

(3) काण्ट की दार्शनिक समस्याओं पर संक्षिप्त निबन्ध लिखें।

1.14 संदर्भित पुस्तकें

(1) काण्ट का दर्शन : सभाजीत मिश्र

(2) काण्ट का दर्शन : संगम लाल पाण्डेय

****

खण्ड 1

इकाईः 2 – कोपरनिकसीय क्रांति

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 कोपरनिकसीय क्रांति का अर्थ।

2.3 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है' का अर्थ।

2.4 काण्ट के सिद्धांत को क्रांति क्यों कहा जाता हैं?

2.5 कोपरनिकस एवं काण्ट की क्रान्तियों की तुलना

2.6 बुद्धि की शक्ति का स्रोत

2.7 ज्ञान वस्तु-केन्द्रित है या आत्म-केन्द्रित या बुद्धि-केन्द्रित

2.7.1 ज्ञान वस्तु-केन्द्रित है

2.7.2 ज्ञान आत्म-केन्द्रित है

2.7.3 ज्ञान बुद्धि-केन्द्रित है

2.8 संवेदना का स्रोत

2.9 ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया

2.10 बुद्धि-केन्द्रित ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता

2.11 बुद्धि-केन्द्रित ज्ञान में वैविध्य

2.12 ज्ञान वास्तविक है या काल्पनिक

2.13 शब्दावली

2.14 प्रश्नावली

2.15 उपयोगी पुस्तकें

.....00.....

2.0 उद्देश्य

कोपरनिकसीय क्रांति इकाई के अन्तर्गत ज्ञानमीमांसीय क्षेत्र में काण्ट के वक्तव्य 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है' (Understanding Makes Nature) का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत कोपरनिकस की खगोलिकी के क्षेत्र में की गयी क्रांति के साथ तुलना करके दर्शन की प्रमुख विचारधाराओं–बुद्धिवाद एवं अनुभववाद के तत्त्वमीमांसीय निष्कर्षों के साथ ही इसका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। ज्ञान वस्तु-केन्द्रित है या आत्म-केन्द्रित या बुद्धि-केन्द्रित इस विषय पर सविस्तार चर्चा प्रस्तुत की गयी है। संवेदनों के स्रोत, ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया, ज्ञान में वैविध्य, अनिवार्यता, सार्वभौमिकता इत्यादि कहां से आता है, इस सन्दर्भ में काण्ट के मत को प्रमुखता से दर्शाया गया है।

2.1 प्रस्तावना

किसी भी क्षेत्र में कुछ सिद्धांत या घटनाएँ ऐसी होती हैं जो सम्बन्धित क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन लाने का कार्य करते हैं। ये प्रचलित व्यवस्था एवं सिद्धांतों के सम्मुख चुनौती प्रस्तुत करते हैं। मध्य काल में समाज सुधार की दृष्टि से देखा जाये तो पुनर्जागरण आन्दोलन ऐसी ही घटना है जिसने रूढ़िवादी, जर्जर धार्मिक परम्पराओं में जकड़े समाज को धर्म के चंगुल से मुक्त कराकर प्रगति, विज्ञान एवं आधुनिक मूल्यों से जोड़ने का कार्य किया। खगोलिकी के क्षेत्र में ऐसा ही कार्य कोपरनिकस के सूर्य–केन्द्रित ब्रह्माण्ड सिद्धांत ने किया, जिसने भू-केन्द्रित ब्रह्माण्ड की व्यवस्था को सूर्य-केन्द्रित बताकर खगोलिकी में क्रान्तिकारी बदलाव किया। दर्शन के क्षेत्र में यही कार्य करने का श्रेय काण्ट को दिया जाता है, जिसने 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है' वक्तव्य देकर वस्तु-केन्द्रित या आत्म-केन्द्रित ज्ञान को बुद्धि-केन्द्रित बताकर दर्शन के क्षेत्र में कोपरनिकसीय क्रांति लाने का कार्य किया।

2.2 कोपरनिकसीय क्रान्ति का अर्थ

कोपरनिकसीय क्रांति का सामान्य अर्थ खगोलिकी के क्षेत्र में कोपरनिकस द्वारा पूर्व-प्रचलित भू–केन्द्रित ब्रह्माण्ड सिद्धांत को सूर्य-केन्द्रित ब्रह्माण्ड सिद्धांत में बदलने से है। किन्तु दर्शन के क्षेत्र में कोपरनिकसी क्रांति से तात्पर्य–जिस प्रकार खगोलिकी के क्षेत्र में दीर्घकालीन परम्परा से चले आ रहे भू-केन्द्रित ब्रह्माण्ड सिद्धांत को सूर्य–केन्द्रित होने का दावा किया, उसी प्रकार दर्शन के क्षेत्र में काण्ट ने ज्ञान को वस्तु-केन्द्रित या आत्म-केन्द्रित होने के स्थान पर बुद्धि-केन्द्रित होने का दावा करने से है। इस सन्दर्भ में काण्ट ने घोषणा की कि 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है।'

पोलिश (पोलैण्ड) खागोलविद् निकोलस कोपरनिकस (Nicolaus Copernicus 1443–1543ई0) से पूर्व नक्षत्र विज्ञान में यह धारणा प्रचलित थी कि पृथ्वी स्थिर है सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है। इसे भू–केन्द्रीय सिद्धांत (Geo-Centric Theory) के रूप में जाना जाता है। यह विचार ग्रीक दार्शनिक अरस्तू (384ई0पू0–322ई0पू0) एवं मिस्र के खगोलविद एवं ज्योतिषी क्लाडियस टालमी (100ई0–176ई0) ने प्रस्तुत किया। 1500–2000 वर्षों तक यह विचार जन-सामान्य में धारणा के रूप में बना रहा। यह विचार धार्मिक ग्रन्थों का भी हिस्सा बन गया और धर्म के प्रभाव के कारण इस धारणा को चुनौती देने का साहस कोई नहीं जुटा सका। कोपरनिकस ने 1503 में अपनी पुस्तक 'कोमेंटेरिओलस' (Commentariolus) में इस

विचार को चुनौती पेश की, जिसमें कोपरनिकस ने वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर यह बताया कि ब्रह्माण्ड के केन्द्र में सूर्य है और पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है। इसे सूर्य-केन्द्रित सिद्धांत कहा गया। इसने खगोलिकी के क्षेत्र में क्रान्ति लाने का कार्य किया।

दर्शन जगत में काण्ट ने पाया कि अभी तक ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में प्रमुखतः वस्तु-केन्द्रित ज्ञान सिद्धांत एवं आत्म-केन्द्रित ज्ञान सिद्धांत प्रचलित है। वस्तु-केन्द्रित ज्ञान सिद्धांत के अनुसार समस्त मानवीय ज्ञान बाह्य जगत के पदार्थों के अनुकूल है। यह अनुभवजन्य है। इस सिद्धांत से निष्कर्ष निकलता है कि 'प्रकृति बुद्धि का निर्माण करती है।' काण्ट ने इसे आनुभविक सोपाधिकता कहा है। पूर्व प्रचलित इस सिद्धांत के आलोक में पदार्थों के सम्बन्ध में सम्प्रत्ययों के माध्यम से प्रागनुभविक रूप से कोई कथन नहीं किया जा सकता है। काण्ट के अनुसार किसी पदार्थ के सम्बन्ध में निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसे आनुभविक सोपाधिकता के स्थान पर अतीन्द्रिय सोपाधिकता से जोड़ना होगा। यहाँ काण्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए मानवीय इन्द्रियों की अपेक्षा बुद्धि को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस सम्बन्ध में काण्ट कहते हैं कि 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है।'

2.3 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है' का अर्थ।

दर्शन जगत में काण्ट की उक्ति 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है को पर्याप्त महत्त्व दिया जाता है।' जब काण्ट यह कहते हैं कि बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है तो यहाँ काण्ट का आशय तत्त्व-मीमांसीय (सत्ता) के अर्थ में बुद्धि द्वारा जगत का निर्माण करने से नहीं है। जिस प्रकार मिट्टी से घड़े का निर्माण होता है या लकड़ी से मेज का निर्माण होता है। यहाँ बुद्धि द्वारा जगत के निर्माण का तात्पर्य ज्ञानमीमांसीय है। काण्ट का मानना है कि बुद्धि–विकल्पों के अभाव में जगत की कोई भी वस्तु हमारे अनुभव का विषय नहीं हो सकती है क्योंकि जागतिक वस्तुएँ संवेदन के माध्यम से इन्द्रियानुभव का विषय होती हैं। संवेदन से प्राप्त सामग्री जो अस्त–व्यस्त एवं विश्रृंखल होती है जब तक बुद्धि–विकल्पों के माध्यम से नियमित और व्यवस्थित न हो जाये तब तक ज्ञान का स्वरूप नहीं ले सकती है। काण्ट इसी संदर्भ में कहते हैं कि बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है।

2.4 काण्ट के सिद्धांत को क्रान्ति क्यों कहा जाता है?

क्रांति से तात्पर्य परम्परागत रूप से स्थापित विचारों, धारणा या व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन करने से है काण्ट से पूर्व दर्शन जगत में यह ज्ञानमीमांसीय मान्यता भलीभाँति स्थापित थी कि मानवीय बुद्धि की संरचना प्रकृति की संरचना के अनुरूप होती है। किन्तु काण्ट ने इस विचार को उलट दिया। काण्ट ने यह दावा किया कि प्रकृति की संरचना का ज्ञान बुद्धि के सार्वभौम एवं अनिवार्य नियमों के प्रागनुभविक प्रत्ययों के अनुरूप होता है। काण्ट कहते हैं कि मेरी बुद्धि प्रकृति से प्राप्त संवेदनों को ज्ञान के जिस रूप में व्यवस्थित करती है, मैं प्रकृति को उसी रूप में जानता हूँ। काण्ट से पूर्व जहाँ ज्ञान के केन्द्र में बाह्य जगत या प्रकृति थी वहीं काण्ट ने बुद्धि को ज्ञान के केन्द्र में स्थापित कर दिया। यह ज्ञानमीमांसीय क्षेत्र में आमूल परिवर्तन था। अतएव काण्ट के ज्ञानमीमांसीय मत को क्रांति (कोपरनिकसीय क्रांति) की संज्ञा दी जाती है।

2.5 कोपरनिकस एवं काण्ट की क्रान्तियों की तुलना

प्राथमिक तौर पर देखा जाये तो कोपरनिकस की क्रांति का सम्बन्ध नक्षत्र विज्ञान से है जबकि काण्ट की क्रांति का सम्बन्ध दर्शन जगत की ज्ञानमीमांसा से है। किन्तु मानव के विशेष सन्दर्भ में कुछ

विचारकों का मानना है कि कोपरनिकस की क्रांति एवं काण्ट की क्रांति परस्पर विपरीत है क्योंकि कोपरनिकस ने पृथ्वी के रूप में ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थापित मानव को केन्द्र से विस्थापित कर परिधि पर ढकेल दिया जबकि काण्ट ने परिधि पर स्थित मानवीय बुद्धि को परिधि से विस्थापित कर ज्ञान के केन्द्र में स्थापित कर दिया।

काण्ट की क्रान्ति विषयीवादी है अैर कोपरनिकस की क्रान्ति विषयवादी है। इस अन्तर के कारण काण्ट की क्रांति कोपरनिकस की क्रांति नहीं है। इस आपत्ति के उत्तर में प्रो0 संगम लाल पाण्डेय का कहना है कि काण्ट की क्रांति लाक्षणिक अर्थ में कोपरनिकस क्रांति है। जैसे कोपरनिकस ने खगोल विज्ञान में प्राचीन सिद्धांत को गलत काटकर एक सर्वथा नवीन सिद्धांत स्थापित किया उसी प्रकार काण्ट ने भी ज्ञान मीमांसा की स्थापना की। इसी नवीनता के अर्थ में काण्ट की क्रांति कोपरनिकस क्रांति है।

किन्तु कुछ अन्य विचारकों का मत उपर्युक्त से भिन्न है। उनका मानना है कि कोपरनिकस ने पृथ्वी को ब्रह्माण्ड के केन्द्र से विस्थापित कर यह सिद्ध किया कि सूर्य में प्रतीत होने वाली गति वास्त्व में पृथ्वी की है। जब यह गति सूर्य पर अध्यस्त हो जाती है तो सूर्य एवं अन्य ब्रह्माण्डीय पिण्ड गतिशील प्रतीत होते हैं और पृथ्वी स्थिर प्रतीत होती है। काण्ट का मत है कि देश, काल, द्रव्य इत्यादि परामर्श के लक्षण नहीं है अपितु बुद्धि के लक्षण हैं और इन लक्षणों से युक्त प्रतीत होने वाले सत् न होकर आभास हैं।

2.6 बुद्धि की शक्ति का स्रोत

काण्ट का मानना है कि बुद्धि को शक्ति विशुद्ध आत्म तत्त्व से प्राप्त होती है। विशुद्ध आत्म तत्त्व जीवात्मा एवं द्रव्य से भिन्न अमूर्त तत्त्व है। इसकी संवेदना प्राप्त नहीं होती है यह ज्ञान का आधार है क्योंकि बुद्धि की इसी शक्ति को प्राप्त संवेदनों को ज्ञान में रूपान्तरित करती है। यही विशुद्ध आत्म तत्त्व विविध ज्ञानों में एकरूपता का आधार है। विविध मनुष्यों की बुद्धि अलग–अलग होने के बावजूद सभी के ज्ञान में एकरूपता पायी जाती है। जगत की एकरूपता के मूल में विशुद्ध आत्मतत्त्व की एकरूपता है। विशुद्ध आत्मतत्त्व को स्वीकार करके काण्ट ने अपने दर्शन को 'अहंमात्रवाद' के दोष से बचाने का कार्य किया।

2.7 ज्ञान वस्तु-केन्द्रित है या आत्म-केन्द्रित या बुद्धि-केन्द्रित

पाश्चात्य दर्शन में ज्ञान की केन्द्रिकता के सम्बन्ध में मतवैविध्य है। इस सम्बन्ध में सामान्यतः तीन प्रकार के मत उभर कर सामने आते हैं जो इस प्रकार हैं –

2.7.1 ज्ञान वस्तु-केन्द्रित है–

पाश्चात्य अनुभववादी विचारक जान लॉक का मानना है कि ज्ञान वस्तु-केन्द्रित है। अर्थात मानव का ज्ञान बाह्य जगत के अनुरूप होता है। हमारे ज्ञान के केन्द्र में बाह्य वस्तुएँ हैं। लॉक कहते हैं कि ज्ञान की इकाई प्रत्यय है और प्रत्ययों से ज्ञान का निर्माण होता है। इन प्रत्ययों की उत्पत्ति बाह्य वस्तु से होती है और यह प्रत्यय बाह्य वस्तु का ही प्रतिनिधित्त्व करते हैं। लॉक के अनुसार ज्ञान के निर्माण में बुद्धि की भूमिका निष्क्रिय है।

लॉक का मत है कि बुद्धि एक कोरे कागज के समान है। जिस प्रकार कोरे कागज पर कोई भी किसी प्रकार की रेखाएं खींच सकता है। किसी कागज पर किस प्रकार की रेखाएं खींची जायेंगी, यह चुनाव करने का अधिकार कागज का नहीं होता है। बुद्धि बाह्य जगत से प्राप्त संवेदनों को मात्र ग्रहण करने का कार्य करती है। उदाहरणार्थ–जिस प्रकार कैमरा बाह्य वस्तु की तस्वीर को ज्यों का त्यों प्रस्तुत

करने का कार्य करता है ठीक उसी प्रकार मानवीय बुद्धि बाह्य वस्तु का ज्ञान उसी रूप में प्राप्त करती है जिस रूप में वस्तु अस्तित्त्ववान है। इस प्रकार ज्ञान के निर्माण के क्रम में बाह्य वस्तु प्रमुख एवं सक्रिय भूमिका के साथ केन्द्र में स्थापित है जबकि बुद्धि की भूमिका गौण, निष्क्रिय एवं संग्रहकर्ता की है।

2.7.2 ज्ञान आत्म-केन्द्रित है

अनुभववादी धारा के अन्य विचारक जार्ज बर्कले, लॉक के मत 'ज्ञान वस्तु-केन्द्रित है' से सहमत नहीं है। बर्कले का मानना है कि ज्ञान आत्म-केन्द्रित है। बर्कले के अनुसार ज्ञान का निर्माण प्रत्ययों से होता है और प्रत्ययों की सृष्टि आत्मा में होती है। इन प्रत्ययों के प्रतिनिधि के रूप में बाह्य वस्तुको स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि बाह्य वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता है। आत्म एवं आत्मा के प्रत्ययों की ही सत्ता है। अतः ज्ञान आत्म-केन्द्रित है।

2.7.3 ज्ञान बुद्धि-केन्द्रित है

काण्ट ज्ञान को न तो वस्तु-केन्द्रित मानते हैं और न ही आत्म-केन्द्रित मानते हैं अपितु वे ज्ञान को बुद्धि-केन्द्रित मानते हैं। काण्ट का मत है कि हमें बाह्य जगत से संवेदनों के रूप में सामग्री प्राप्त होती है, जो अस्त-व्यस्त विश्रृंखल एवं क्षणिक होती है। बुद्धि अपने प्रागनुभविक विकल्पों के द्वारा इसे नियमित एवं व्यवस्थित करती है। यदि बुद्धि के प्रागनुभविक आकार (बुद्धि-विकल्प) बाह्य जगत से प्राप्त संवेदनों को नियमित एवं व्यवस्थित न करें तो हमें बाह्य जगत का ज्ञान नहीं हो सकता है। बुद्धि हमें जिस रूप में व्यवस्थित करती है, हम बाह्य जगत को उसी रूप में जानते हैं। अतः ज्ञान बुद्धि केन्द्रित है।

अग्रेतर काण्ट कहते हैं कि बुद्धि अनुभव की दासी नहीं है जैसा कि अनुभववादी विचारक मानते हैं। बुद्धि अनुभव की स्वामिनी एवं नियमनकर्ता है। अनुभववादियों के मत के विपरीत काण्ट कहते हैं कि बुद्धि इन्द्रिय-संवेदनों को निष्क्रिय रूप में ग्रहण नहीं करती अपितु सक्रिय रूप में ज्ञान के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती है। काण्ट कहते हैं कि बुद्धि से ही प्राकृतिक नियमों में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता का समावेश होता है। बुद्धि प्रकृति के समीप शिष्य बनकर नहीं जाती अपितु एक न्यायाधीश के समान प्रकृति से प्रश्न पूछती है और उसका उत्तर देने के लिए प्रकृति को बाध्य करती है।

2.8 संवेदना का स्रोत

काण्ट कहते हैं कि बाह्य जगत से प्राप्त संवेदनों को नियमित एवं व्यवस्थित करके बुद्धि ज्ञान का निर्माण करती है। किन्तु इन संवेदनों को बुद्धि स्वयं उत्पन्न नहीं करती है। ये संवेदन पारमार्थिक स्वलक्षणों द्वारा उत्पन्न होते हैं। जिन्हे बुद्धि देश काल रूपी मानसिक चश्मों के माध्यम से ग्रहण करती है और उन्हें ज्ञान का स्वरूप देती है। बुद्धि संवेदनों के अभाव में यथार्थ ज्ञान की सृष्टि नहीं कर सकती है।

2.9 ज्ञान-निर्माण की प्रकिया

काण्ट बुद्धि विकल्पों एवं इन्द्रिय संवेदनों को एक दूसरे से भिन्न मानते हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धि विकल्पों एवं इन्द्रिय संवेदनों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने की चुनौती उत्पन्न हो जाती है। काण्ट इस चुनौती का समाधान काल के माध्यम से करते हैं क्योंकि काल विशुद्ध संवेदन रूप होने के साथ ही प्रागनुभविक एवं सर्वव्यापी भी है। इसलिए काल इन्द्रिय-संवेदनों और बुद्धि-विकल्पों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होने पर बुद्धि-विकल्प संवेदनों को बुद्धि की 12 कोटियों में से संवेदन के अनुरूप कोटि में भेजकर ज्ञान का निर्माण करते हैं।

2.10 बुद्धि केन्द्रित ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता

काण्ट बुद्धि-विकल्पों को प्रागनुभविक मानते हैं। प्रागनुभविक होने का तात्पर्य बुद्धि विकल्पों का अनुभव से पहले होना है। इसके लिए अनुभव की आवश्यकता नहीं है अपितु बुद्धि विकल्प किसी किसी भी इन्द्रिय-अनुभव को ग्रहण करने की तार्किक प्रागपेक्षाएँ हैं। ये वस्तुनिष्ठ, अनिवार्य एवं सार्वभौम होते हैं। इन्हीं बुद्धि विकल्पों से व्यवस्थित इन्द्रिय-संवेदन ज्ञान के रूप में परिवर्तित होकर अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता के गुण से युक्त हो जाते हैं।

2.11 बुद्धि -केन्द्रित ज्ञान में वैविध्य

काण्ट का मानना है कि बुद्धि-केन्द्रित ज्ञान में विविधता पायी जाती है। इस विविधता का कारण बुद्धि की 12 कोटियाँ हैं। बाह्य जगत से प्राप्त इन्द्रिय-संवेदन देश–काल रूपी मानसिक चश्मों से गुजरकर जैसा ज्ञान निर्मित करना होता है उसी के अनुरूप बुद्धि की कोटि में चले जाते हैं। संवेदन एवं बुद्धि के मध्य काल की भूमिका दुभाषिये की होती है। इस प्रकार ज्ञानों में विविधता बुद्धि की कोटियों से आती है।

2.12 ज्ञान वास्तविक है या काल्पनिक

काण्ट का मत है कि बाह्य जगत (व्यवहार) का ज्ञान वास्तविक होता है क्योंकि बाह्य बाह्य जगत के संवेदन प्राप्त होते हैं जो बुद्धि विकल्पों से व्यवस्थित होकर ज्ञान का स्वरूप ग्रहण करते हैं। चूँकि बाह्य जगत के संवेदन देश–काल में उत्पन्न होते हैं। अतः यथार्थ हैं। काण्ट बुद्धि को अतीन्द्रिय मानते हैं और संवेदन बुद्धि–विकल्पों से व्यवस्थित होकर ज्ञान का रूप लेते हैं। अतः काण्ट व्यवहार या बाह्य जगत के सन्दर्भ में अतीन्द्रिय यथार्थवाद का प्रतिपादन करते हैं।

काण्ट परमार्थ के ज्ञान को काल्पनिक मानते हैं क्योंकि परमार्थ के संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं। बुद्धि अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर परमार्थ का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करती है। साथ ही बुद्धि की कोटियों का प्रयोग व्यावहारिक जगत से प्राप्त संवेदनों के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है, परमार्थ के सन्दर्भ में नहीं। अतः बुद्धि से परमार्थ का ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। काण्ट परमार्थ को अज्ञेय मानते हैं और इस सम्बन्ध में अतीन्द्रिय प्रत्ययवाद का प्रतिपादन करते हैं।

अतएव कहा जा सकता है कि काण्ट का कोपरनिकसीय क्रांति के सिद्धांत ने दर्शन में आमूल परिवर्तन कर दर्शन को ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से परिष्कृत एवं संवर्द्धित करने का कार्य किया। काण्ट ने ज्ञान में वस्तुनिष्ठता, अनिवार्यता, सावैभौमिकता एवं नवीनता का समावेश बुद्धि-विकल्पों के माध्यम से करने का प्रयास किया। उन्होंने संवृत्ति एवं परमार्थ में भी ज्ञान के आधार पर भेद किया।

2.13 शब्दावली

सार्वभौम (Universal)–सम्पूर्ण जगत में समान रूप से प्रचलित।

अहंमात्रवाद (Solipsism)–'मैं और मेरा ज्ञान ही सत' मानने वाला सिद्धांत।

देश (Space) – प्रत्यक्ष अनुभूति का द्वार, जिसकी विमा लम्बाई, चौड़ाई एवं ऊंचाई है।

काल (Time)–प्रत्यक्ष अनुभूमि का द्वार जिसकी विमा पूर्व (पहले) एवं अपर (बाद में) है।

परमार्थ (Naumena)– जो अनुभव की सीमा से परे है।

अतीन्द्रिय (Transcendental)– इन्द्रियों से परे है।

प्रागनुभविक (Apriori)–अनुभव से पहले अर्थात जिसके लिए अनुभव की आवश्यकता नहीं।

2.14 प्रश्नावली

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. कोपरनिकसीय क्रान्ति का क्या अर्थ है?
2. 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है का क्या निहितार्थ है?
3. काण्ट का मत 'ज्ञान बुद्धि-केन्द्रित है' से क्या तात्पर्य है?
4. काण्ट के अनुसार ज्ञान की विविधता का क्या कारण है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कोपरनिकसीय क्रान्ति पर संक्षिप्त निबन्ध लिखें।
2. ज्ञान वस्तु-केन्द्रित है या आत्म-केन्द्रित या बुद्धि-केन्द्रित इस कथन का मूल्यांकन करें।

2.15 उपयोगी पुस्तकें –

1. काण्ट का दर्शन– सभाजीत मिश्र
2. काण्ट का दर्शन – संगम लाल पाण्डेय
3. क्रिटिक आफ प्योर रीजन – इमैनुएल काण्ट

****

MAPH 113

खण्ड–1

इकाई : 3 –काण्ट की आलोचनात्मक पद्धति

3.0 उद्‌देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आलोचनावाद की पृष्ठभूमि

3.3 आलोचनावाद का अर्थ

3.4 आलोचनावाद की विशेषताएं

3.5 आलोचनावाद, बुद्धिवाद एवं अनुभववाद का समन्वय है।

3.6 आलोचनावाद का मूल्यांकन

3.7 शब्दावली

3.8 प्रश्नावली

3.9 उपयोगी पुस्तकें

****

3.0 उद्‌देश्य

काण्ट का दर्शन आलोचनात्मक दर्शन है। आलोचना का सामान्य अर्थ खण्डन, गुण–दोष का विवेचन और मूल्यांकन होता है किन्तु काण्ट की कृतियों में आलोचना का यह अर्थ नहीं है। यह सामान्य ज्ञान-शक्ति या बुद्धि की आलोचना है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष की सहायता के बिना बुद्धि जिस ज्ञान प्रकाश का अनुसंधान कर सकती है उनकी यह विवेचना है। इस प्रकार आलोचनावाद का उद्‌देश्य युक्तियुक्त ढंग से मानव बुद्धि की सीमा का निर्धारण करना है।

3.1 प्रस्तावना

किसी भी क्षेत्र में किसी भी विषय या समस्या के सन्दर्भ में युक्तियुक्त निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए व्यवस्थित प्रणाली, पद्धति या विधि का विशेष महत्त्व होता है क्योंकि यही वह मार्ग है जो निष्कर्ष को तार्किक, युक्तियुक्त एवं औचित्यपूर्ण सिद्ध करता है। इससे निष्कर्ष प्रमाणित एवं विश्वसनीय हो जाता है। दर्शन के क्षेत्र में भी विचारों की व्यवस्थित एवं तार्किक प्रस्तुति के लिए इस पद्धति का विशेष महत्त्व है। काण्ट द्वारा अपने विचारों की सम्यक प्रस्तुति के लिए तत्समय प्रचलित पद्धतियों–बुद्धिवाद एवं अनुभववाद से भिन्न एक नवीन पद्धति का अनुसरण किया गया। पाश्चात्य दर्शन में इस पद्धति को आलोचनावाद या समीक्षावाद के नाम से जाना जाता है। काण्ट का दावा है कि यह पद्धति अपनी पूर्ववर्ती पद्धतियों के दोषों से मुक्त है।

3.2 आलोचनावाद की पृष्ठभूमि

काण्ट के दर्शन के आविर्भाव से पूर्व पाश्चात्य दर्शन में प्रमुख रूप से प्रचलित दार्शनिक पद्धतियाँ बुद्धिवाद और अनुभववाद थी। बुद्धिवाद ज्ञान को अनिवार्य एवं सार्वभौम मानता है तथा ज्ञान प्राप्ति के

एकमात्र स्रोत के रूप में बुद्धि को स्वीकार करता है। यह मानता है कि बुद्धि में ज्ञान प्राप्त करने की असीम क्षमता है और बुद्धि में जन्मजात रूप से ज्ञान निहित होता है। यह तर्क की निगमनात्मक विधि को विशेष महत्त्व देता है। बुद्धिवाद इन्द्रियानुभव की उपेक्षा करता है जिससे ज्ञान में यथार्थता एंव नवीनता का समावेश नहीं हो पाता है और अन्ततः बुद्धिवाद रूढ़िवाद की ओर अग्रसर हो जाता है। अनुभववाद ज्ञान को यथार्थता एवं नवीनता के गुणों से युक्त मानता है तथा ज्ञान प्राप्ति के एकमात्र स्रोत के रूप में इन्द्रियानुभव को स्वीकार करता है। यह तर्क की आगमनात्मक विधि को विशेष महत्त्व देता है। अनुभववाद ज्ञान प्राप्ति में बुद्धि को निष्क्रिय मानता है, जिससे ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता का समोवश नहीं हो पाता है। अतः इन्द्रियानुभव से प्राप्त ज्ञान संभाव्य होता है, जिससे अनुभववाद की तार्किक परिणति संशयवाद में होती है।

दोनों विचारधाराओं की मान्यताएँ, दिशाएँ एवं प्रणालियाँ भिन्न थीं, जिससे दोनों विचारधाराओं में दीर्घकाल तक एक दूसरे का खण्डन–मण्डन का दौर चलता रहा। दोनों ही विचारधाराओं के पक्ष विपक्ष में समान रूप से प्रबल तर्क विद्यमान थे, जिससे किसी को निर्णायक बढ़त की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। दोनों ही यह मान चुके थे कि ज्ञान प्राप्ति हेतु उनका ही ज्ञान एकमात्र है। केवल उनकी ही दार्शनिक प्रणाली का अनुसरण करके ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। इस क्रम में दोनों ने अपने मार्ग एवं प्रणाली का कभी निरीक्षण करना भी उचित नहीं समझा कि जिस प्रणाली का अनुसरण कर हम अन्तिम रूप से ज्ञान प्राप्ति का दावा कर रहे हैं उस प्रणाली में ज्ञान प्राप्ति की ऐसी सामर्थ्य है भी यह नहीं। बुद्धिवादियों ने कभी बुद्धि एवं अनुभववादियों ने कभी इन्द्रियानुभव की क्षमताओं को जांचने का प्रयास नहीं किया।

काण्ट ने बुद्धिवाद एवं अनुभववाद के सम्यक अध्ययन के उपरान्त पाया कि दोनों हठवाद एवं एकांगिकता के दोष से ग्रस्त हैं। काण्ट के अनुसार ज्ञान के स्वरूप, स्रोत, वैधता और ज्ञान की सेवाओं का मूल्यांकन किए बिना केवल बुद्धि या केवल अनुभव को ज्ञान का स्रोत एवं प्रतिमान मान लेना उचित नहीं है। इस पूर्वाग्रह के कारण ही बुद्धिवाद ने रूढ़िवाद और अनुभववाद ने संशयवाद को जन्म दिया। रूढ़िवाद एवं संशयवाद से बचने के लिए काण्ट समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर ज्ञान के स्वरूप एवं प्रामाण्य का विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन करता है। काण्ट तत्त्व–चिंतन के लिए एक सामर्थ्यवान प्रणली की खोज का प्रयास करता है जो परम्परागत प्रणालियों के दोषों से मुक्त हो तथा ज्ञान में अनिवार्यता, सार्वभौमिकता के साथ यथार्थता एवं नवीनता का भी समावेश करे।

इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु काण्ट ने सर्वप्रथम बुद्धि एवं इन्द्रियानुभव की क्षमताओं को जांचने का कार्य किया। काण्ट ने बुद्धि के सम्प्रत्ययों की परीक्षा के लिए 'शुद्ध बुद्धि की समीक्षा' नामक शीर्षक से ग्रन्थ की रचना की, जिसमें बुद्धि की क्षमताओं का परीक्षण करने का कार्य किया। तदुपरान्त काण्ट ने ऐसी क्षमता से मुक्त प्रणाली के रूप में आलोचनावाद या समीक्षावाद को प्रस्तुत किया।

3.3 आलोचनावाद का अर्थ

आलोचना का सामान्य अर्थ किसी सिद्धांत या विचार का खण्डन करने, गुण दोष के आधार पर उसकी विवेचना करने या मूल्यांकन करने से है। काण्ट के आलोचनावाद के सन्दर्भ में देखा जाये तो आलोचना के उपर्युक्त अर्थ समीचीन प्रतीत नहीं होते हैं। काण्ट द्वारा रचित तीनों कृतियों के शीर्षकों में आलोचना शब्द का प्रयोग किया गया है। 'शुद्ध बुद्धि की आलोचना' एवं 'निर्णय की आलोचना'। इन कृतियों में काण्ट ने शुद्ध बुद्धि, व्यावहारिक बुद्धि या निर्णय का खण्डन भी नहीं किया है। इनका गुण दोष के आधार पर मूल्यांकन भी नहीं किया है और न ही ये कृतियाँ किसी सिद्धांत या ग्रन्थ की आलोचना में रची गयी हैं। 'शुद्ध बुद्धि की आलोचना' के प्राक्कथन में काण्ट स्वयं कहते हैं –इससे (आलोचना) मेरा तात्पर्य पुस्तकों और दार्शनिक मतों की आलोचना नहीं है अपितु सामान्य ज्ञान शक्ति या बुद्धि की आलोचना है।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष की सहायता के बिना बुद्धि जिन समस्त ज्ञान प्रकारों का अनुसंधान कर सकती है, उनकी यहाँ विवेचना की गयी है। तत्त्व ज्ञान संभव है या असंभव?

काण्ट का आलोचनावाद एक ज्ञानमीमांसीय प्रणाली है। यह एक छानबीन है जो समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त है। काण्ट दार्शनिक चिंतन के क्रम में कुछ भी पूर्व रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। उनका उद्देश्य आलोचनावाद के माध्यम से उसका उद्देश्य ज्ञान की प्रक्रिया में अनिवार्यरूप से आवश्यक मूलभूत तत्त्वों और शर्तों की खोज करना है। काण्ट बुद्धि को समस्त विषयों के ज्ञाता के रूप में स्वीकार करते हैं। साथ ही उनका मानना है कि बुद्धि आत्मपरीक्षण की क्षमता से युक्त है। किसी भी दार्शनिक सृजन से पहले बुद्धि द्वारा आत्म-परीक्षण अनिवार्य है ताकि बुद्धि के सबल एवं निर्बल पक्षों को भलीभाँति ज्ञात किया जा सके। इसके अभाव में दर्शन के हठवाद में परिवर्तित होने की संभावनाएं प्रबल हो जाती हैं। काण्ट ने यह भी बताया कि बुद्धि एवं इन्द्रियानुभव से केवल प्रकृति/बाह्य जगत का ही ज्ञान संभव है। अतीन्द्रिय सत्ताएं इन्द्रियानुभव के अभाव में ज्ञान का विषय नहीं हो सकती है। यहाँ काण्ट ज्ञान की सीमाओं का भी स्पष्ट उल्लेख करते हैं।

काण्ट के आलोचनावाद में बुद्धि विकल्पों की अहं भूमिका है। बुद्धि विकल्प ज्ञान की प्रागनुभविक प्रागपेक्षाएं हैं। बुद्धि विकल्प अनुभव का विषय नहीं है। इसलिए काण्ट इन्हें अतीन्द्रिय कहते हें। जब देश काल की प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वारों के माध्यम से संवेदन प्राप्त होते हैं तो बुद्धि इन्हें अपनी कोटियों के द्वारा व्यवस्थित एवं नियमित कर ज्ञान में बदलती है। अतः हमारा ज्ञान वैसा ही होगा जैसा बुद्धि विकल्प निर्मित करेंगे। इसी सन्दर्भ में काण्ट की प्रसिद्ध उक्ति है–'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है।' (Understanding makes Nature)। यहाँ काण्ट वस्तु-केन्द्रित ज्ञान की प्रचलित अवधारणा को बुद्धि केन्द्रित अवधारणा में बदल देते हैं। इसे दर्शन जगत में 'कोपरनिकसीय क्रांति' के रूप में जाना जाता है। यह एक ज्ञान मीमांसीय सिद्धांत है न कि तत्त्वमीमांसीय सिद्धांत क्योंकि बुद्धि ज्ञान के स्तर पर प्रकृति का निर्माण करती है।

इस प्रकार आलोचनावाद में काण्ट बुद्धिवाद एवं अनुभववाद के सबल पक्षों का समावेश करते हैं, जिससे आलोचनावाद के रूप में एक समन्वित दार्शनिक पद्धति का विकास हुआ और बुद्धिवाद एवं अनुभववाद में व्याप्त अन्तर्विरोधों के साथ दोनों के बीच का संघर्ष भी समाप्त हो गया।

3.4 आलोचनावाद की विशेषताएं

आलोचनावाद, बुद्धिवाद एवं अनुभववाद के दोषों को दूर करते हुए और इनके सबल पक्षों के समावेश से निर्मित दार्शनिक पद्धति है। इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है–

(1) आलोचनावाद ज्ञान के लक्षण के रूप में अनिवार्यता, सार्वभौमिकता, वास्तविकता एवं नवीनता को स्वीकार करती है। ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता बुद्धि विकल्पों से आती है तथा वास्तविकता एवं नवीनता इन्द्रियानुभव से आती है।

(2) आलोचनात्मक ज्ञान प्राप्ति के स्रोत के रूप में बुद्धि एवं इन्द्रियानुभव दोनों की भूमिका को स्वीकार करता है। ज्ञान का आरम्भ इन्द्रियानुभव (इन्द्रिय संवेदन) से होता है तथा ज्ञान को व्यवस्थित स्वरूप बुद्धि विकल्पों द्वारा दिया जाता है।

(3) आलोचनावाद के अनुसार मानवीय ज्ञान की सीमाएं हैं। मानव-बुद्धि द्वारा जागतिक विषयों का ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, अतीन्द्रिय सत्ता या परमार्थ का ज्ञान संभव नहीं है क्योंकि ज्ञान के लिए इन्द्रिय संवेदन अनिवार्य है और इन्द्रिय-संवेदन जागतिक वस्तुओं के ही प्राप्त होते हैं। परमार्थ के इन्द्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं। अतः परमार्थ अज्ञेय है। इसका तात्पर्य है कि मानव ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, नरक इत्यादि

अतीन्द्रिय विषयों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। इससे काण्ट के दर्शन में अज्ञेयवाद का दोष (Fallacy of Agnosticism) आ जाता है।

(4) काण्ट ज्ञान को बुद्धि-केन्द्रित मानते हैं। इस सन्दर्भ में उनकी उक्ति है कि 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है।' यह ज्ञानमीमांसीय स्थापना है क्योंकि हमें प्रकृति का वैसा ही ज्ञान होता है जैसा बुद्धि द्वारा निर्मित होता है।

3.5 आलोचनावाद, बुद्धिवाद एवं अनुभववाद का समन्वय है।

काण्ट आलोचनावाद के प्रतिपादन से पूर्व बुद्धिवाद एवं अनुभववाद की परीक्षा करते हैं। इस क्रम में वे बुद्धिवाद के कुछ निर्बल पक्षों को उजागर करते हैं। उनके अनुसार बुद्धिवादियों ने दर्शन को गणित की नींव पर स्थापित करने का प्रयास किया। किन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि गणित का सम्बन्ध अमूर्त प्रत्ययों से है। जिसका वस्तु जगत या वास्तविकता में कोई सम्बन्ध नहीं होता है जबकि दर्शन का सम्बन्ध वस्तु - जगत से है। इस प्रकार गणित की अमूर्तता एवं दर्शन की वास्तविकता के मध्य सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता है।

बुद्धिवादी शुद्ध बुद्धि के सम्प्रत्ययों के आधार पर इन्द्रियानुभव की उपेक्षा कर इन्द्रियातीत विषयों का भी ज्ञान प्राप्ति का दावा करते हैं, वहीं अनुभववादी इन्द्रियानुभव को ज्ञान प्राप्ति का असीम साधन मानकर बुद्धि की तुलना कोरे कागज से करते हैं जिस पर अनुभव से ज्ञान अंकित होता है। अनुभववादी कारणता जैसे वैज्ञानिक सिद्धांतों में भी आन्तरिक सम्बन्ध की अनिवार्यता का निषेध करते हैं। वे कारणता को मनोवैज्ञानिक विश्वास घोषित करने का प्रयास करते हैं। काण्ट ने ज्ञान की सृष्टि के क्रम में शुद्ध सम्प्रत्यय और इन्द्रियानुभव दोनों के योगदान को स्वीकार किया है। काण्ट कहते हैं कि ज्ञान की सामग्री इन्द्रियानुभव से प्राप्त होती है जो अस्त-व्यस्त विश्रृंखल एवं क्षणिक होती है। काण्ट इन्हें इन्द्रिय संवेदन कहते हैं। बुद्धि देश-काल के माध्यम से प्राप्त इन इन्द्रिय-संवेदनों को बुद्धि-विकल्पों के द्वारा व्यवस्थित एवं नियमित करती है। इस प्रक्रिया से गुजर कर ज्ञान का निर्माण होता है।

इस प्रकार ज्ञान के निर्माण में बुद्धि एवं इन्द्रियानुभव दोनों का समान महत्त्व है। किसी एक के भी अभाव में ज्ञान की सृष्टि सम्भव नहीं ज्ञान के सृजन में बुद्धि एवं इन्द्रियानुभव की भूमिका को स्पष्ट करते हुए काण्ट कहते हैं कि 'बुद्धि के बिना इन्द्रिय संवेदन अंधे हैं जबकि इन्द्रिय संवेदनों के बिना बुद्धि पंगु (निष्क्रिय) है।' वस्तुतः बुद्धि मधुमक्खी के समान है। जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों से रस प्राप्त करके उसे शहद में रूपान्तरित करती है। उसी प्रकार बुद्धि-विकल्प इन्द्रिय-संवेदनों से प्राप्त सामग्री को ज्ञान का आकार प्रदान करते हैं। अन्ततः कहा जा सकता है कि ज्ञान का प्रारंभ इन्द्रिय-संवेदनों से होता है और पूर्णता बुद्धि -विकल्प से प्राप्त होती हैं अतः आलोचनावाद बुद्धिवाद एवं अनुभववाद का समन्वय है।

3.6 आलोचनावाद का मूल्यांकन

काण्ट ने अपने आलोचनावाद का प्रतिपादन पूर्व प्रचलित दार्शनिक पद्धतियों के परीक्षण के उपरान्त किया किन्तु आलोचनावाद भी स्वयं आलोचना का विषय बन गया। आलोचनावाद के विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियां उठायी जाती हैं–

1. काण्ट ने ज्ञान को अनिवार्य, सार्वभौम, यथार्थ एवं नवीन माना है। यहाँ ज्ञान की नवीनता एवं यथार्थता की व्याख्या तो इन्द्रियानुभव के आधार पर की जा सकती है, किन्तु अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता की व्याख्या इन्द्रियानुभव के आधार पर नहीं की जा सकती है। ज्ञान के अनिवार्य एवं सार्वभौम गुण की व्याख्या के लिए इनका कारण बुद्धि के स्वरूप एवं संरचना को मानना पड़ेगा।

2. काण्ट का दर्शन अज्ञेयवाद के दोष से ग्रसित है क्योंकि काण्ट ज्ञान के लिए इन्द्रियानुभव एवं बुद्धि विकल्प दोनों को अनिवार्य मानते हैं। इन्द्रियानुभव के अभाव में ज्ञान की सृष्टि नहीं हो सकती है किन्तु अतीन्द्रिय सत्ताओं जैसे ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, नरक इत्यादि विषयों के इन्द्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं। अतः इनके ज्ञान की प्राप्ति नहीं की जा सकती है।

3. काण्ट इन्द्रियानुभव से ज्ञान के आरंभ की बात करते हैं जबकि बुद्धि-विकल्पों एवं देशकाल को अनुभव की प्रागपेक्षा के रूप में स्वीकार करते हैं। यहाँ बुद्धि विकल्प मानवीय बुद्धि के प्रागनुभविक आकार हैं तथा देश–काल प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वार हैं, जिनके द्वारा बुद्धि इन्द्रिय-संवेदनों को ग्रहण करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि काण्ट के आलोचनावाद ने दर्शन को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक ओर जहाँ आलोचनावाद ने बुद्धिवाद एवं अनुभववाद को दोषों को दूर करने और दोनों के अच्छे गुणों को समन्वित करने का कार्य किया तो वहीं दूसरी ओर ज्ञान को वस्तु केन्द्रित से बुद्धि केन्द्रित सिद्ध कर दर्शन के क्षेत्र में कोपरनिकसीय क्रांति करने का भी कार्य किया। एडवर्ड केयर्ड के शब्दों में 'आलोचनावाद वह प्रक्रिया है जो रूढ़िवाद एवं संशयवाद का समन्वय करती है और फिर भी इन दोनों से भिन्न है।

3.7 शब्दावली

परमार्थ (Niumena)– जो अनुभव की सीमा से परे है।

अतीन्द्रिय (Transcendental)– इन्द्रियों से परे है।

3.8 प्रश्नावली

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1 आलोचनावाद का क्या अर्थ है?

2 आलोचनावाद की पृष्ठभूमि की चर्चा करें।

3 आलोचनावाद की प्रमुख विशेषताएँ बताएं।

4 आलोचनावाद को पारिभाषित करते हुए इसके विरुद्ध आपत्तियों को दर्ज करें।

दीर्ध-उत्तरीय प्रश्न

1 आलोचनावाद पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखें।

2 आलोचनावाद, बुद्धिवाद एवं अनुभववाद का समन्वय है, सविस्तार वर्णन करें।

3.9 उपयोगी पुस्तकें

1 काण्ट का दर्शन : सभाजीत मिश्र

2 काण्ट का दर्शन : संगल लाल पाण्डेय

3 पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव और विकास : हरिशंकर उपाध्याय

MAPH 113

खण्ड–1

इकाई –4 – निर्णयों का वर्गीकरण : संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक ज्ञान की संभावना

संरचना –

4.0 – उद्देश्य

4.1 – प्रस्तावना

4.2 – निर्णय का अर्थ

4.3 – निर्णयों का सामान्य वर्गीकरण

4.3.1 – उद्देश्य–विधेय के सम्बन्ध के आधार पर

4.3.2 – प्रामाणिकता या अनुभव की अपेक्षा के आधार पर

4.4 – काण्ट द्वारा संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों का प्रतिपादन क्यों ?

4.5 – काण्ट द्वारा निर्णयों का वर्गीकरण

4.6 – संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना

4.6.1 – गणित में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन

4.6.2 – ज्यामिति में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन

4.6.3 – प्राकृतिक विज्ञान में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन

4.6.4. – नीतिशास्त्र में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन

4.7 – क्या तत्त्वमीमांसीय कथन संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक है?

4.8 – काण्ट के मत की आलोचना

4.9 – शब्दावली

4.10– प्रश्नावली

4.11– संदर्भित पुस्तकें

4.0 उद्देश्यः–

ज्ञान की संभावना इकाई के अन्तर्गत निर्णय के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसके सामान्य वर्गीकरण को प्रस्तुत किया गया है। काण्ट द्वारा निर्णयों के वर्गीकरण को पेश करते हुए संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना को व्यक्त किया गया है। संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों की संभावना वाले प्रमुख क्षेत्रों– गणित, ज्यामिति, प्राकृतिक विज्ञान एवं नीतिशास्त्र का वर्णन करते हुए काण्ट के उपर्युक्त मत के सन्दर्भ में आलोचकों के मत को दर्शाया गया है।

4.1 प्रस्तावना –

काण्ट के आलोचनावाद (Criticism) के प्रतिपादन से पूर्व पाश्चात्य दर्शन में प्रचलित विचारधाराओं – बुद्धिवाद (Rationalism) और अनुभववाद (Empiricism) में ज्ञान के स्वरूप, ज्ञान के स्रोत, ज्ञान की सीमा इत्यादि के संदर्भ में व्यापक अन्तर्विरोध थे किन्तु दोनों कथनों/निर्णयों (Judgements) के वर्गीकरण के सन्दर्भ में सहमत थे। दोनों का मत था कि निर्णय दो प्रकार के होते हैं –विश्लेषणात्मक निर्णय और संश्लेषणात्मक निर्णय। काण्ट बुध्दिवाद एवं अनुभववाद द्वारा पृथक–पृथक रूप से प्रस्तुत ज्ञान के स्वरूप से सहमत नहीं है क्योंकि जहाँ बुद्धिवाद ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता की बात करता है किन्तु नवीनता एवं वास्तविकता की नहीं वहीं अनुभववाद ज्ञान में नवीनता एवं वास्तविकता को तो मानता है, किन्तु अनिवार्यता और सार्वभौमिकता को नहीं। काण्ट दोनों पद्धतियों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान के तत्वों को समाहित कर अपनी ज्ञान की परिभाषा प्रस्तुत करते हैं, जिसमें वे अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता के साथ नवीनता एवं वास्तविकता को भी समाहित करते हैं। इसी क्रम में वे निर्णयों के वर्गीकरण के मेल से संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना व्यक्त करते हैं और विविध क्षेत्रों में अपने तर्को के माध्यम से इसे सिद्ध करते हैं।

4.2 निर्णय का अर्थ–

काण्ट के अनुसार निर्णय वह प्रतिज्ञाप्ति (Presupposition) है जिसमें एक उददेश्य एवं एक विधेय होता है। जैसे– (1) फूल लाल है। (निर्णय)

इसमें फूल उद्देश्य और लाल विधेय है।

मनुष्य मरणशील है। (निर्णय)

इसमें मनुष्य उद्देश्य है और मरणशील विधेय है।

4.3 निर्णयों का वर्गीकरण

काण्ट ने निर्णयों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया है –

प्रथम – आनुभविक व प्रागनुभविक

द्वितीय – संश्लेषणात्मक व विश्लेषणात्मक

4.3.1 उद्देश्य–विधेय के संबंध के आधार पर

उद्देश्य–विधेय में सम्बन्ध के आधार पर कथनों को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–विश्लेषणात्मक कथन एवं संश्लेषणात्मक कथन। विश्लेषणात्मक कथन, ऐसे कथन हैं, जिसमें विधेय, उद्देश्य में निहित होता है अर्थात उद्देश्य–विधेय में तादात्म्य सम्बंध होता है। इसमें विधेय, उद्देश्य के सम्बंध

में नवीन सूचना नहीं देता है। ये अनिवार्य एवं सार्वभौम सत्य है। इन कथनों का निषेध व्याघाती होता है, ये कथन व्याख्यात्मक होते है।

जैसे – त्रिभुज त्रिकोणात्मक है।

–भौतिक वस्तुओं में विस्तार है।

संश्लेषणात्मक कथन, ऐसे कथन हैं जिसमें विधेय उद्देश्य में निहित नही होता है अर्थात् विधेय, उद्देश्य के सम्बन्ध में नवीन सूचना देता है। ऐसे कथनों में वास्तविकता एवं नवीनता होती है। इसका निषेध व्याघाती नहीं होता है।

जैसे –दीवार हरी है।

–घोड़ा काला है।

4.3.2 प्रामाणिकता या अनुभव की अपेक्षा के आधार पर :–

अनुभव की अपेक्षा के आधार पर कथनों को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है – प्रागनुभविक कथन एवं आनुभविक कथन। प्रागनुभविक कथन, ऐसे कथन हैं जो अनुभव निरपेक्ष हैं अर्थात् उनकी प्रामाणिकता के लिए अनुभव की आवश्यकता नही होती है। यहाँ अनुभव निरपेक्ष होने से तात्पर्य यह नहीं है उसका अनुभव से कोई सम्बंध न हो। ज्ञान के अनुभव निरपेक्ष होने का तात्पर्य यह है कि वह अनुभव से उत्पन्न नहीं होता है। ये अनिवार्य एवं सार्वभौम होते हैं तथा इसका निषेध व्याघाती होता है। गणित एवं तर्कशास्त्र के कथन प्रागनुभविक कथन हैं, जैसे–

–त्रिभुज त्रिकोणात्मक है।

एवं 3+2 = 5

आनुभविक कथन, ऐसे कथन हैं जिनकी प्रामाणिकता का निर्धारण अनुभव के आधार पर होता है। ये कथन अनिवार्य रूप से सत्य न होकर संभाव्य होते हैं। इनका निषेध व्याघाती नहीं होता है।

जैसे – कुर्सी लाल है।

एवं संतरा मीठा है।

4.4 काण्ट द्वारा संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों का प्रतिपादन क्यों ?

बुध्दिवादी ज्ञान को अनिवार्य एवं सार्वभौम मानते हैं जबकि अनुभववादी ज्ञान को यथार्थ एवं नवीन मानते हैं। काण्ट के अनुसार बुद्धिवाद एवं अनुभववाद द्वारा प्रतिपादित ज्ञान की परिभाषा में बुद्धिवादियों में नवीनता एवं यथार्थता का अभाव है तथा अनुभववादियों में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता का अभाव है। यही कारण है कि बुद्धिवाद, रुढिवाद (Dogmatism) में और अनुभववाद, संशयवाद (Skecticism) में परिणत होता हैं। काण्ट के अनुसार ज्ञान में अनिवार्यता, सार्वभौमिकता, यथार्थता एवं नवीनता चारों का समावेश अनिवार्य है। ऐसा ज्ञान तभी संभव है जब संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों की संभावना को सिद्ध कर दिया जाये। इसी क्रम में काण्ट संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

4.5 काण्ट द्वारा निर्णयों का वर्गीकरण–

काण्ट ने उदेश्य एवं विधेय में सम्बंध के आधार पर निर्णयों का वर्गीकरण तथा प्रामाणिकता या अनुभव की अपेक्षा के आधार पर निर्णयों के वर्गीकरण के मेल से तीन प्रकारों में निर्णयों को बाँटा है।

उद्देश्य–विधेय के सम्बंध के आधार पर

⟶ विश्लेषणात्मक कथन

⟶ संश्लेषणात्मक कथन

- प्रामाणिकता या अनुभव की अपेक्षा के आधार पर

⟶ प्रागनुभविक कथन

⟶ आनुभविक कथन

⟶ दोनों वर्गीकरण को मिला देने पर चार प्रकार के निर्णय हो जाते हैं।

(1) विश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन – अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता संभव नहीं

(2) विश्लेषणात्मक आनुभविक कथन – संभव नहीं

(3) संश्लेषणात्मक आनुभविक कथन – यथार्थ एवं नवीनता

(4) संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन – अनिवार्यता, सार्वभौमिकता, यथार्थता एवं नवीनता

दोनों आधारों के मेल से कुल 4 प्रकार के कथन बन सकते हैं। विश्लेषणात्मक एवं प्रागनुभविक कथनों के मेल से विश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन का निर्माण होता है। विश्लेषणात्मक होने के कारण इसमें विधेय उद्देश्य में निहित होता है तथा प्रागनुभविक होने के कारण इसके सत्यापन के लिए अनुभव की आवश्यकता नहीं होती है। ये अनिवार्य एवं सार्वभौम होते हैं किन्तु यथार्थता एवं नवीनता का अभाव पाया जाता है। बुद्धिवादी इन कथनों पर विशेष बल देते हैं।

जैसे– प्रत्येक भौतिक पिण्ड में विस्तार है। यहाँ विस्तृत होना भौतिक पिण्ड की स्वरुपगत विशेषता है। इसमें उद्देश्य श्भौतिक पिण्डश से विधेय विस्तार को तर्कतः निगमित किया जा सकता है। अतः विधेय, उद्देश्य के विषय में नवीन सूचना नहीं दे रहा है।

विश्लेषणात्मक एवं आनुभविक कथनों के मेल से विश्लेषणात्मक आनुभविक कथन का निर्माण होता है किन्तु काण्ट के अनुसार विश्लेषणात्मक आनुभविक कथन तर्कतः संभव नहीं है क्योंकि विश्लेषणात्मक होने के कारण इसके सत्यापन हेतु अनुभव की आवश्यकता नहीं हैं जबकि आनुभविक होने का अर्थ है इनका सत्यापन अनुभव से होना है। अतः यह तर्कतः संभव नहीं है।

संश्लेषणात्मक एवं आनुभविक कथनों के योग से संश्लेषणात्मक आनुभविक कथनों का निर्माण होता है। संश्लेषणात्मक होने के कारण विधेय, उद्देश्य में निहित नहीं होता है तथा आनुभविक होने के कारण इनका सत्यापन अनुभव से किया जा सकता है। ये नवीनता एवं यथार्थता के गुण से युक्त होते हैं। अनुभववादी इन्हें अत्यधिक महत्व देते हैं।

जैसे– गुलाब लाल है। यहाँ लालिमा का ज्ञान अनुभव के बिना नहीं हो सकता है, साथ ही लाल कह देने मात्र से गुलाब का अनिवार्यतः ज्ञान नहीं हो सकता है।

संश्लेषणात्मक एवं प्रागनुभविक कथनों के मेल से संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों का निर्माण होता है। संश्लेषणात्मक होने के कारण विधेय, उद्देश्य में निहित नहीं होता है तथा विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध में नवीन सूचना देता है जबकि प्रागनुभविक होने के कारण इसका सत्यापन अनुभव निरपेक्ष होता है। संश्लेषणात्मक कथन से इसमें नवीनता एवं यथार्थता आती है तथा प्रागनुभविक कथन से अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता आती हैं। काण्ट ऐसे निर्णयों को संभव मानते है।

ह्यूम ने संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों की सत्यता पर संशय किया था और सिद्ध किया था कि वे अनिवार्य सत्य नहीं है। उनके अनुसार जो प्रागनुभविक है वह संश्लेषणात्मक नहीं हो सकता और जो संश्लेषणात्मक निर्णय है वह प्रागनुभविक नहीं हो सकता। किन्तु हम देखते हैं कि गणित, भौतिक विज्ञान और लोक व्यवहार के अधिकांश निर्णय प्रागनुभविक संश्लेषणात्मक है क्योंकि ये अन्य निर्णय से निरपेक्ष हैं, इनके निषेध बाधित नहीं है। ऐसे निर्णय मानव ज्ञान और मानव जीवन के लिए आवश्यक है। काण्ट मानव ज्ञान को संभव बनाने के लिए प्रश्न करता है कि संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय कैसे संभव है। यदि इसका उत्तर निषेध में है तो मानव ज्ञान संभव नहीं है और यदि हां में है तो मानव ज्ञान संभव है।

4.6 संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना–

काण्ट उपर्युक्त प्रश्न का समाधान अपने अध्ययन एवं तर्कों के द्वारा गणित, ज्यामिति, प्राकृतिक विज्ञान एवं नीतिशास्त्र द्वारा करते हैं।

4.6.1 गणित में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन –

काण्ट उदाहरण के माध्यम से गणित में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना को सिद्ध करते हैं। जैसे – 7+5 = 12

उपर्युक्त उदाहरण में 7+5 उद्देश्य है तथा 12 विधेय है। काण्ट कहते हैं यहाँ विधेय (12), उद्देश्य (7+5) में निहित नहीं है। यह उद्देश्य के सम्बंध में नवीन जानकारी देता है। 7+5 केवल दो अंकों के योग को बताता है, इससे क्या योगफल निकलेगा, उसे नहीं बताता है। अतः यह निर्णय संश्लेषणात्मक है, साथ ही इसकी प्रामाणिकता अनुभव निरपेक्ष है, इसलिए यह प्रागनुभविक है। प्रागनुभविक होने के कारण इस कथन में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता है।

काण्ट कहते हैं कि छोटे अंकों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि विधेय, उद्देश्य में समाहित है किन्तु बड़े अंकों (संख्या) को लेने पर इसकी नवीनता स्पष्ट हो जाती है। जैसे– 450987+ 653245 (नवीन सूचना)

काण्ट के अनुसार गणित में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों की संभावना का कारण 'काल' (Time) है। काल शुद्ध आकार या शुद्ध संवेदन है जो प्रागनुभविक है। काल को दो विमाएँ– पूर्व एवं अपर है। अंकगणित के प्रत्यय इन्हीं विमाओं से निर्मित हैं।

4.6.2 ज्यामिति में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन –

काण्ट के अनुसार ज्यामिति के कथन संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक होते हैं। ज्यामिति के कथनों का संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक होने का कारण इनका 'देश' (Space) के प्रत्ययों पर आधारित होना है। देश शुद्ध संवेदन है जो प्रागनुभविक है। देश की तीन विमाएँ –लम्बाई, चौडाई एवं ऊँचाई हैं। ज्यामिति की सभी आकृतियाँ इन्हीं विमाओं से निर्मित हैं। ज्यामिति के कथन संश्लेषणात्मक हैं क्योंकि विधेय, उद्देश्य में निहित नहीं है।

4.6.3 प्राकृतिक विज्ञानों में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन–

काण्ट के अनुसार प्राकृतिक विज्ञान में भी संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन संभव हैं। यहाँ काण्ट स्पष्ट कहते हैं प्राकृतिक विज्ञानों के सभी निर्णय संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक नहीं होते हैं अपितु मूलभूत निर्णय ही संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक होते हैं जबकि अधिकांश निर्णय आनुभाविक होते हैं।

जैसे–'कारणता का नियम' अर्थात प्रत्येक कार्य का कारण होता है। यह एक सामान्य नियम है, जो प्रागनुभविक है जबकि किसी विशेष घटना के घटित होने के कारण को अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। प्राकृतिक विज्ञान के कथन बुद्धि विकल्पों के कारण संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक होते हैं क्योंकि बाह्य जगत से प्राप्त संवेदनों को व्यवस्थित–करने का कार्य बुद्धि–विकल्प करते हैं और कारणता एक बुद्धि विकल्प है।

4.6.4 नीतिशास्त्र में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथन–

काण्ट अपनी कृति 'क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन' में नैतिक प्रत्ययों जैसे– नैतिक नियम, नैतिक मूल्य इत्यादि को संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कहते है। जैसे –'बड़ों का सम्मान करना चाहिए' एक नैतिक नियम है। यह अनुभव निरपेक्ष होने के कारण प्रागनुभविक है किन्तु इसका निषेध व्याघाती नहीं होता क्योंकि सभी लोग ऐसा नहीं करते हैं।

4.7 क्या तत्त्वमीमांसीय कथन संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक है?–

काण्ट के अनुसार तत्त्वमीमांसीय कथन संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक नहीं है क्योंकि तत्त्व मीमांसीय सम्प्रत्यय–ईश्वर, आत्मा स्वर्ग, नरक इत्यादि देश-काल में स्थित न होने के कारण इसके इन्द्रिय-संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं। इन्द्रिय-संवेदनों के अभाव में इनका ज्ञान नहीं हो सकता है और इसके सम्बंध में कोई कथन भी नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार परमार्थ के सम्बन्ध में काण्ट अज्ञेयवाद का प्रतिपादन करते हैं।

4.8 काण्ट के मत की आलोचना–

काण्ट संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों की सम्भावना का प्रतिपादन ज्ञान में अनिवार्यता, सार्वभौमिकता एवं नवीनता के समावेश हेतु करते हैं किन्तु यह आलोचना से मुक्त नहीं है –

(1) तार्किक भाववादियों का मानना है कि संश्लेषणात्मक एवं आनुभविक निर्णय एक ही प्रकार के हैं। उसी प्रकार विश्लेषणात्मक एवं प्रागनुभविक निर्णय भी एक ही प्रकार के हैं। अतः संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय मानने का अर्थ एक ही कथन को संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक दोनों मानना है। यह आत्म विरोधाभासी है।

(2) ए. जे. एयर का मत है कि संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक के निर्णयों के निर्धारण के क्रम में काण्ट ने पृथक–पृथक मानदण्डों का प्रयोग अपनी सुविधानुसार किया है। काण्ट गणित के कथनों को संश्लेषणात्मक निर्धारित करते समय मनोवैज्ञानिक मानदण्ड अपनाते हैं तथा इसकी प्रागनुभविकता का निर्धारण करते समय तार्किक मानदण्ड में मनोवैज्ञानिक मापदण्ड को अपनाते हैं। एयर के अनुसार यदि गणित के कथनों में मनोवैज्ञानिक मानदण्ड के स्थान पर तार्किक मानदण्ड का प्रयोग किया जाये तो यह सिद्ध हो जाता है कि गणितीय कथन संश्लेषणात्मक न होकर विश्लेषणात्मक हैं। अर्थात् विधेय, उद्देश्य में निहित है। जैसे– 7+5 12

(1+1+1+1+1+1+1) (1+1+1+1+1) = 1+1+1+1+1+1+1+1+1+1+1+1

1+1+1+1+1+1+1+1+1+1+1+1 = 1+1+1+1+1+1+1+1+1+1+1+1

(3) उत्कट अनुभववादी विचार क्वाइन (Quine) का मत है कि संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक कथनों में गुणात्मक अन्तर न होकर मात्रात्मक अन्तर होता है। वस्तुतः दोनों का सम्बन्ध अनुभव से है। संश्लेषी कथन अनुभव के केंद्र में होते हैं तथा विश्लेषी कथन अनुभव की परिधि पर होते हैं। जबकि काण्ट से संश्लेषी एवं विश्लेषी कथनों में गुणात्मक अन्तर माना है जो उचित नहीं है।

(4) प्राकृतिक विज्ञान के कथनों के संदर्भ में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों के माध्यम से काण्ट ने अनिवार्यता, सार्वभौमिकता एवं नवीनता का दावा किया है, यह तर्क संगत नहीं है। प्राकृतिक विज्ञानों (भौतिकी) के निष्कर्षो में नवीनता तो होती है किन्तु अनिवार्यता नहीं होती है क्योंकि भविष्य में इनके असत्य प्रमाणित होने की संभावना से विज्ञान इन्कार नहीं करता है और ऐसे कई दृष्टान्त हैं, जब विज्ञान के कथन असत्य प्रमाणित हुए हैं । अतः ये अनिवार्य नहीं होते हैं, सिर्फ संभाव्य होते हैं।

निष्कर्षतः काण्ट द्वारा प्रतिपादित संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की अवधारणा ज्ञान की आंशिकता को दूर कर ज्ञान को सम्पूर्णता में परिभाषित करने का प्रयास था। जिसमें ज्ञान अनिवार्यता, सार्वभौमिकता एवं नवीनता से युक्त हो। किन्तु काण्ट की इस अवधारणा पर समकालीन पाश्चात्य दार्शनिकों ने तीव्र प्रतिक्रिया की है, उन्होंनें संश्लेषणात्मक एवं प्रागनुभविक पदों के संयोजन को असंगत बताया है तथा कहा कि इनके पक्ष में प्रस्तुत तर्कों में काण्ट ने सुविधानुसार तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक आधारों का प्रयोग किया है जो उचित नहीं है।

4.9 शब्दावली

(1) निरपेक्ष (Absolute) : जिसके लिए किसी अन्य की अपेक्षा न हो।

(2) व्याघात नियम (Law of contradiction) : दो तर्कों के मध्य विरोध होना

(3) तार्किक भावावाद (Logical Pasitivism) : एक दार्शनिक विचारधारा जो संश्लेषणात्मक एवं प्रागनुभविक कथनों को ही सार्थक (Meannigful) मानती है।

4.10 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्नः–

(1)निर्णय के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसका सामान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करें।

(2)संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय से आप क्या समझते है ?

(3) काण्ट संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय का प्रतिपादन क्यों करते हैं?

(4) संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय के विरुद्ध उठायी गयीं आपत्तियों का वर्णन करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(1) काण्ट किन क्षेत्रों में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना को सिध्द करते हैं?

(2) संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना का मूल्यांकन करें।

4.11 उपयोगी पुस्तकें

1. काण्ट का दर्शन : सभाजीत मिश्र
2. काण्ट का दर्शन : संगल लाल पाण्डेय
3. पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव और विकास : हरिशंकर उपाध्याय

खण्ड–1

इकाई–5 : ज्ञान की संभावना

संरचना :–

5.0 – उद्देश्य

5.1 – प्रस्तावना

5.2 – ज्ञान का अर्थ

5.3 – ज्ञान के स्रोत

5.4 – ज्ञान की शर्ते

5.5 – इन्द्रिय संवेदनों की प्राप्ति में देश–काल की भूमिका

5.6 – ज्ञान का अधिष्ठान

5.7 – ज्ञान की केन्द्रिकता

5.8 – ज्ञान की सीमा

5.9 – ज्ञान की संभावना

5.10 शब्दावली

5.11 प्रश्नावली

5.11 उपयोगी पुस्तकें

5.0 उददेश्य–

ज्ञान की संभावना इकाई के अन्तर्गत ज्ञान के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ज्ञान के स्रोत, ज्ञान की शर्ते, ज्ञान के अधिष्ठान, ज्ञान की सीमा, ज्ञान की केन्द्रिकता इत्यादि का वर्णन किया गया है। आधुनिक युग में ज्ञान की जो सबसे अधिक प्रचलित परिभाषा है उसके अनुसार ज्ञान प्रमाणीकृत सत्य विश्वास है। इस परिभाषा में तीन तत्त्व (उपादान) है। विश्वास, सत्यता और प्रमाणीकरण काण्ट द्वारा प्रतिपादित ज्ञान की अवधारणा और संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों के आलोक में ज्ञान की संभावना की विवेचना की गयी है।

5.2 प्रस्तावना–

दर्शन किसी विषय–वस्तु का तथ्य–प्रमाण के आधार पर तार्किक एवं निष्पक्ष विश्लेषण करके सत्य /ज्ञान की प्राप्ति करता है। विविध दार्शनिक सम्प्रदाय विविध दार्शनिक प्रणालियों का उपयोग करके ज्ञान की प्राप्ति का प्रयास करते हैं। इसी क्रम में बुध्दिवादी ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र स्रोत बुध्दि को मानते हुए बुद्धि के द्वारा ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करते हैं। वे बुद्धि में ज्ञान प्राप्त करने की असीम एवं जन्मजात शक्ति को स्वीकार करते है। अनुभववादी ज्ञान प्राप्ति का स्रोत इन्द्रियानुभव को मानते हैं।

बुद्धिवाद एवं अनुभववाद का समन्वयकर्ता काण्ट अपनी कृति 'क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन' में ज्ञान के विविध आधारों की व्याख्या करते हैं। किस प्रकार का ज्ञान वैध होता है और किस प्रकार का ज्ञान, ज्ञान प्रतीत होते हुए भी भ्रम होता है, काण्ट इसकी भी चर्चा करते हैं। वे बुद्धि एवं अनुभव दोनों को ज्ञान प्राप्ति के स्रोत के रूप में स्वीकार करते हैं और संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों के रूप में ज्ञान की संभावना को व्यक्त करते हैं। वे ज्ञान की सीमा को जगत की सीमा से निर्धारित है अर्थात अतीन्द्रिय सत्ताओं के ज्ञान को असंभव मानते हैं।

5.3 ज्ञान का अर्थ–

दर्शन जगत में ज्ञान के अर्थ के संदर्भ में दार्शनिकों में मत वैविध्य है। विविध दार्शनिक एवं दर्शन सम्प्रदाय ज्ञान को विविध प्रकार से परिभाषित करते हैं। जैसे– सोफिस्ट दार्शनिक प्रत्यक्ष को मानते हैं। सुकरात ज्ञान को सद्गुण मानते हैं (Knowledge is virtue)। प्लेटो सोफिस्टों के ज्ञान सिद्धांत का खण्डन करते हुए ज्ञान को अनिवार्य, सार्वभौम एवं वस्तुनिष्ठ मानते हैं। अनुभववादी दार्शनिक लाक प्रत्ययों की अनुकूलता–प्रतिकूलता के प्रत्यक्षीकरण को ही ज्ञान कहते हैं। ज्ञान की इकाई प्रत्यय है, जो अनुभवजन्य है।

दार्शनिक सम्प्रदाय के रूप में बुध्दिवाद ज्ञान को अनिवार्य एवं सार्वभौम सत्य मानते है। जिसका सम्बन्ध बुद्धि से है। अनुभववादी वस्तुनिष्ठता एवं नवीनता को ज्ञान की अनिवार्य शर्त मानते हैं, जिसका सम्बन्ध क्रियानुभव से है। यह अनिवार्य न होकर संभाव्य होता है। ज्ञान सिद्धांत के सम्बंध में काण्ट का समीक्षावाद (Criticism) अनुभववाद एवं बुद्धिवाद की कमियों को दूर करने का प्रयास करता है। उनके अनुसार अनिवार्यता, सार्वभौमता एवं नवीनता ज्ञान का लक्षण है। काण्ट ऐसे ज्ञान की संभावना संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों में मानते हैं। काण्ट अपने ज्ञान सिद्धान्त में बुद्धिवादी ज्ञान के नवीनता के अभाव तथा अनुभववादी ज्ञान के अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता के अभाव को दूर कर इन को पूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं।

5.4 ज्ञान के स्रोत –

बुद्धिवादी अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता के गुणों से युक्त ज्ञान प्राप्ति के स्रोत के रूप में तर्कबुद्धि (Understanding) को स्वीकार करते हैं। जिसमें ज्ञान जन्मजात (mnatc) रूप से विद्यमान रहता है तथा

इसकी ज्ञान प्राप्ति की शक्ति असीम है। अनुभववाद यथार्थता एवं नवीनता से युक्त ज्ञान प्राप्ति के स्रोत के रूप में इन्द्रियानुभव की स्वीकार करते है। अनुभववाद बुद्धि को कोरा कागज (Tabula Rusa) कहते हैं जिस पर अनुभव से ज्ञान अंकित किया जाता है। काण्ट ज्ञान के स्रोत के रूप में संवेदनशक्ति (Sensibility) एवं बुद्धि (Understanding) दोनों की समान महत्त्व देते हैं।

काण्ट कहते हैं कि इन्द्रियानुभव से ज्ञान का आरम्भ होता है क्योंकि संवेदनशक्ति से ज्ञान की सामग्री प्राप्त होती है। यह सामग्री देश–काल रूपी प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वारों के माध्यम से मानवीय बुद्धि को प्राप्त होती हैं बुद्धि द्वारा प्राप्त यह सामग्री अस्त–व्यस्त, विश्रृंखल एवं क्षणिक होती है, से बुद्धि अपनी कोटियों के माध्यम से नियमित एवं व्यवस्थित करके ज्ञान का स्वरूप देती है। तर्क बुद्धि के 12 विकल्प है। बुद्धि जिस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना चाहती है उसी प्रकार के विकल्प (कोटि) में सामग्री को नियमित एवं व्यवस्थित करने हेतु भेजती है। काण्ट कहते हैं कि बुद्धि का कार्य चींटी या मकड़ी के समान नहीं है जो क्रमशः खाद्य की संग्रह एवं जाले का उत्पादन करती है, बल्कि मधुमक्खी के समान है जो फूलों से रस को प्राप्त करके उससे शहद का निर्माण करती है। उसी प्रकार बुद्धि ज्ञान का संग्रह या ज्ञान की उत्पत्ति नहीं करती है अपितु इंद्रिय संवेदन से ज्ञान की सामग्री प्राप्त करके उसे बुद्धि–विकल्पों के उपयोग से ज्ञान में बदलती है।

5.5 ज्ञान की शर्ते–

ज्ञान की शर्ते ज्ञान के वे अनिवार्य गुण हैं जिनकी किसी कथन या प्रतिज्ञप्ति में उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर प्रामाणिकता एवं अप्रामाणिकता सिद्ध होती है। बुद्धिवादियों के अनुसार ज्ञान की आवश्यक शर्तें– सार्वभौमिकता एवं अनिवार्यता है। यदि किसी कथन में ये दोनों तत्त्व समाहित हैं तो उसे ज्ञान की परिधि के अन्तर्गत माना जायेगा अन्यथा नहीं। बुद्धिवादी ज्ञान सिद्धांत की शर्तों के आलोक में विश्लेषणात्मक कथन ही ज्ञान के अंतर्गत समाहित किये जाते है।

इसी प्रकार अनुभववाद ज्ञान की शर्तों के रूप में यथार्थता एवं नवीनता को स्वीकार करता है। इन शर्तों को संश्लेषणात्मक कथन पूरा करते हैं। अतः संश्लेषणात्मक कथन अनुभववादी ज्ञान सिद्धांत की परिधि में शामिल हैं।

काण्ट ज्ञान की शर्त के रूप में अनिवार्यता, सार्वभौमिकता, यथार्थता एवं नवीनता को स्वीकार करते हैं। काण्ट के ज्ञान सिद्धांत की शर्तें संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय पूरा करते हैं, जिन्हें काण्ट द्वारा संश्लेषणात्मक कथनों एवं प्रागनुभविक कथनों के संयोजन से प्रतिपादित किया गया है। इसके अनुपालन में ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो जाता है। इसी कारण संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों की कटु आलोचना समकालीन विचारकों द्वारा की गयी है।

5.6 इंद्रिय संवेदनों की प्राप्ति –

इंद्रिय संवेदनों की प्राप्ति में देश–काल की भूमिका–देश (Space) एवं काल (Time) प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वार या मानसिक चश्में के समान है, जिनसे इन्द्रिय संवेदन या ज्ञान की सामग्री मानवीय बुद्धि द्वारा प्राप्त की जाती है। मानवीय बुद्धि को ऐसे किसी विषय की संवेदना प्राप्त नहीं होती है जिनका अस्तित्व देश–काल में नहीं होता है। काण्ट देश–काल को शुद्ध संवेदन (Pure Intuition) और संवेदना के शुद्ध आकार (Pure forms of sensibility) कहते हैं। यह प्रागनुभविक होते हैं।

5.7 ज्ञान का अधिष्ठान –

ज्ञाता, ज्ञान का अधिष्ठान होता है। ज्ञाता के अभाव में ज्ञान संभव नहीं है। काण्ट आत्मा को विशुद्ध ज्ञाता मानते हैं । यदि ज्ञान की अवधारणा दोषपूर्ण हो तो आत्मा का स्वरूप भी दोषपूर्ण हो जाता है। परम्परागत रूप से पाश्चात्य दर्शन में आत्मा की प्रकृतिवादी अवधारणा व्यक्त की गयी है। जिसमें सामान्यतः आत्मा को शरीर से भिन्न एक अभौतिक या आध्यात्मिक द्रव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु काण्ट आत्मा की आध्यात्मिक द्रव्य से भिन्न विशुद्ध समाकल्पन की एक अतीन्द्रिय मौलिक संश्लेषणात्मक एकता (The Transcendental Original Synthetic Unity of Pure Apperception) के रूप में निरूपित करते हैं। काण्ट के अनुसार विशुद्ध आत्मा समस्त ज्ञान एवं अनुभूति की प्रागपेक्षा है। आत्मा समस्त बुद्धि–विकल्पों का स्रोत या ज्ञान की सम्प्रत्ययात्मक संरचना का मूल आधार है। इंद्रिय संवेदनों को ज्ञान रूप में व्यवस्थित करने की शक्ति बुद्धि विकल्प, विशुद्ध आत्मा से प्राप्त करते हैं। काण्ट कहते हैं कि –

समस्त प्रकृति पर लागू होने वाले बुद्धि विकल्पों का प्रयोग आत्मा के सम्वन्ध में नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करने से तर्काभास का जन्म होता है। यही कारण है कि काण्ट मनोविज्ञान की कटु आलोचना करते है क्योंकि मनोविज्ञान बुद्धि–विकल्पों से आत्मा को जानने का प्रयास करता है। आत्मा अतीन्द्रिय सत्ता है जो बुद्धि की कोटियों से परे है और ज्ञान का अधिष्ठान है न कि ज्ञान का विषय।

5.8 ज्ञान की केंद्रिकता –

अनुभववादी विचारक जॉन लॉक दर्शन में ज्ञानमीमांसा को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार ज्ञान वस्तु केंद्रित है। हमारा समस्त ज्ञान बाह्य वस्तु के अनुरूप होता है। वे कहते है कि ज्ञान की इकाई प्रत्यय है, जिनसे ज्ञान का निर्माण होता है और प्रत्ययों की उत्पत्ति बाह्य जगत में होती है। इससे ज्ञान में वस्तुनिष्ठता का समावेश होता है।

बर्कले का मत है कि ज्ञान वस्तु केंद्रित न होकर आत्म –केन्द्रित है। वे कहते हैं कि ज्ञान का निर्माण प्रत्ययों से होता है और प्रत्ययों की उत्पत्ति आत्मा में होती है। अतः आत्मा और उसके प्रत्यय ही सत्य है। यहाँ ज्ञान का स्वरूप आत्मा के अनुरूप होता है।

काण्ट ज्ञान को न वस्तु-केंद्रित मानते हैं और न आत्म-केंद्रित मानते है अपितु ज्ञान को बुद्धि केन्द्रित मानते हैं। उनका मत है कि बाह्य जगत से प्राप्त इन्द्रिय संवेदनों को बुद्धि अपनी कोटियों के माध्यम से व्यवस्थित कर ज्ञान के रुप में बदलने का कार्य करती है। बुद्धि की कोटियाँ साँचों के समान हैं। बुद्धि को जिस प्रकार का निर्माण करना होता है उसी प्रकार के साँचे में इंद्रिय संवेदनों को व्यवस्थित कर ज्ञान का निर्माण किया जाता है। अतः ज्ञान बुद्धि केंद्रित है। इसी सन्दर्भ में काण्ट कहते हैं कि बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है (Understanding Makes Nature)।

5.9 ज्ञान की सीमा –

काण्ट का मत है कि ज्ञान की सीमा जगत की सीमा है क्योंकि ज्ञान का प्रारम्भ इन्द्रिय संवेदनों से होता है और इंद्रिय–संवेदनों की उत्पत्ति बाह्य जगत में होती है। देश–काल मानसिक चश्मे के समान हैं जिसके द्वारा मानवीय बुद्धि की इन्द्रिय संवेद्यों की प्राप्ति होती है। जिन्हें बुद्धि व्यवस्थित एवं नियमित कर ज्ञान का निर्माण करती है। इस प्रकार ज्ञान के निर्माण में काण्ट बुद्धि–विकल्प एवं इंद्रिय संवेदनों को समान महत्त्व देते हैं। यदि इन्द्रियानुभव से ज्ञान की सामग्री प्राप्त नहीं होगी तो बुद्धि ज्ञान का निर्माण नहीं कर पायेगी क्योंकि बुद्धि ज्ञान का निर्माण करती हैं न कि ज्ञान की उत्पत्तिकर्ता है। वहीं बुद्धि के अभाव में भी ज्ञान संभव नहीं क्योंकि इंद्रिय संवेदन अव्यवस्थित एवं अनियमित होते हैं जिन्हे बुद्धि विकल्प व्यवस्थित

एवं नियमित करते हैं। इसीलिए कहा गया कि बुद्धि विकल्पों के अभाव में इन्द्रिय संवेदन अंधे हैं जबकि इंन्द्रिय संवेदनों के अभाव में बुद्धि विकल्प पंगु (निष्क्रिय) हैं।

बुद्धि के नियम केवल बाहय जगत पर लागू होते हैं। बुद्धि सम्प्रत्ययों का संकाय है जबकि बुद्धि से भिन्न तत्त्व प्रज्ञा (Reason) सिद्धान्तों का संकाय है। जब प्रज्ञा इंद्रिय संवेदनों के अभाव में अतीन्द्रिय सत्ताओं– ईश्वर, आत्मा, जगत (प्रज्ञा के तीन प्रत्यय) का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करती है तो भ्रम उत्पन होता है। इसे अतीन्द्रिय भ्रम (Transcendental Illusion) कहते हैं। प्रज्ञा द्वारा बुद्धि विकल्पों का अवैध प्रयोग ही तत्त्वमीमांसा (Metaphysics) का जनक है। काण्ट अतीन्द्रिय तत्त्वमीमांसा को असम्भव मानते हैं।

5.10 ज्ञान की संभावना –

काण्ट ज्ञान को अनिवार्यता, सार्वभौमिकता एवं नवीनता के गुणों से युक्त मानते हैं। इन तीनों गुणों से युक्त ज्ञान से काण्ट संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय का प्रतिपादन करते. हैं। काण्ट संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना गणित एवं भौतिकी में व्यक्त करते हैं। काण्ट अपने ग्रन्थ 'क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन' (Critique of Practical Reason) में नीतिशास्त्रीय कथनों में भी संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों के माध्यम से ज्ञान की संभावना व्यक्त करते हैं।

काण्ट का मत है कि गणित देश–काल के प्रत्यय पर आधारित है अतः इसमें संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक विषयों की संभावना है। ज्यामित देश (Space) के प्रत्ययों पर आधारित है, जिसकी विमाएं– लम्बाई, चौडाई एवं ऊँचाई है। ज्यामिति की सभी आकृतियाँ इन्हें विमाओं से निर्मित है। अंकगणित काल (Time) के प्रत्ययों पर आधारित है। काल की विमाएँ–पूर्व (पहले) एवं अपर (बाद में) हैं। अंकगणित की सभी संख्याएं इन्हीं विमाओं से सम्बन्धित हैं। देश–काल विशुद्ध प्रत्यय हैं जो अनुभव की प्रागपेक्षा है। इस कारण गणितीय कथन प्रागनुभविक हैं जबकि इन कथनों में विधेय, उद्देश्य में निहित न होने के कारण से उद्देश्य के सम्बन्ध में नवीन जानकारी देते हैं। अतः ये संश्लेषणात्मक कथन हैं। इस प्रकार काण्ट गणित में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों की संभावना को सिद्ध करके गणित के क्षेत्र में अनिवार्यता सार्वभौमिकता एवं नवीनता से युक्त ज्ञान की संभावना सिद्ध करते हैं।

काण्ट के अनुसार प्राकृतिक विज्ञानों (भौतिकी) में भी कुछ संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों की संभावना को सिद्ध करके ज्ञान की संभावना को दर्शाया जा सकता है। भौतिकी के सभी कथन संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक नहीं होते हैं अपितु मूल सिद्धांत ही संश्लेषणात्मक प्राणनुभाविक कथन होते हैं। जैसे–कारणता का नियम, जो कि बुद्धि का एक विकल्प होने के कारण शुद्ध आकार एवं प्रागनुभविक है तथा सामान्य जीवन में इसका अपवाद नहीं मिलता है। विशेष घटनाओं के संदर्भ में कारणता की जाँच अनुभव के द्वारा की जा सकती है। जिससे ये कथन संश्लेषणात्मक होंगे। इस प्रकार भौतिकी में ज्ञान की संभावना है।

काण्ट तत्त्वमीमांसा के क्षेत्र में ज्ञान की संभावना को स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि ज्ञान के लिए इन्द्रिय संवेदन एवं बुद्धि दोनों अनिवार्य हैं जबकि तत्त्वमीमांसीय सत्ताओं ने आत्मा, ईश्वर, जगत के देश–काल में उपस्थित न होने के कारण इनके इन्द्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं। इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में ज्ञान का निर्माण नहीं होगा। ईश्वर, आत्मा एवं जगत बुद्धि के प्रत्यय न होकर प्रज्ञा के प्रत्यय है। प्रज्ञा इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में काल्पनिक प्रत्ययों पर बुद्धि विकल्पों का प्रयोग करती है। यह बुद्धि विकल्पों का अवैध प्रयोग या दुरुपयोग है जिससे अतीन्द्रिय भ्रम (Transcendental Illusions) की उत्पत्ति होती है। इसे ज्ञान की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। अतः काण्ट तत्त्वमीमांसा को असंभव मानते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि काण्ट द्वारा स्वीकार्य ज्ञान का अर्थ अत्यंत व्यापक है और इसके गुणों में परस्पर विरोध भी है। वे गणित एवं भौतिकी में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों के द्वारा ज्ञान की संभावना को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं किन्तु इससे ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो जाता है। साथ ही काण्ट का ज्ञान सिद्धांत कटु आलोचना का विषय भी बन जाता है। वर्तमान में इसकी स्वीकार्यता नगण्य है।

5.10 शब्दावली

(1) प्रज्ञा (Reason)– बुद्धि से भिन्न, सिध्द्धान्तों का संकलन इन्द्रियानुभव का अतिक्रमण कर बुद्धि से अतीन्द्रिय सत्ताओं का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करती है।

(2) प्रत्यय (Concept)– जिसकी सत्ता केवल विचार के स्तर पर हो, वास्तविक नहीं ।

(3) ज्ञानमीमांसा (Epistemology)– दर्शन की एक शाखा, जो ज्ञान के स्वरूप, प्रकार, शर्तें, सीमा, ज्ञान की संभावना इत्यादि विषयों का अध्ययन करती है।

(4) तर्काभास (Paralogism)– किसी निष्कर्ष की विषय–वस्तु का सम्यक् विश्लेषण किये बिना उसके औपचारिक दोषों पर विचार करना।

5.11 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न–

(1) ज्ञान का अर्थ स्पष्ट करते हुए काण्ट द्वारा बताये गये ज्ञान के लक्षणों का उल्लेख करें।

(2)काण्ट ज्ञान के स्रोत के रूप में किसे स्वीकार करते हैं?

(3) काण्ट ज्ञान के अधिष्ठान के रूप में किसे स्वीकार करते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(1) काण्ट द्वारा ज्ञान को परिभाषित करते हुए ज्ञान की संभावना पर चर्चा करें।

(2) काण्ट ज्ञान की सीमा जगत की सीमा को मानते है इस कथन को स्पष्ट करें।

(3) ज्ञान की संभावना पर निबन्ध लिखें।

5.11 उपयोगी पुस्तकें :

1. काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

2. पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव एवं विकास –हरिशंकर उपाध्याय

MAPH 113
खण्ड – 2

अनुभवातीत संवेदनशास्त्र

प्रस्तावना –

मानवीय बुद्धि बाह्य जगत से प्राप्त इन्द्रिय प्रत्यक्षों को संवेदनशक्ति के द्वारा ग्रहण करती है। यह संवेदन शक्ति मानवीय मन शक्ति है। तर्कबुद्धि इन इन्द्रिय प्रत्यक्षों की व्याख्या कर ज्ञान प्राप्त करती है। संवेदन शक्ति ही एक मात्र साधन है जिससे तर्कबुद्धि पदार्थों से संबंध स्थापित कर ज्ञान प्राप्त करती है। इस संवेदन शक्ति के दो पक्ष इन्द्रियानुभविक एवं प्रागनुभविक हैं। इन्द्रियानुभविक के अंतर्गत इन्द्रियानुभव की वस्तु सामग्री को रखा जाता है तथा प्रागनुभविक के अन्तर्गत इन्द्रिय संवेदनों के आकार को रखा जाता है, जिसके माध्यम से इन्द्रिय संवेदनाएँ प्राप्त होती है। काण्ट इन्हें शुद्ध संवेदन कहते हैं। इसका संबंध अनुभवातीत संवेदनशास्त्र से है। अनुभवतीत संवेदनशास्त्र वह विज्ञान है जो संवेदना के प्रागनुभविक रूप का अध्ययन करता है। इसमें ज्ञान के तर्कबुद्धि द्वारा प्रदत्त पक्ष को निकालकर इन्द्रियानुभव से प्राप्त पक्ष का अध्ययन किया जाता है जो कि संवेदन शक्ति द्वारा प्रागनुभविक रूप से प्रदत्त होता है।

MAPH 113

खण्ड–2 इकाई – 6

देश–काल का तात्त्विक निगमन

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 देश–काल का अर्थ
6.3 देश–काल संबंधी न्यूटन का मत
6.4 देश–काल संबंधी लाइबनीज का मत
61.5 देश–काल संबंधी काण्ट का मत
6.6 काण्ट द्वारा देश–काल का निगमन
6.7 देश–काल का तात्त्विक निगमन
6.7.1 देश–काल अनुभव जन्य नही है
6.7.2 देश–काल प्रागनुभविक हैं
6.7.3 देश–काल सामान्य प्रत्यय नही है
6.7.4 देश–काल अनंत एवं अखण्ड है
6.8 क्या रिक्त देश एवं रिक्त काल संभव है
6.9 क्या देश–काल का तात्त्विक निगमन सुसंगत है
6.10 शब्दावली
61.11 प्रश्नावली
6.12 उपयोगी पुस्तकें

,,,,,,

6.0 उद्देश्य -

'देश काल का तात्त्विक निगमन' इकाई के अन्तर्गत काण्ट द्वारा देश–काल संबंधी पूर्ववर्ती मतों की समीक्षा करते हुए अपने देश–काल के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। तदुपरांत देश–काल की तत्त्वमीमांसीय व्याख्या या तात्त्विक निगमन प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ में काण्ट द्वारा प्रस्तुत चारो प्रमाणों का सविस्तार वर्णन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है।

6.1 प्रस्तावना –

काण्ट संवेदन शक्ति के विवेचन के क्रम में देश काल के स्वरूप की व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि हमारा समस्त ज्ञान, ज्ञान सामग्री के स्तर पर संवेदनों से प्रारंभ होता है। संवेदनों से प्राप्त सामग्री को बुद्धि विकल्पों द्वारा व्यवस्थित एवं नियमित कर ज्ञान का स्वरूप दिया जाता है। वाह्य जगत से प्राप्त संवेदना देश–काल रूपी प्रत्यक्ष आकारों से होकर बुद्धि द्वारा ग्रहण की जाती है। मानवीय बुद्धि ऐसे विषयों की संवेदना प्राप्त नहीं कर सकती है जो देश–काल में अस्तित्त्ववान न हों। काण्ट देश–काल की व्याख्या तात्त्विक एवं अतीन्द्रिय आधारों पर करते हैं किन्तु इससे पूर्व वे देश–काल के संबंध में अपने पूर्ववर्ती मतों की समीक्षा करते हैं।

6.2 देश–काल का अर्थ –

काण्ट देश (Space) एवं काल (Time) के संदर्भ में अपना मत प्रतिपादित करने से पूर्व देश–काल के संबंध में प्रतिपादित अपने पूर्ववर्ती मतों पर विचार करते हैं। इसमें भौतिक विज्ञानी आइजैक न्यूटन एवं

बुद्धिवादी विचारक लाइनीज का विचार शामिल है। काण्ट दोनों मतों की समीक्षा करने के बाद अपना विचार प्रस्तुत करते हैं। उपर्युक्त तीनों मत इस प्रकार हैं–

6.3 देश–काल संबंधी न्यूनटन का मत –

न्यूटन देश–काल को निरपेक्ष सत् मानते हैं। न्यूटन देश की चार विमाओं की बात करते हैं, जिनमें काल भी एक विमा है। अन्य तीन विमाएँ –लम्बाई, चौड़ाई एवं ऊँचाई है। देश–काल वस्तुओं को धारण करते हैं अर्थात् सभी वस्तुएँ देश–काल में ही अस्तित्त्ववान होती है। देश–काल के अभाव में वस्तुओं का अस्तित्त्व संभव है किन्तु देश–काल के अस्तित्त्व के लिए वस्तुओं का अस्तित्त्ववान होना अनिवार्य नही है। यहाँ वस्तुओं का अर्थ देश–काल के सापेक्ष है जबकि देश–काल का अस्तित्त्व निरपेक्ष है। इस प्रकार देश–काल नित्य, विभु, अनन्त एवं निरपेक्ष द्रव्य है। देश–काल असीम है जिसमें सभी वस्तुएँ समाहित हैं।

काण्ट न्यूटन के मत से असहमति व्यक्त करते हुए अपनी कृति 'शुद्ध बुद्धि की आलोचना' (Critique of Pure Reason) में कहते हैं कि 'जो लोग यह मानते हैं कि देश–काल स्वाधीन और निरपेक्ष सत् है वो नित्य एवं अनन्त अभावों का मानते हैं काण्ट कहते हैं कि निरपेक्ष देश–काल द्रव्य नहीं हो सकते हैं। अतः देश–काल को अभाव मानना पड़ेगा किन्तु इन्हें अभावात्मक द्रव्य मानना व्याघाती (Contradictary) है।

पुनः न्यूटन ईश्वरवाद में भी विश्वास रखते है। यदि देश– काल नित्य, अनन्त एवं निरपेक्ष मान लिया जाये तो यह ईश्वरवादी धारणा के विरुद्ध होगा जो यह मानती है कि सभी द्रव्यों का अंतिम कारण ईश्वर है। इस प्रकार न्यूटन के देश–काल सिद्धांत एवं ईश्वरवाद में अन्तर्विरोध उत्पन्न हो जाता है, जिसका समाधान करने का प्रयास लाइबनीज करते हैं।

6.4 देश काल संबंधी लाइनीज का मत –

लाइबनीज के मतानुसार देश–काल प्रपंचों (Phonomena) आभासों(Appearances) या प्रतिबिम्बों (Re Presentation) के संबंध है।। ये वस्तु के समान सत् न होकर बौद्धिक प्रत्यय है। देश–काल संवेदन है और ये वास्तविक वस्तुओं के शुद्ध प्रत्यय हैं। देश–काल अस्पष्ट या भ्रान्त प्रत्यय है। काण्ट लाइबनीज के देश–काल विचार से असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि संवेदन एवं प्रत्यय में मात्रात्मक अन्तर न होकर प्रकारता का अंतर है। वे या तो संवेदन है या प्रत्यय है। संवेदनों का अस्पष्ट प्रत्यय कहना भ्रम है।

6.5 देश काल संबंधी काण्ट का मत –

देश–काल संबंधी काण्ट का मत न्यूटन एवं लाइबनीज के देश–काल विचारों का समन्वय है। काण्ट के अनुसार देश–काल को आभास का आकार (Form of Appearances), संवेदना के आकार (Farm of Sensibility), प्रत्यक्ष के आकार (Form of intuition) और कुछ प्रागनुभविक प्रत्यक्ष (Pure mtuition) हैं। 'आभास का आकार' से तात्पर्य है कि प्रत्येक आनुभविक विषय देश–काल के संबंधों के अन्तर्गत व्यवस्थित हो सकता है। संवदेना के आकार का अर्थ देश–काल हमारी मानवीय संवेदना की प्रकृति में निहित है। इन्द्रियानुभव के पूर्व ये मन की संवेदना–शक्ति में अव्यक्त रूप में रहते हैं तथा जब इन्द्रियानुभव घटित होता है त्योंही वो उसकी घटना के व्यक्त आकार को स्वयं धारण कर लेते हैं। इस प्रकार देश–काल मन द्वारा इन्द्रियानुभविक विषयों पर आरोपित किए जाते हैं। 'प्रत्यक्ष के आकार' से तात्पर्य देश–काल की आभास के आकार या संवदेना के आकार में निश्चित होना है। शुद्ध प्रत्यक्ष के एकाधिक अर्थ है जिसमें प्रत्यक्ष के आकार को उसकी सामग्री से अलग करने पर शुद्ध प्रत्यक्ष प्राप्त होता है। इसके साथ ही शुद्ध प्रत्यक्ष स्वयं प्रत्यक्ष की सामग्री भी है।

देश–काल को शुद्ध प्रत्यक्ष मानना काण्ट का आलोचनावाद है। शुद्ध संवेदना नाम का कोई अनुभव नहीं है क्योंकि प्रत्येक संवेदना में बुद्धि का अनिवार्य योगदान होता है।

वास्तव में काण्ट देश और काल को ऐसे संस्थान मानता है जिनके प्रतिबिम्ब नहीं हो सकते किन्तु जिनके बिम्ब सम्भव है। उदाहरण के लिए हम देश को उस तरह नहीं प्रत्यक्ष कर सकते हैं जिस तरह एक

मेज को करते हैं। किन्तु देश में स्थित सभी वस्तुओं को हटाकर हम अपने मन में देश का बिम्ब रख सकते हैं। यह बिम्ब ही इन्द्रियगोचर विषय की संवेदना की अनिवार्य शर्त है।

6.6 काण्ट द्वारा देश–काल का निगमन –

काण्ट देश–काल सिद्धांत की दो व्याख्याएँ या निगमन प्रस्तुत करते हैं– देश–काल का तात्त्विक या तत्त्वमीमांसीय निगमन एवं देश–काल का अतीन्द्रिय निगमन।

6.7 देश–काल का तात्त्विक निगमन –

किसी प्रत्यय की तात्त्विक व्याख्या का अर्थ किसी प्रत्यय का विश्लेषण करने के उपरान्त उसे प्रागनुभविक तत्त्व के रूप सिद्ध करना है। उपर्युक्त विश्लेषण का संबंध जब देश–काल के प्रत्ययों से होता है और उन्हें प्रागनुभविक सिद्ध किया जाता है, तो इसे देश–काल का तात्त्विक निगमन कहते हैं।

काण्ट कहते है कि देश (Space) बाह्य इन्द्रिय का आकार है तथा काल (Time) आंतरिक इन्द्रिय का आकार है। बाह्येन्द्रियाँ चक्षु, श्रवण, रसना, घ्राण एवं त्वक् हैं तथा आन्तरिक इन्द्रिय मन है। बाह्य इन्द्रियों से देश में स्थित वस्तुओं का संवेदन प्राप्त होता है तथा आन्तरिक इन्द्रिय से काल में घटित मन की स्थितियों का संवेदन प्राप्त होता है। इस प्रकार संयुक्त रूप से कहा जा सकता है कि बाह्य इन्द्रियों एवं मन से जो संवेदन प्राप्त होते हैं वे क्रमशः देश एवं काल में स्थित होते हैं।

काण्ट देश–काल की विवेचना प्रागनुभविक रूप से करते हैं तथा देश–काल के तात्त्विक निगमन (तत्त्वमीमांसीय व्याख्या) के लिए चार प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इन प्रमाणों के माध्यम से काण्ट यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि देश–काल आनुभविक न होकर प्रागनुभविक हैं। ये सम्प्रत्यय न होकर शुद्ध संवेदनाएँ (Pure Intuition) हैं। काण्ट द्वारा प्रस्तुत चार तर्क निम्नलिखित है–

6.7.1 देश–काल अनुभवजन्य नहीं है –

काण्ट कहते हैं कि देश–काल आनुभविक नहीं है क्योंकि जब देश–काल का अनुभव होता है, तो यह क्रमशः सह–अस्तित्त्व एवं अनुक्रम के रूप में होता है। सह–अस्तित्त्व से तात्पर्य दो से अधिक वस्तुओं का साथ–साथ अस्तित्त्ववान होना है तथा अनुक्रम का तात्पर्य एक घटना के बाद दूसरी घटना का घटित होना है। सह–अस्तित्त्व एवं अनुक्रम से देश एवं काल का प्रत्यय प्राप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि सह–अस्तित्त्व स्वयं किसी देश में रहता है और अनुक्रम स्वयं किसी काल में घटित होता है। इस प्रकार सह–अस्तित्त्व एवं अनुक्रम का अनुभव क्रमशः देश एवं काल के अभाव में नहीं हो सकता है।

काण्ट का मत है कि वस्तुएँ एक साथ तभी रह सकती है जब वे पहले से ही देश में स्थित हों। इसी प्रकार घटनाएँ अनुक्रम में तभी घटित हो सकती है जब वे पहले से ही एक काल में व्यवस्थित हों। अतः देश सह–अस्तित्त्व एवं काल अनुक्रम की प्रागपेक्षा है। देश के संबंध में सह–अस्तित्त्व सार्थक है और काल के संबंध में अनुक्रम सार्थक हैं। मानव जिस किसी विषय में देश–काल के प्रत्यय को प्राप्त करने का प्रयास करता है वह स्वयं किसी देश–काल में घटित होंगे। अतः इससे देश–काल का निगमन नहीं किया जा सकता है, जो यह सिद्ध करता है कि देश–काल अनुभवजन्य नही है बल्कि अनुभव स्वयं देश–काल पर निर्भर है।

6.7.2 देश–काल प्रागनुभविक प्रत्यय है –

काण्ट द्वारा देश–काल के संबंध में प्रतिपादित प्रथम तर्क निषेधात्मक है जो यह सिद्ध करता है कि देश–काल आनुभविक प्रत्यय नहीं है कि जबकि दूसरा तर्क भावात्मक है जो कि यह सिद्ध करता है कि देश–काल प्रागनुभविक है। काण्ट कहते हैं कि ऐसे देश–काल के विषय में सोचा जा सकता है जिसमें वस्तुएँ न हो किन्तु ऐसी वस्तुओं के विषय में नहीं सोचा जा सकता है जो देश–काल से स्वतंत्र हों। इसी प्रकार ऐसे काल के विषय में सोचा जा सकता है जिसमें कोई घटनाएँ न हों किन्तु ऐसी घटनाओं के विषय में नहीं सोचा जा सकता है जो काल रहित हों। दूसरे शब्दों में काण्ट कहते हैं कि रिक्त देश एवं रिक्त

काल तो तभी संभव है किन्तु देश एवं काल से स्वतंत्र वस्तुओं और घटनाओं की संवेदना असंभव है। इस प्रकार देश–काल वस्तुओं और घटनाओं की संवेदना की तार्किक प्रागपेक्षा है। जो मानवीय प्रत्यक्षों में निहित होते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण को एक दृष्टांत के माध्यम से समझा जा सकता है। जैसे – हम किसी वृक्ष के संदर्भ में विचार करें तो उसके 'हरे या सूखे' 'लम्बे या छोटे' होने के विषय में सोचा जा सकता है किन्तु ऐसा नहीं सोचा जा सकता है कि वृक्ष देश में है या नहीं। इससे स्पष्ट होता है हरा, सूखा, लम्बा, छोटा इत्यादि वृक्ष के गुण है किन्तु देशीय होना किसी वृक्ष का गुण न होकर उसके अस्तित्त्व की अनिवार्य शर्त है। ऐसा ही विचार घटनाओं के संदर्भ में काल का है।

काण्ट जब यह कहते हैं कि रिक्त देश एवं रिक्त काल संभव है तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि रिक्त देश एवं रिक्त काल अनुभव के विषय होते हैं क्योंकि रिक्त देश एवं रिक्त काल विचार रूप में संभव है, किन्तु ये अनुभव का विषय वस्तु एवं घटनाओं के संबंध में ही होते हैं। यही कारण है कि काण्ट, न्यूटन के निरपेक्ष देश की अवधारणा का खण्डन करते हैं।

काण्ट द्वारा प्रतिपादित प्रथम एवं द्वितीय प्रमाण सम्मिलित रूप से यह स्थापित करते हैं कि देश–काल प्रागनुभविक है।

6.7.3 देश–काल सामान्य प्रत्यय नहीं है –

काण्ट का मत है कि देश–काल सामान्य प्रत्यय नहीं है। सामान्य किसी वर्ग के सभी विशेषों में पाये जाने वाला सारतत्त्व है। जैसे– मनुष्य एक वर्ग है, जिसके सभी विशेषों अर्थात् सभी मनुष्यों में 'मनुष्यत्त्व' नामक सामान्य पाया जाता है। दूसरे शब्दों में सामान्य का प्रत्यय पाये जाने के लिए उसके अनेक विशेष उदाहरणों का होना अनिवार्य है किन्तु देश एवं काल के अनेक विशेष नहीं होते हैं। ये दोनों अपने प्रकार के एकमात्र प्रत्यय हैं। जब हम विभिन्न साधनों (देश) की बात करते हैं तो वे देश के उदाहरण नहीं है बल्कि उसके अंश हैं। इसी प्रकार जब हम विभिन्न कालों (ग्रीष्म काल, वर्षा काल, प्रातः काल, सायं काल इत्यादि) की बात करते हैं तो ये काल के उदाहरण नहीं अपितु काल के अंश हैं जो समग्रता में काल कहते जाते है। अतः देश–काल शुद्ध प्रत्यक्ष है। वे प्रत्यक्ष हैं क्योंकि वे विशेष है और ये शुद्ध हैं क्योंकि सर्वव्यापक हैं।

6.7.4 देश–काल अनन्त एवं अखण्ड है –

काण्ट कहते है कि देश–काल अनन्त,अखण्ड एवं अविभाज्य हैं। देश–काल अनन्त है। क्योंकि इन्हें किसी सीमा नहीं बाँध जा सकता है। देश–काल अखण्ड एवं अविभाज्य है क्योंकि देश एवं काल का विभाजन 'क्रमशः देश खण्डों एवं काल खण्डों में की नहीं किया जा सकता है। देश–काल का अनन्त, अविभाज्य एवं सर्वव्यापी होना उसे प्रागनुभविक बनता है जबकि विशेष होना प्रत्यक्ष का विषय बनता है इसलिए काण्ट देश–काल को प्रागनुभविक प्रत्यक्ष कहते हैं।

उपर्युक्त तर्क तृतीय तर्क के आधार को पुष्ट करता है। काण्ट देश–काल को 'प्रदत्त अनन्त महत्परिणाम (Unfinite Given Magnitude) कहते हैं। यदि देश–काल इन्द्रियानुभविक सम्प्रत्यय होते तो इन्हें अनन्त परिणाम वाला नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इन्द्रियानुभविक सम्प्रत्ययों का परिणाम निर्धारित होता है किन्तु देश–काल के परिणाम को निर्धारित नहीं किया जा सकता है। अतः ये सम्प्रत्यय न होकर संवेदन है।

6.8 क्या रिक्त देश एवं रिक्त काल संभव है –

न्यूटन ने रिक्त देश एवं रिक्त काल को संभव माना है क्योंकि देश एवं काल से क्रमशः सभी वस्तुओं और घटनाओं को निकाला जा सकता है। किन्तु काण्ट न्यूटन के विचार से सहमत नहीं है। उनके अनुसार देश एवं काल की सार्थकता वस्तुओं और घटनाओं के संदर्भ में ही है। पुनः काण्ट कहते हैं कि यदि

देश–काल से वस्तुओं और घटनाओं को निकाल दिया जायेगा तो उन्हें किसी न किसी देश–काल में रखना होगा क्योंकि देश–काल वस्तुओं एवं घटनाओं की पूर्वपेक्षा हैं।

हलॉकि न्यूटन के मत का खण्डन करने के उपरान्त भी काण्ट यह कहते हैं कि देश–काल के विषय में सोचा जा सकता है जिसमें वस्तुएँ एवं घटनाएं न हों इस संदर्भ में काण्ट के मत के संरक्षण में एच.जे.पेंटन ने अपनी कृति 'Kant's Metaphysies of Experience' में कहते हैं कि काण्ट का आशय सभी वस्तुओं एवं घटनाओं को देश–काल से हटाया नहीं है अपितु उनका आशय है कि कुछ वस्तुओं और घटनाओं को देश–काल से निकाल दिया जाये तब भी देश–काल रहेंगे लेकिन किसी वस्तु या घटना से देश–काल को निकाल दिया जाये तो वस्तु एवं घटना संभव नही है।

6.9 क्या देश–काल का तात्त्विक निगमन सुसंगत है?

काण्ट द्वारा प्रतिपादित देश–काल के तात्त्विक निगमन की सुसंगतता पर कुछ दार्शनिकों ने प्रश्न उठायें हैं।

(1) काण्ट ने देश–काल को एक–दूसरे से स्वतंत्र माना है किन्तु ऐसा संभव नही है। काल केवल आन्तरिक विषयों का निर्धारण करता है बाह्येन्द्रियों के प्रत्येक विषय का निर्धारण देश एवं काल दोनों से होता है। अतः देश–काल प्रत्यक्ष के दो परस्पर पृथक आकार न होकर एकाकार हैं।

(2) काण्ट द्वारा प्रतिपादित प्रागनुभविक प्रत्यक्ष की अवधारणा भ्रामक है क्योंकि जो प्रागनुभविक होता है वह प्रत्यक्ष का विषय नहीं हो सकता है क्योंकि प्रत्यक्ष होने के लिए आनुभविक होना अनिवार्य है।

(3) स्ट्रासन का मत है कि जिसका संवेदन प्राप्त होता है उसकी वास्तविक सत्ता हो, यह अनिवार्य नही है। जैसे– रेगिस्तान में मृग मरीचिका की संवेदना प्राप्त होती है किन्तु इसकी वास्तविक सत्ता नहीं है।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है काण्ट देश–काल के संबंध में पूर्ववर्ती मतों की समीक्षा करने के उपरान्त अपने मत का प्रतिपादन करते हैं। वे देश–काल की तात्त्विक व्याख्या के संबंध में प्रमाणों को प्रस्तुत करते हैं। ये प्रमाण आलोचना से मुक्त नहीं हैं किन्तु काण्ट की तात्त्विक व्याख्या तार्किक तत्त्वमीमांसा के रूप में दर्शन की समृद्धि में सहायक है।

6.10 शब्दावली :

(1) **निरपेक्ष (Absolute)** – जो किसी अन्य पर निर्भर न हो।
(2) **प्रागनुभविक (Apriori)** – अनुभव से पूर्व अर्थात जिसके लिए अनुभव की अनिवार्यता न हो।
(3) **आनुभविक (Empirical)** – जो अनुभव का विषय हो।
(4) **आनुभविक (Pre-Conditions)** – किसी वस्तु या घटना के अस्तित्त्व की पूर्व शर्तें।

6.11 प्रश्नावली

लघु-उत्तरीय प्रश्न -

(1) काण्ट द्वारा प्रतिपादित देश–काल विचार का वर्णन करें।
(2) काण्ट देश काल को अनुभवजन्य मानते हैं या प्रागनुभविक, तर्क प्रस्तुत करें।
(3) क्या रिक्त देश एवं रिक्त काल संभव है।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न –

(1) देश-काल संबंधी मतों की समीक्षा करें?
(2) देश-काल के तात्त्विक निगमन के संदर्भ में काण्ट द्वारा प्रस्तुत तर्कों का मूल्यांकन करें?

6.12 उपयोगी पुस्तकें–

(1) काण्ट का दर्शन – संगमलाल पाण्डेय
(2) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

MAPH 113

खण्ड– 2

इकाई –7 : देश–काल का अनुभवातीत निगमन

इकाई की रूप रेखा :–

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 देशकाल का अर्थ

7.3 देश–काल का अनुभवातीत निगमन

2.3.1 देश का अनुभवातीत निगमन

2.3.2 काल का अनुभवातीत निगमन

7.4 देश–काल के प्रत्यय मानसिक है या वस्तुनिश्ठ

7.5 क्या देशकाल बुद्धि विकल्प है?

7.6 क्या देश–काल की अनुभवातीत निगमन सुसंगत है?

7.7 शब्दावली

7.8 प्रश्नावली

7.9 उपयोगी पुस्तकें

****

7.0 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई 'देश–काल का अनुभवातीत निगमन' (Transcendental Exposition of Space and Time) के अन्तर्गत अनुभवातीत निगमन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए काण्ट द्वारा देश–काल के प्रत्यय को अनुभवातीत प्रमाणित करने हेतु दिये गये तर्कों का वर्णन किया गया है। काण्ट के तर्कों का विश्लेषण करते हुए देश–काल के अनुभवातीत निगमन के संदर्भ में दार्शनिकों द्वारा उठायी गयी आपत्तियों के आलोक में काण्ट के उपर्युक्त सिद्धांत का मूल्यांकन किया गया है।

7.1 प्रस्तावना –

काण्ट देश–काल के संबंध में तात्त्विक एवं अनुभवातीत निगमन को प्रस्तुत करते हैं। देश–काल के तात्त्विक निगमन के द्वारा वे देश–काल को अनुभवतीत प्रत्यय न मानकर प्रागनुभविक प्रमाणित करते हैं। पुनः काण्ट देश–काल के प्रत्ययों को सामान्य न मानकर विशुद्ध प्रत्यक्ष (Pure Intuition) मानते हैं। वे अपने तर्कों से देश–काल को अनन्त, अखण्ड एवं अविभाज्य सिद्ध करते हैं।

देश–काल के अनुभवातीत निगमन के द्वारा काण्ट यह प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं कि देश–काल की प्रागनुभविकता पर ही संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक विज्ञानों का अस्तित्त्व निर्भर करता है।

7.2 देश–काल का अर्थ एवं स्वरूप –

देश वह स्थान है जहाँ कोई वस्तु स्थित होती है। जैसे वृक्ष भूमि पर स्थित है, तो यहाँ भूमि 'देश' के अंतर्गत समाहित है। काल का वह समय है जहाँ कोई घटना घटित होती है। जैसे– प्रातःकाल सूर्योदय हुआ। यहाँ 'प्रातः–काल' को काल के अंतर्गत समाहित किया जाता है।

देश–काल मानिसिक धर्म है। ये प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वार हैं जिनसे होकर इन्द्रिय संवेदन प्रवेश करते हैं और ज्ञान का स्वरूप ग्रहण करने के लिए बुद्धिविकल्पों तक पहुँचते हैं। काण्ट कहते हैं कि देश–काल मानसिक होते हुए भी व्यक्ति की कल्पना नहीं हैं क्योंकि देश–काल सभी मनुष्यों में सार्वभौम रूप या निश्चित रीति से पाये जाते हैं। यहीं कारण है कि देश–काल के मानसिक होने पर भी सभी के अनुभव वस्तुनिष्ठ होते हैं न कि आत्मनिष्ठ।

7.3 देश–काल का अनुभवातीत निगमन –

काण्ट देश–काल का निगमन तात्त्विक एवं अनुभवतीत दो रूपों में करते हैं। तात्त्विक निगमन की चर्चा इससे पूर्ववर्ती इकाई में जा चुकी है। प्रस्तुत इकाई में अनुभवातीत या अतीन्द्रिय निगमन पर चर्चा की गयी है। अनुभवातीत निगमन में अनुभवातीत से तात्पर्य इन्द्रियानुभव की सीमा से परे होना है अर्थात् जिसे इन्द्रियों द्वारा न जाना जा सके । इसे अगोचर या अतीन्द्रिय भी कहते हैं। निगमन का अर्थ है तार्किक प्रक्रिया का प्रयोग करते हुए सामान्य से विशेष की ओर जाना या स्वयंसिद्धियों के आधाार पर विशेष निष्कर्षों को स्थापित करने से है। यह तर्क की एक प्रणाली है।

देश–काल के अनुभवातीत निगमन से तात्पर्य देश–काल के प्रत्ययों का अनुभव से परे होना है। यद्यपि देश–काल के संवेदनों का प्रारंभ अनुभव से होता है किन्तु एक बार जब देश–काल प्रत्ययों का ज्ञान हो जाता है तो ये अनुभव निरपेक्ष होकर प्रागनुभविक हो जाते हैं। देश–काल का अनिवार्य एवं प्रागनुभविक होना तभी संभव है जब देश–काल प्रत्यय अनुभवजन्य न होकर आत्मा में पहले से विद्यमान हों।

7.3.1 देश का अनुभवतीत निगमन –

काण्ट ज्यामिति को देश (Space) का विज्ञान कहते हैं और देश की अनुभवातीतता/अतीन्द्रियता को ज्यामिति के दृष्टांत से निगमित करने का प्रयास करते हैं। वे ज्यामिति के कथनों को संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक मानते हैं। (इसकी चर्चा प्रथम खण्ड की इकाई तीन में की जा चुकी है) चूँकि ज्यामिति के कथन संश्लेषणात्मक है अतः इन्द्रियानुभव या प्रत्यक्ष का विषय है। पुनः ज्यामिति प्रागनुभविक है क्योंकि ज्यामिति के कथन अनिवार्य एवं सार्वभौम सत्य होते हैं। यह तभी संभव है जब ज्यामिति का आधार देश के प्रत्यय प्रागनुभविक हों।

7.3.2 काल का अनुभवातीत निगमन –

काण्ट को अनुभवातीत प्रमाणित करने के क्रम में गति विज्ञान (Dynamics) का दृष्टांत देते हैं। काण्ट गति विज्ञान को काल का विज्ञान कहते हैं क्योंकि गति की व्याख्या के लिए काल अनिवार्य है। वे कहते हैं कि गति की व्याख्या सदैव काल के सापेक्ष ही की जा सकती है। काल के अभाव में गति की व्याख्या संभव नहीं है।

काण्ट कहते हैं कि ज्यामिति के समान ही गति विज्ञान में भी संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णयों की संभावना को सिद्ध किया जा सकता है। गति–विज्ञान के कथन संश्लेषणात्मक हैं क्योंकि इनकी संवेदनाएँ इन्द्रियानुभव से प्राप्त होती हैं। गति–विज्ञान के कथन प्रागनुभविक भी है क्योंकि इनके ज्ञान के लिए अनुभव की अनिवार्यता नहीं है। गति विज्ञान के प्रागनुभविक होने से काल की प्रागनुभविकता भी सिद्ध होती है।

पुनः काण्ट काल से संबंधित दो स्वयंसिद्धियों के आधार पर भी काल की अनुभवातीतता या संश्लेषणत्मक प्रागनुभविता सिद्ध करते हैं –

(1) काल एक आयामी है। काल में पूर्वापरता का भाव पाया जाता है और युगपद्भाव का अभाव पाया जाता है।

(2) गति बोध से सिद्ध होता है कि काल गति की सामान्य एवं अनिवार्य शर्त है। गति विज्ञान की स्वयं सिद्धियाँ तभी प्रागनुभविक हो सकती है जब उसका आधार काल प्रागनुभविक हो। इससे काल की अनुभवातीतता सिद्ध होती है।

काण्ट द्वारा अंकगणित एवं ज्यामिति के कथनों को प्रागनुभविक मानने पर अनुभववादियों द्वारा आपत्ति की गयी कि यदि अंकगणित एवं ज्यामिति के कथन प्रागनुभविक है तो बच्चों को खिलौनों एवं आकृतियों के माध्यम से ज्ञान क्यों कराया जाता है जबकि ये जन्मजात (Innate) रूप से बच्चों में पाये जाने चाहिए। इसके प्रत्युत्तर में काण्ट का कहना है कि खिलौने एवं आकृतियाँ आत्मा में प्रागनुभविक रूप से निहित ज्ञान को जाग्रत करने का कार्य करते हैं। ये नवीन ज्ञान नहीं देते हैं। एक बार बच्चे को संख्याओं और ज्यामितीय संरचनाओं का ज्ञान हो जाने पर उच्च-स्तरीय गणनाओं एवं जटिल आकृतियों में ऐसी सामग्री की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

7.4 देश–काल के प्रत्यय मानसिक है या वस्तुनिष्ठ –

काण्ट कहते हैं कि देश–काल के प्रत्यय प्रागनुभविक होने के कारण बुद्धि के प्रत्यय हैं किन्तु ये मानसिक या काल्पनिक नही हैं अपितु ये वस्तुनिष्ठता से युक्त हैं। ये सभी मनुष्यों में निश्चित रीति से पाये जाते हैं। काण्ट संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों को अनिवार्य, सार्वभौम, वस्तुनिष्ठ एवं नवीन मानते हैं। काण्ट तर्कों के द्वारा इन कथनों की संभावना को गणित एवं भौतिकी में सिद्ध भी करते हैं। काण्ट कहते हैं कि देश–काल के कारण ही गणित, ज्यामिति एवं भौतिकी के कथनों में अनिवार्यता, नवीनता एवं वस्तुनिष्ठता पायी जाती है। अंकगणित काल एवं ज्यामिति देश के प्रत्ययों पर आधारित है जबकि गति विज्ञान में देश–काल दोनों के प्रत्यय पाये जाते हैं।

7.5 क्या देश–काल की बुद्धि विकल्प है? –

बुद्धि विकल्प प्रागनुभविक आकार हैं, जिनके लिए अनुभव की आवश्यकता नहीं होती है। ये इन्द्रिय संवेदनों को ज्ञान में बदलते हैं। देश–काल भी प्रागनुभविक हैं जो इन्द्रिय संवेदन की प्रागपेक्षा हैं। ऐसे में देश–काल के बुद्धि–विकल्प होने की संभावना व्यक्त की जाती है। काण्ट के मतानुसार देश–काल प्रागनुभविक होने पर भी बुद्धि विकल्प नहीं हैं। ये शुद्ध संवेदन मात्र हैं, जो अनुभवजन्य इन्द्रिय संवेदन नहीं हैं। ये प्रत्यक्ष अनुभव रूप होने के कारण शुद्ध संवेदन है। देश–काल निर्विकल्प प्रत्यक्ष रूप हैं जबकि बुद्धि विकल्प सविकल्प प्रत्यक्ष रूप है। बुद्धि विकल्प सामान्य विज्ञान रूप है। यदि देश एवं देशखण्ड और काल एवं काल खण्ड में सामान्य एवं विशेष का संबंध (जैसा मनुष्यत्त्व एवं मनुष्य का संबंध) न होकर अनन्त एवं सान्त का संबंध है।

7.6 देश–काल का अनुभवातीत निगमन सुसंगत है? –

काण्ट द्वारा प्रतिपादित देश–काल के अनुभवातीत निगमन पर कुछ दार्शनिकों द्वारा आपत्ति उठायी गयी है–

(1) स्ट्रासन का मत है कि काण्ट द्वारा ज्यामिति के संबंध में देश की व्याख्या उचित नहीं है। ज्यामिति के दृष्टांत में काण्ट द्वारा विवेचित देश यूक्लिड के ज्यामितीय सिद्धांतों पर आधारित है, जो त्रिआयामी है और इसका विम्ब संभव है। इसमें किसी त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बरबार होता है। काण्ट ने त्रिभुज से संबंधित इस प्रमेय को संश्लेषणात्मक माना है। वे कहते हैं कि ये सिद्धांत विश्लेषणात्मक नहीं हो सकता है क्योंकि इसकी सिद्धि मात्र 'अबाध नियम' या 'तादात्म्य नियम' (Law of Identity) से नहीं हो सकती है। इसके लिए एक मानसिक संरचना की भी आवश्यकता है, जो इसे संश्लेषणात्मक सिद्ध करती है।

काण्ट ने पूर्ववर्ती बुद्धिवादी विचारक लाइबनीज ने समस्त ज्यामितीय सिद्धांतों को विश्लेषणात्मक माना है क्योंकि इनकी सिद्धि 'तादात्म्य नियम' से की जा सकती है। आधुनिक समय में वोल्ये एवं लोवाशेरिकन की ज्यामितीय प्रचलित है, जो लाइबनीज के मत का समर्थन करती है और काण्ट के मत को गलत प्रमाणित करती है। आधुनिक ज्यामिति के अनुसार प्रत्येक ज्यामितीय सिद्धांत को अबाध नियम से सिद्ध किया जा सकता है और ज्यामितीय का प्रत्येक कथन विश्लेषणात्मक होता है न कि संश्लेषणात्मक। इससे काण्ट के देश–काल का अतीन्द्रिय निगमन असंभव हो जाता है।

(2) काण्ट ने निगमन का आधार देश को माना है किन्तु आधुनिक तर्कशास्त्र में निगमन हेतु देश का अनिवार्य उपयोग नही है जैसे– हिल्बर्ट अपने गणित (Meta-Mathematics) में संरचना का उपयोग नहीं करते हैं। इससे गणित देश से निरपेक्षित हो गया है।

(3) काण्ट द्वारा प्रस्तुत देश–काल की अतीन्द्रिय अवधारणा अज्ञेयवाद (Agnasticism) की ओर ले जाती है। जिसके अनुसार मनुष्य केवल संवृत्ति (Phenomena) को ही जान सकता है, परमार्थ (Noumena) अज्ञेय है।

(4) सैमुअल अलेक्जेण्डर का मतलब है कि देश एवं काल को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है जबकि काण्ट ने ज्यामिति को देश पर आधारित माना है तथा गति विज्ञान को काल से संबंधित किया है। इस प्रकार काण्ट देश–काल को अलग कर देते हैं, जो सुसंगत विचार नही है।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि किसी भी सिद्धांत का निष्पक्ष मूल्यांकन तत्कालीन सामाजिक, वैज्ञानिक एवं गणितीय मान्यताओं में ही समीचीन है क्योंकि विभिन्न युगों की सामाजिक एवं वैज्ञानिक अवधारणाओं में परिवर्तन एवं संशोधन होता है। कालान्तर में वैज्ञानिक एवं गणितीय मान्यताओं में संशोधन एवं परिवर्तन से काण्ट की देश–काल संबंधी मान्यताएँ असंगत हो गयी है। किन्तु काण्ट की यह मान्यता आज स्थापित है कि मनुष्य उन्हीं विषयों को जान सकता है जो देश–काल में अस्तित्त्ववान है।

7.7 शब्दावली

(1) मानसिक – जो मन से संबंधित हो या मन की कल्पना से उत्पन्न होने वाला।

(2) निर्विकल्प – वस्तु के केवल अस्तित्त्व का आभास होना।

(3) सविकल्प – वस्तु का समस्त विशेषताओं के साथ अस्तित्त्व का ज्ञान होना

7.8 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न –

(1) ज्यामिति के संदर्भ में काण्ट का देश का अनुभवातीत निगमन का वर्णन करें?

(2) गति विज्ञान के संदर्भ में काण्ट द्वारा प्रतिपादित काल का अनुभवातीत निगमन का वर्णन करें?

(3) क्या देश–काल बुद्धि विकल्प है?

दीर्घ उत्तरी प्रश्न

(1) देश –काल के अनुभवातीत निगमन पर निबंध लिखें?

(2) **क्या काण्ट का देश-काल का अनुभवातीत निगमन सुसंगत है? तर्क प्रस्तुत करें**

7.9 उपयोगी पुस्तकें

(1) काण्ट का दर्शन – संगमलाल पाण्डेय

(2) पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव एवं विकास – हरिशंकर उपाध्याय

(3) पाश्चात्य दर्शन – चन्द्रधर शर्मा

-----0000000--000000--

MAPH 113

खण्ड – 2

इकाई – 8 देश–काल की इन्द्रियानुभविक वास्तविकता तथा पारमार्थिक प्रत्ययात्मकता

संरचना :–

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 न्यूटन के देश–काल मत की समीक्षा
8.3 लाइबनीज के देश–काल मत की समीक्षा
8.4 काण्ट का देश–काल मत
8.5 देश–काल इन्द्रियानुभविक वास्तविक एवं पारमार्थिक प्रत्यात्मक
8.6 देश–काल की इन्द्रियानुभविक वास्तविकता
8.7 देश–काल की पारमार्थिक प्रत्यात्मकता
8.8 क्या वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जाना जा सकता है?
8.9 क्या देशगत–कालगत जगत आभास है?
8.10 देश–काल के संबंध में सत् एवं आभास का भेद
8.11 शब्दावली
8.12 प्रश्नावली
8.13 उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य –

'देश–काल की इन्द्रियानुभविक वास्तविकता तथा पारमार्थिक प्रत्ययात्मकता (Emprical Reality and Transcendental Identity of Space and Time) इकाई के अन्तर्गत काण्ट द्वारा देश–काल के संबंध में न्यूटन एवं लाइबनीज के मतों की समीक्षा करते हुए देश–काल के संबंध में काण्ट के मत को प्रस्तुत किया गया है। देश–काल की इन्द्रियानुभविक वास्तविकता एवं पारमार्थिक प्रत्ययात्मकता के संबंध में काण्ट के विचार का सविस्तार उल्लेख किया गया है।

8.1 प्रस्तावना –

देश–काल के संबंध में काण्ट के मत की सम्यक् समझ हेतु काण्ट के पूर्व प्रतिपादित न्यूटन एवं लाइबनीज के देश–काल मतों की समीक्षा करना अनिवार्य है क्योंकि इन दोनों मतों की पृष्ठभूमि में काण्ट अपने देश–काल सिद्धांत को प्रतिपादित करते हैं। काण्ट इन मतों की समीक्षा के उपरान्त इनकी कमियों को दूर एवं विशिष्टताओं का समावेश कर अपना नवीन विचार पेश करते हैं। काण्ट अपने देश–काल के सिद्धांत द्वारा यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि देश–काल व्यावहारिक दृष्टि से वास्तविक (यथार्थ तथा पारमार्थिक दृष्टि से काल्पनिक (अयथार्थ) होते हैं। मानवीय अनुभव का विषय बनने वाली सभी वस्तुएँ एवं घटनाएँ देश–काल में स्थित है इसलिए प्रत्येक विषय का ज्ञान देश–काल से युक्त होता है।

8.2 न्यूटन के देश–काल मत की समीक्षा –

न्यूटन देश–काल को निरपेक्ष, स्वतंत्र वास्तविक सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। इसके ज्ञान के लिए इनिद्रयानुभव की आवश्यकता नही होती है। देश–काल समस्त वस्तुओं और घटनाओं को धारण करते हैं। देश–काल के अभाव में किसी वस्तु या घटना का अस्तित्त्व संभव नही है किन्तु वस्तुओं एवं घटनाओं के अभाव में देश देश–काल का अस्तित्त्व संभव है। यहाँ वस्तओं और घटनाओं का अस्तित्त्व देश–काल के सापेक्ष है जबकि देश–काल का अस्तित्त्व वस्तुओं एवं घटनाओं से निरपेक्ष है। इस प्रकार न्यूटन 'रिक्त देश

एवं रिक्त काल' को संभव मानते हैं। न्यूटन देश–काल को नित्य, विभु, अनन्त एवं निरपेक्ष द्रव्य के रूप में स्वीकार करते हैं, जिसमें सभी वस्तुएँ एवं घटनाएँ समाहित हैं।

न्यूटन के देश–काल मत की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके माध्यम से गणितीय सत्यों की प्रामाणिकता को निर्धारित किया जा सकता है। न्यूटन के सिद्धांत के विरुद्ध कुछ आपत्तियाँ भी है जो निम्नलिखित हैं–

1. न्यूटन देश–काल के रूप में दो नित्य, अनन्त एवं निरपेक्ष द्रव्यों की सत्ता को स्वीकार करते हैं जो समस्त वास्तविक सत्ताओं के अभाव में भी केवल इसलिए विद्यमान रहती है ताकि समस्त वस्तुओं और घटनाओं को अपने भीतर धारण कर सकें। यहाँ न्यूटन रिक्त देश एवं रिक्त काल की सत्ता को स्वीकार कर लेते हैं।
2. न्यूटन प्रथमतः ज्ञान को देश–काल से सीमित मानने के बावजूद देश–काल के परेह जाकर अनुभवातीत ज्ञान की प्राप्ति करना चाहते हैं।

3.3 लाइबनीज के देश–काल मत की समीक्षा –

लाइबनीज देश–काल को प्रपंचों (Phenomena) आभासों (Appearances) या प्रतिबिम्बों (Reprexntation) के संबंध है। ये वस्तुओं को व्यवस्थित करने वाले साधन मात्र हैं जो वास्तविक वस्तुओं के शुद्ध प्रत्यय न होकर अस्पष्ट या भ्रांत प्रत्यय है। देश–काल व्यवहारिक दृष्टि से अयथार्थ (Empirically Unreal) है।

लाइनीज के मत की विशेषता यह है कि वे देश–काल की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं जिससे वे ज्ञान की सीमा को अनुभव की सीमा तक सीमित रखते हैं जबकि न्यूटन देश–काल की स्वतंत्र, निरपेक्ष एवं वास्तविक सत्ता को स्वीकार कर अनुभवातीत क्षेत्र में ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करते हैं। लाइबनीज के मत की प्रमुख कमी यह है कि वे देश–काल को इन्द्रियानुभविक मानते हैं, जिससे गणितीय ज्ञान की अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता भी संरक्षित रहती है।

8.4 काण्ट का देश–काल संबंधी मत –

काण्ट अपने देश–काल सिद्धांत में न्यूटन एवं लाइबनीज के मतों की समीक्षा कर समन्वय करने का प्रयास करते हैं। काण्ट कहते हैं कि देश–काल न तो स्वतंत्र सत्ताएँ हैं और ना ही इन्द्रियानुभव से अपकर्षित प्रत्यय हैं। न्यूटन के मत के विपरीत काण्ट का मत है कि देश–काल स्वतंत्र सत्ताएँ न होकर मानवीय विषयिता के दो प्रकार हैं जो आनुभविक प्रत्यय न होकर प्रागनुभविक हैं।

सारतः काण्ट देश–काल को मानसिक धर्म या प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वार के रूप में स्वीकार करते हैं, जिनसे होकर संवेदन बुद्धि विकारों तक पहुँचकर ज्ञान का स्वरूप प्राप्त करते हैं। देश–काल स्वतंत्र एवं निरपेक्ष सत्ता और वस्तुओं के वास्तविक गुणों से भिन्न बाह्य एवं आंतरिक संवेदनों के आकार हैं। ये मानवीय संवेदनों के गुण हैं। ये प्रागनुभविक होने के कारण इन्द्रिय संवेदनों के पूर्ववर्ती हैं अर्थात् इन्द्रिय संवेदनों की प्राप्ति के लिए देश–काल रूपी प्रागनुभविक संवेदनों का होना अनिवार्य हैं अनुभव के आधार पर देश–काल की कल्पना नहीं की जा सकती हैं समस्त मानवीय ज्ञान देश–काल के गुणों से युक्त होता हैं यदि मानवीय ज्ञान में से इन्द्रिय संवेदन का अंश एवं बुद्धि विकल्प के अंश को निकाल दिया जाये तो केवल देश–काल शेष रह जाते हैं।

8.5 देश–काल इन्द्रियानुभविक वास्तविक एवं पारमार्थिक प्रत्ययात्मक –

काण्ट अपनी कृति 'शुद्ध बुद्धि की समीक्षा' (Critique of Pure Reason) में देश–काल को इन्द्रियानुभविक वास्तविक (Empirically Real) एवं पारमार्थिक प्रत्ययात्मक (Transcendentally Idcal) कहते हैं। देश के विषय में काण्ट का मत है कि – हमारी व्याख्या स्थापित करती है कि हमें विषय से बाहर से जिस देश में सब कुछ उपलब्ध होता है वह वास्तविक या विषयतः यथार्थ या प्रामाणिक है। वस्तुओं को बुद्धि में स्वतः स्थित अर्थात् अपनी संवेदना के गठन के बिना स्थित समझते हैं। इसलिए अर्थात् अपनी संवेदना के गठन के बिना स्थित समझते हैं। इसलिए जहाँ तक सभी संभव बाह्य प्रत्यक्ष है वहाँ तक हम

देश को संवृत्तितः या अनुभवतः वास्तविक कहते हैं और उसी समय उसे परमार्थतः काल्पनिक भी कहते हैं। दूसरे शब्दों में जब हम उसे समस्त संभव बाह्य प्रत्यक्ष की सीमा से हटा लेते हैं और समझते हैं कि वह श्वतः स्थित वस्तुओं में है तो तुरन्त विल्कुल असत् हो जाता है।

काल के विषय में काण्ट कहते हैं कि हम जानते हैं कि काल संवृत्तितः वास्तविक है अर्थात् हमारे सभी इन्द्रियगोचर विषयो का जहाँ तब संबंध है वहाँ तक काल विषयतः प्रामाणिक या यथार्थ है किन्तु हम काल को स्वतः सत् या परमार्थतः सत् नहीं मानते हैं। हम नहीं मानते हैं कि काल हमारी संवेद्य संवेदना के आधार के बिना या उससे स्वतः स्थित वस्तुओं के गुण या लक्षण है। स्वतः स्थित वस्तुओं के गुण या लक्षण हमें कभी इन्द्रियगोचर नहीं हो सकते हैं। यही काल की पारमार्थिक कल्पनिकता का अर्थ है।

8.6 देश–काल की इन्द्रियानुभविक वास्तविकता –

देश–काल की इन्द्रियानुभविक वास्तविकता से तात्पर्य है कि समस्त मानवीय इन्द्रियानुभव देश एवं काल की प्रागनुभविक शर्तों के अधीन रहते हैं अर्थात् संपूर्ण मानवीय अनुभव देश–काल में संभव है। ये देश–काल प्रागनुभविक हैं क्योंकि ये अनुभव निरपेक्ष या किसी भी अनुभव की पूर्ववर्ती शर्त है। देश–काल सभी मानवों के भीतर पाए जाने वाले मानसिक धर्म या मानसिक चश्मों के समान है जिससे होकर इन्द्रिय संवेदन बुद्धि तक पहुँचते हैं किन्तु ये मन में स्थिर होने के वावजूद भी आत्मनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ या वास्तविक हैं क्योंकि ये सभी में समान या निश्चित रीति से पाये जाते हैं। यही कारण है कि देश–काल को इन्द्रियानुभविक वास्तविकता कहा जाता है।

देश–काल व्यावहारिक या इन्द्रियानुभविक रूप से वास्तविक या यथार्थ है। सभी वस्तुएँ एवं घटनाएँ देशगत एवं कालगत हैं। हमारे समस्त अनुभव देशगत–कालगत हैं। देश–काल की वास्तविकता आत्मनिष्ठ न होकर विषयनिष्ठ हैं। वस्तुओं के देशगत होने का अनुभव उनके आगे–पीछे, दायें–बायें, पास–दूर इत्यादि के रूप में होता है। यह अनुभव देश के अभाव में नहीं हो सकता है। इसी प्रकार घटनाओं का अनुक्रम पहले–बाद में, प्रातःकाल–सायंकाल इत्यादि के रूप में होता है। यह अनुभव काल के अभाव में नहीं हो सकता है। इसके अंतर्गत बाह्य एवं मानसिक दोनों प्रकार की वस्तुओं एवं घटनाओं के अनुभव शामिल किए जाते हैं। मनुष्य किसी विशेष देश या विशेष काल को अपनी कल्पना से पृथक कर सकता है किन्तु देश या काल की भावना को अपने अनुभव से स्वतंत्र नहीं कर सकता है। काण्ट इस विन्दु पर न्यूटन के विचार 'रिक्त देश एवं रिक्त काल की संभावना' को वास्तविक स्तर पर नकार देते हैं।

8.7 देश–काल की पारमार्थिक प्रत्ययात्मकता –

देश–काल की पारमार्थिक प्रत्ययात्मकता या पारमार्थिक अवास्तविकता से तात्पर्य पारमार्थिक विषयों जैसे– ईश्वर, आत्मा, जगत इत्यादि के संबंध में देश–काल का अवास्तविक या काल्पनिक होना है। काण्ट कहते हैं कि देश–काल तभी सत् या यथार्थ हो सकते हैं जब वे परमार्थतः असत् एवं अयथार्थ हों। यदि देश–काल परमार्थतः यथार्थ या वास्तविक होते हैं और वे उन स्वतः स्थित वस्तुओं में निहित होते हैं जो हमारे संवेद्य संस्कारों को उत्पन्न करती है तब देश–काल संवेदना के संस्कारों के माध्यम से ही जाने जाते हैं और इस कारण वे आत्मनिष्ठ या व्यक्तिनिष्ठ होते हैं। ऐसी स्थिति में ज्ञान सार्वभौम एवं अनिवार्य न रहकर केवल उन्हीं विषयों से संबंधित होता है जो यथार्थतः प्रत्यक्ष होते हैं। इस रूप में गणित के क्षेत्र में भी संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय भी संभव न होते। केयर्ड भी काण्ट के विचार के समर्थन में कहते हैं कि देश और काल तभी व्यवहारतः सत् या यथार्थ हो सकते हैं जबकि वे परमार्थतः असत् या अयथार्थ हों।

काण्ट कहते हैं कि देश–काल व्यावहारिक रूप से सत् हैं क्योंकि ये समस्त आनुभविक विषयों में विद्यमान रहते हैं। देश–काल परमार्थतः असत् हैं क्योंकि आनुभविक विषयों से पूर्णतः स्वतंत्र होते हैं।

8.8 क्या वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जाना जा सकता है?

काण्ट कहते हैं कि मनुष्य केवल उन्हीं विषयों को जान सकता है जो देश–काल में विद्यमान है और इन्द्रिय संवेदनों के रूप में बुद्धि तक पहुँचकर बुद्धि–विकल्पों के द्वारा ज्ञान का स्वरूप ग्रहण करते हैं। काण्ट कहते हैं कि यह संभव है कि वस्तुएँ भी देशगत–कालगत हों किन्तु इस प्रकार की कल्पना की कोई

आधार नहीं है क्योंकि देश एवं काल की विषयीगत शर्तों से स्वतंत्र होकर वस्तुओं के स्वरूप को जानने का हमारे पास कोई साधन नही है।

काण्ट कहते हैं कि इन्द्रियानुभव से प्राप्त संवेदना केवल आभास होती है। संवेद्य वस्तु अपने आप में वस्तु नहीं होती है और ना ही संवेद्य ज्ञान वस्तुओं के निजी गुणों या संबंधों का ज्ञान होता है। काण्ट का मानना है कि विषयी (ज्ञाता) की संवेदन शक्ति को ज्ञाता से पृथक कर दिया जाये तो देश–काल एवं देश–काल के अंतर्गत संवेदन के रूप में प्राप्त वस्तुएँ एवं घटनाएँ एक साथ लुप्त हो जायेंगी। मनुष्य इन्द्रियानुभव के रूप में प्राप्त संवेदनों को ही जानता है। इन इन्द्रिय संवेदनों से भिन्न वस्तुओं को वह नहीं जानता है। इन इन्द्रिय संवेदनों से भिन्न वस्तुओं का स्वयं में क्या स्वरूप है, यह मानवीय ज्ञान का विषय नहीं हो सकता है। मानवीय संवेदना-विधि मानवीय मानसिक संरचना की विशेषता है जो देश–काल की प्रागनुभविक शर्तों के अधीन है। यह संभव है कि कोई मानवेत्तर सत्ता की संवेदन विधि मानव से भिन्न हो तो उसका ज्ञान भी भिन्न होगा।

मानवीय ज्ञान इन्द्रियानुभव से प्राप्त आभासों या प्रतीतियों का ज्ञान है। आभासों की रूष्ठतम् अवस्था में भी मानवीय ज्ञान वस्तु के निजी स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता है।

8.9 क्या देशगत–कालगत जगत आभास है? –

काण्ट कहते हैं कि देशगत–कालगत जगत आभास है किन्तु यह भ्रम नहीं है क्योकि आभासित पदार्थ प्रदत्त होते हैं अर्थात् उनकी सत्ता का वस्तुगत आधार होता है। उन्हे आभास कहने का तात्पर्य यह है कि वे अनुभव के विषय के रूप में हमारी संवेदना शक्ति पर निर्भर होते हैं और संवेदना शक्ति के आकारों से युक्त होते हैं। वे आभास होते हुए भी सार्वभौम होते हैं क्योंकि उन्हें निर्धारित करने वाली संवेदन शक्ति व्यक्ति विशेष की आत्मनिष्ठ संवेदना नहीं है अपितु मनुष्य मात्र की वस्तुनिष्ठ संवेदना है जबकि भ्रम व्यक्ति विशेष का होता है, जो उस भ्रम का शिकार होता है। भ्रम प्रदत्त न होकर काल्पनिक होता है या प्रदत्त वास्तविकता के प्रति व्यक्ति विशेष की दोषपूर्ण आंगिक प्रतिक्रिया होती है जबकि आभास सार्वजनिक इन्द्रियानुभविक सत्य है।

8.10 देश–काल के संबंध में सत् एवं आभास का भेद –

लाइबनीज के अनुसार आभास अस्पष्ट ज्ञान है जबकि सत् (वास्तविकता) स्पष्ट ज्ञान है। काण्ट के अनुसार लाइबनीज का मत युक्तियुक्त नहीं है। इसे नैतिक ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में देखने पर स्पष्ट हो जाता है। अशिक्षित व्यक्ति को उचित–अनुचित का ज्ञान तर्क से न होकर अनुभव से होता है। लाइबनीज ऐसे व्यक्ति के ज्ञान की अपेक्षा नीतिशास्त्र के प्रोफेसर के ज्ञान को अधिक स्पष्ट मानते हैं। काण्ट के अनुसार यह असंगति है जो नैतिकता ज्ञान को इन्द्रियानुभविक मानती है और नैतिकता में इन्द्रियानुभविक ज्ञान एवं बौद्धिक ज्ञान में केवल मात्रा का भेद मानती है।

काण्ट के अनुसार आभास एवं प्रागनुभविक ज्ञान है क्योंकि आभास का स्रोत ज्ञान की प्रागनुभविक संरचना है किन्तु ज्ञान की प्रागनुभविक संरचना होने के कारण ही हमें सत् (वास्तविकता) का ज्ञान नहीं हो सकता है।

इस प्रकार काण्ट का देश–काल सिद्धांत सिर्फ इन्द्रियानुभव की व्याख्या करता है, वह परमार्थ की व्याख्या नहीं करता है। किन्तु काण्ट का देश–काल सिद्धांत आनुभविक जगत भी पूर्णरूपेण व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर पाता है। यही कारण है कि काण्ट पदार्थों के सिद्धांत (Theary of Categaries) की बात करते हैं। पुनः काण्ट ने देश–काल को प्रागनुभविक संवेदन सिद्ध करके 'संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना' के विषय में आपेक्षित आधार की खोज कर ली जो इन्द्रियानुभविक वस्तुओं के संबंध में अनिवार्यतः प्रमाणिक होते है।

8.11 शब्दावली

(1) पारमार्थिक (Transcendental) - परमार्थ या परलोक से संबंधित।

(2) संवृत्ति (Phenomena) - बाह्य जगत से प्राप्त आनुभविक संवेदना।

8.12 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न –

(1) क्या काण्ट का देश–काल सिद्धांत न्यूटन एवं लाइबनीज के देश–काल विचार का समन्वय है। सिद्ध करें?

(2) क्या हम वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जान सकते हैं?

(3) क्या देशगत–कालगत जगत आभास है?

दीर्घ उत्तरी प्रश्न

(1) देश–काल की इन्द्रियानुभविक वास्तविकता एवं पारमार्थिक प्रत्ययात्मकता पर निबंध लिखें?

(2) 'देश एवं – काल तभी व्यवहारतः सत् या यथार्थ है जब वे परमार्थतः असत् या अयथार्थ है' कथन की पुष्टि करें?

8.13 उपयोगी पुस्तकें

(1) काण्ट का दर्शन – संगम लाल पाण्डेय

(2) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

(3) पाश्चात्य दर्शन – चक्रधर शर्मा

खण्ड 3– अनुभवातीत तर्कशास्त्र

इकाई – 9
अनुभवातीत तर्कशास्त्र का स्वरूप

संरचना :–

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 तर्कशास्त्र का अर्थ एवं प्रकार
9.3 सामान्य तर्कशास्त्र
9.4 अनुभवातीत तर्कशास्त्र
9.5 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का स्वरूप
9.6 शुद्ध सम्प्रत्यय विचार के सम्प्रत्यय है संवेदना के नहीं।
9.7 शुद्ध सम्प्रत्यय केवल इन्द्रियानुभव पर प्रयुक्त हो सकते हैं
9.8 शुद्ध सम्प्रत्यय का प्रयोग अनिवार्यतः यथार्थ होता है
9.9 अनुभवातीत तर्कषास्त्र के प्रकार
9.10 क्या समस्त प्रागनुभविक ज्ञान अनुभवातीत होता है?
9.11 शब्दावली
9.12 प्रश्नावली
9.13 उपयोगी पुस्तकें

****

9.0 उद्देश्य -

अनुभवातीत तर्कशास्त्र का स्वरूप व इकाई के अन्तर्गत तर्कशास्त्र को परिभाषित करते हुए इसकी प्रमुख तार्किक पद्धतियों–निगमन (Deduction) एवं आगमन (Induction) का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। काण्ट द्वारा किए गए तर्कशास्त्र के दो भेद सामान्य तर्कशास्त्र एवं अनुभवातीत तर्कशास्त्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए अनुभवातीत तर्कशास्त्र के रूवरूप की सविस्तार चर्चा की गयी है।

9.1 प्रस्तावना –

ज्ञान की उत्पत्ति में मानवीय मस्तिष्क (Mind) के दो स्रोतों – संवेदन (Sensation) एवं सम्प्रत्यय (Conception) की अहं भूमिका है। प्रथम स्रोत में इन्द्रिय संवेदनों को ग्रहण करने की क्षमता है। जिसे संवेद्यता (Sensibility) कहते हैं तथा द्वितीय स्रोत इन संवेदनों की व्याख्या करके वस्तुओं को जानने की क्षमता से युक्त है, जिसे बुद्धि (Understanding) कहते हैं। प्रथम स्रोत के द्वारा वस्तुएँ हमें प्रदत्त होती है तथा द्वितीय स्रोत के द्वारा वस्तुओं के विषय में चिंतन किया जाता है। इन दोनों स्रोतों के आलोक में यही कहा जा सकता है कि संवेदन एवं सम्प्रत्यय मानवीय ज्ञान के मूलभूत तत्त्व है। इन दोनों में से एक के भी अभाव में ज्ञान का निर्माण नहीं हो सकता है। दोनों ही प्रागनुभविक एवं इन्द्रियानुभविक हो सकते हैं। संवेदनों के शुद्ध रूप बुद्धि विकल्प या सम्प्रत्यय प्रागनुभविक है क्योंकि ये अनिवार्य एवं सार्वभौम होते हैं तथा सभी प्रकार के अनुभव की प्रागपेक्षा हैं जबकि संवेदनों का स्वरूप आनुभविक होता है क्योंकि संवेदन बाह्य जगत से इन्द्रियानुभव के रूप में प्राप्त होते हैं। ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया में संवेदन तथा सम्प्रत्यय दोनों की भूमिका भिन्न–भिन्न किन्तु समान महत्त्व की है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में दोनों व्यक्तियों के योगदान के मध्य स्पष्ट सीमांकन नहीं किया जा सकता है।

संवदेन एवं बुद्धि के स्वरूप एवं योगदान को सम्यक् निरूपित करने के लिए दोनों का पृथक–पृथक अध्ययन किया जाता है। संवेदनों के शुद्ध आकारों (देश–काल) की व्याख्या अनुभवतीत संवदेनशास्त्र (Transcendental Aesthetic) में की गयी है तथा बुद्धि के प्रागनुभविक स्वरूप एवं ज्ञान की प्रक्रिया का अध्ययन अनुभवातीत तर्कशास्त्र (Transcendental Logic) में की जाती है। यह सामान्य तर्कशास्त्र (Formal Logic) से भिन्न है।

9.2 तर्कशास्त्र का अर्थ एवं प्रकार -

तर्कशास्त्र सत्य तर्क को असत्य तर्क से पृथक करने में प्रयुक्त होने वाले सिद्धांतों एवं विधियों का अध्ययन है। इसमें अनुमान के वैध नियमों का प्रयोग किया जाता है। यह तर्कवाक्यों के एक समुच्चय के आधार पर अन्य तर्क या निष्कर्ष की प्राप्ति करता है। आगमन एवं निगमन तर्कशास्त्र की प्रमुख विधियाँ है–

- आगमन में विशेष उदाहरणों के आधार पर सामान्य नियम या निष्कर्ष की प्राप्ति की जाती है। आगमनात्मक युक्ति के आधारवाक्य निष्कर्ष की सत्यता के लिए निश्चयात्मक साक्ष्य प्रदान नहीं करते हैं अपितु यह संभाव्य होते हैं। संभाव्यता की मात्रा के आधार पर तर्क को उचित या अनुचित (अच्छा या खराब) कहा जा सकता है।
- निगमन में सामान्य नियम के आधार पर विशेष निष्कर्ष की प्राप्ति की जाती है। निगमनात्मक युक्ति के आधार वाक्य निष्कर्ष की सत्यता के लिए निश्चयात्मक साक्ष्य प्रदान करते हैं। यह युक्ति के आधर पर वाक्य के सत्य होने पर वैध तथा असत्य होने पर अवैध होती है।

काण्ट तर्कशास्त्र को दो प्रकारों– सामान्य या आकारपरक तर्कशास्त्र तथा अनुभवातीत तर्कशास्त्र में विभाजित करते हैं।

9.3 सामान्य तर्कशास्त्र –

सामान्य या आकारपरक तर्कशास्त्र का संबंध बुद्धि या चिंतन के अनिवार्य नियमों से है। यह चिंतन प्रागनुभविक, आनुभविक, विश्लेषणात्मक या संश्लेषणात्मक किसी से भी संबंधित हो सकता है। यह ज्ञान के उद्गम स्रोत का अध्ययन नही करता है अपितु ज्ञान को प्रदत्त रूप में स्वीकार कर लेता है। यह ज्ञान के सभी प्रकार के प्रश्नों से स्वयं को पृथक करके ज्ञान के आकस्मिक नियमों का अध्ययन करता है।

आकारपरक तर्कशास्त्र चिंतन के क्रम में विचार, विषय या सामग्री से पूर्णतः स्वतंत्र हो जाता है क्योंकि यह विचार के शुद्ध आकारों एवं नियमों का अध्ययन करता है। यह विचारों का अध्ययन कर नियमों एवं तर्को में यह खोजने का प्रयास करता है कि उनके मध्य पारस्परिक सुसंगति है या नहीं। विचार सामग्री से नियमों का क्या संबंध है? यह सामान्य तर्कशास्त्र की रुचि का क्षेत्र नहीं है अपितु यह अनुभवातीत तर्कशास्त्र की रूचि का विषय है।

9.4 अनुभवातीत तर्कशास्त्र –

काण्ट के अनुसार अनुभवातीत तर्कशास्त्र के अंतर्गत अनिवार्य एवं सार्वभौम सत्य की संभावना का अध्ययन किया जाता है। अनुभवातीत तर्कशास्त्र के तर्कों का संबंध प्रागनुभविक कथनों की उत्पत्ति, सीमा एवं वस्तुनिष्ठ प्रामाणिकता से होता है। यह प्रागनुभविक के उद्गम स्रोतों की खोज करता है क्योंकि प्रागनुभविक ज्ञान बुद्धि पर आधारित होता है और बुद्धि आधारित ज्ञान ही अनिवार्य एवं सार्वभौम होता है। अतएव अनुभवातीत तर्कशास्त्र अनिवार्य ज्ञान की संभावना का तार्किक अध्ययन एवं उनके मूलभूत आधारों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करता है। यह चिंतन के केवल संश्लेषणात्मक नियमों का अध्ययन करता है, जिसमें अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता पायी जाती है।

अनुभवातीत तर्कशास्त्र विचार–विषय या सामग्री से पूर्ण अलगाव नहीं करता है क्योंकि ऐसा करने पर प्रागनुभविक ज्ञान के स्रोत का सम्यक् अध्ययन संभव नही नहीं हो सकता है। संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक चिंतन के लिए शुद्ध संवेदनों का होना अनिवार्य है। शुद्ध संवेदनों के अभाव में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक

चिंतन संभव नहीं है। इसलिए अनुभवातीत तर्कशास्त्र अपने अध्ययन में उन्हीं विषयों का निराकरण करता है जो आनुभविक होते हैं। इसके लिए देश–काल का निराकरण संभव नही है क्योंकि देश–काल आनुभविक न होकर प्रागनुभविक होते हैं। ये अनुभव का विषय न होकर अनुभव की प्रागपेक्षा या पूर्व शर्त है। साथ ही देश–काल के अभाव में शुद्ध प्रत्यय सदैव रिक्त एवं विषय विहीन होते हैं।

9.5 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का स्वरूप –

काण्ट कहते हैं कि ज्ञान संवेदना (Sensation) एवं तर्क बुद्धि के समन्वय से निर्मित होता है। खणड 2 में अनुभवातीत संवेदनशास्त्र (Transcendental Aesthetic) के अंतर्गत संवेदन शक्ति द्वारा प्रदत्त तत्त्वों (देश–काल) का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत खण्ड में तर्कबुद्धि द्वारा प्रदत्त तत्त्वों एवं सिद्धांतों का अध्ययन अनुभवातीत तर्कशास्त्र के अंतर्गत किया गया है। तर्कबुद्धि द्वारा प्रदत्त ये तत्त्व शुद्ध सम्प्रत्यय (Pure Concepts) हैं जिसे काण्ट कैटेगरी (Categery–पदार्थ) भी कहते हैं। ये शुद्ध सम्प्रत्यय विचार की शुद्ध क्रियाएँ है जो पदार्थ निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अनुभवातीत तर्कशास्त्र में इन सम्प्रत्ययों के ज्ञान के उद्‌गम, विस्तार एवं वस्तुगत यथार्थता का अध्ययन किया जाता है। काण्ट इन सम्प्रत्ययों के निम्नलिखित तीन लक्षण बताते हैं–

(1) शुद्ध सम्प्रत्यय विचार के सम्प्रत्यय हैं, संवेदना के नहीं।

(2) शुद्ध सम्प्रत्यय केवल इन्द्रियानुभव पर प्रस्तुत हो सकते हैं।

(3) शुद्ध सम्प्रत्यय का प्रयोग अनिवार्यतः यथार्थ होता है।

9.6 शुद्ध सम्प्रत्यय विचार के सम्प्रत्यय हैं संवेदना के नहीं –

काण्ट कहते हैं कि जिस प्रकार देश–काल शुद्ध संवेदना के आकार हैं उसी प्रकार शुद्ध सम्प्रत्यय बुद्धि के आकार हैं। शुद्ध सम्प्रत्यय की आकारता का तात्पर्य यह है कि वे बुद्धिगोचर सभी विषयों के व्यापक लक्षण हैं। यदि बुद्धिगोचर विषय न हों तो बुद्धि भी न हो और ऐसी स्थिति में बुद्धि के आकार भी नहीं हो सकते। इसलिए बुद्धि के आकार विषयों में होने पर ही बुद्धि के सामान्य लक्षण हैं।

9.7 शुद्ध सम्प्रत्यय केवल इन्द्रियानुभव पर प्रयुक्त हो सकते हैं –

शुद्ध सम्प्रत्यय का अर्थ सामान्य एवं अनिवार्य सम्प्रत्यय है। काण्ट इसे कैटेगरी भी कहते हैं। शुद्ध सम्प्रत्यय होने के कारण कैटेगरी आनुभविक सम्प्रत्यय से अलग हैं। आनुभविक सम्प्रत्यय विशेष व्यक्ति से संबंधित होते हैं जबकि शुद्ध सम्प्रत्यय सामान्य मनुष्य से संबंधित होते हैं, जिस कारण ये प्रागनुभाविक होते हैं। शुद्ध सम्प्रत्यय न तो अनुभवजन्य होते हैं और न अनुभव से परे होते हैं अपितु अनुभव में व्याप्त होते हैं। शुद्ध सम्प्रत्ययों के कारण ही अनुभव होता है अर्थात् शुद्ध सम्प्रत्यय अनुभव की पूर्व शर्त या अनिवार्य शर्त है। उदाहरण स्वरूप जिस प्रकार पुत्र के होने की पूर्व शर्त पिता, पिता के पितामह तथा पूर्वज क्रमिक रूप से होते हैं उसी प्रकार प्रत्येक आनुभविक विषय की किसी विषय के विषय के रूप में ज्ञात होने में केवल इन्द्रिय प्रदत्त एवं देश–काल की भूमिका नहीं होती है अपित उस इन्द्रिय प्रदत्त की मात्रा, गुण, संबंध एवं प्रकारता की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

शुद्ध सम्प्रत्यय (कैटेगरी) प्रागनुभविक हैं और प्रागनुभविक के निम्नलिखित अर्थ हैं –

- शुद्ध सम्प्रत्यय तर्कतः अनिवार्य होते हैं।
- शुद्ध सम्प्रत्यय संवेदनों से उत्पन्न होते हैं।
- शुद्ध सम्प्रत्यय मानवीय अनुभवों के मूल आधार होते हैं क्योंकि ये अनुभव की पूर्वशर्त हैं।
- शुद्ध सम्प्रत्यय बुद्धिजन्य नहीं हैं न अनुभवजन्य हैं बल्कि अनुभव में व्याप्त हैं अर्थात् अनुभव की पूर्वशर्त हैं।
- शुद्ध सम्प्रत्यय कालक्रम के अन्य विषयों से पहले आते हैं क्योंकि ये सभी अनुभवों की प्रागपेक्षा हैं।

9.8 शुद्ध सम्प्रत्यय विचार के सम्प्रत्यय हैं संवेदना के नहीं –

काण्ट कहते हैं कि शुद्ध सम्प्रत्यय अनिवार्यतः संश्लेषणात्मक प्रत्यय हैं जो समस्त आनुभविक विषयों में अनिवार्य रूप से विद्यमान रहते हैं। वे कहते हैं कि जब तक किसी इन्द्रिय प्रदत्त को मात्रा, गुण संबंध तथा निश्चित मात्रा के अनुसार वर्गीकृत न किया जाये तब तक वह प्रदत्त विषय का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकता है। इन्द्रिय प्रदत्त का यह वर्गीकरण संश्लेषण कहलाता है तथा संश्लेषण के उपरान्त निर्धारित विषय की एकता संश्लेषणात्मक इकाई कहलाती है। जैसे – यदि हमें 'यह घट है' का अनुभव होता है, तो उसका रंग, आकार, आयतन इत्यादि इन्द्रिय प्रदत्तों का ज्ञान देश–काल में विद्यमान रहता है। पुनः 'घट एक है' यह इकाई का ज्ञान है, 'घट यथार्थ है' यह यथार्थ का ज्ञान है, 'घट मिट्टी का है, यह द्रव्य का ज्ञान है, 'घट का अस्तित्त्व है' यह भाव का ज्ञान है। यह सब मिलाकर 'यह घट है' का ज्ञान है। इस प्रकार कई इन्द्रिय प्रदत्त (रंग, द्रव्य, भाव इत्यादि) संगठित होकर घट के रूप में इकाई का बोध कराते हैं। इस संगठित इकाई के आधारभूत सम्प्रत्यय को शुद्ध सम्प्रत्यय कहते हैं। इसे शुद्ध सम्प्रत्यय का सम्प्रत्यय भी कहते हैं।

9.9 अनुभवातीत तर्कशास्त्र के प्रकार –

काण्ट अनुभवातीत तर्कशास्त्र का विभाजन दो भागों में करते हैं–

(1) अनुभवातीत विश्लेषकी या अतीन्द्रिय बोध सिद्धांत।

(2) अतीन्द्रिय द्वन्द्वमय या प्रज्ञा का विवेचन।

अनुभवातीत विश्लेषकी के अन्तर्गत काण्ट ने बुद्धि के स्वरूप का विवेचन एवं परीक्षण किया है। ज्ञान के उपादान (सामग्री) स्वरूप संवेदनों को व्यस्थित एवं नियमित करने का कार्य बुद्धि करती है।

अनुभवातीत द्वन्द्व न्याय के अंतर्गत काण्ट आस्था को प्रतिष्ठित करता है। वह कहते हैं कि जहाँ बुद्धि का अभियान असफल हो जाता है वहाँ से नैतिकता एवं धर्म की सीमा आरंभ होती है।

काण्ट अनुभवातीत विश्लेषकों के अन्तर्गत बुद्धि की प्रतिष्ठा करते हैं तथा अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय के अंतर्गत आस्था की प्रतिष्ठा करते हैं। इस प्रकार काण्ट बुद्धि एवं आस्था का सुन्दर समन्वय अनुभवातीत तर्कशास्त्र में करते हैं।

9.10 क्या समस्त प्रागनुभविक ज्ञान अनुभवातीत होता है?

समस्त अनुभवातीत ज्ञान प्रागनुभविक होता है क्योंकि समस्त अनुभवातीत ज्ञान बुद्धि आधरित है और बुद्धि आधारित ज्ञान प्रागनुभविक होता है और बुद्धि पर आधारित होने के कारण ही यह अनिवार्य एवं सार्वभौम होता है। काण्ट का मत है कि अनुभवातीत ज्ञान अनिवार्यतः प्रागनुभविक होता है किन्तु समस्त प्रागनुभविक ज्ञान अनुभवातीत नही होता है। दार्शनिक एवं आलोचनात्मक ज्ञान अनुभवातीत है। इसी प्रकार अनुभवातीत संवेदन शास्त्र भी अनुभवातीत ज्ञान है। इसी क्रम में अनुभवातीत तर्कशास्त्र का ज्ञान भी अनुभवातीत है क्योंकि यह सम्प्रत्ययों की प्रागनुभविकता का ज्ञान है। काण्ट कहते हैं कि इससे भिन्न गणितीय ज्ञान भी प्रागनुभविक तो होता है किन्तु यह अनुभवातीत ज्ञान नहीं है। अतैव अनुभवातीत ज्ञान से तात्पर्य है कि यह ज्ञान, प्रागनुभविक ज्ञान का दार्शनिक सिद्धांत है। काण्ट कहते हैं कि प्रागनुभविक ज्ञान तभी संभव है जब उसका स्रोत बुद्धि में ही हो जबकि अनुभवातीत ज्ञान यह स्थापित करता है कि प्रागनुभविक ज्ञान का स्रोत बुद्धि ही है।

अतैव काण्ट अनुभवातीत तर्कशास्त्र के माध्यम से शुद्ध सम्प्रत्यय के रूप में अनिवार्यतः ज्ञान के साथ अनुभवातीत द्वन्द्व न्याय के द्वारा नैतिकता एवं धर्म के रूप में आस्था की प्रतिष्ठा करते हैं। शुद्ध सम्प्रत्यय केवल इन्द्रियानुभव पर प्रयुक्त किए जा सकते हैं। जिससे इसमें अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता के साथ यथार्थता का लक्षण भी पाया जाता है। ये बुद्धि आधारित होने से प्रागनुभविक तथा इन्द्रियानुभवों में प्रयुक्त होने के कारण संश्लेषणात्मक होते हैं। इन गुणों के मेल से शुद्ध सम्प्रत्ययों में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना पायी जाती है।

9.11 शब्दावली

(1) संवेदन (Sensation) बाह्य वस्तुओं एवं इन्द्रियों के संपर्क से इन्द्रियों द्वारा आत्मा को प्रेषित प्रत्यय

(2) संवेद्यता (Sensibility) – आत्मा द्वारा संवेदनों को ग्रहण करने की क्षमता।

(3) तर्कबुद्धि (Understanding) – आत्मा की नैसर्गिक शक्ति जो बाह्य तथ्यों की सहायता के बिना ही प्रत्ययों को उत्पन्न करती है।

(4) इन्द्रिय प्रदत्त (Sense data) जो इन्द्रियों के साक्षात् अनुभव का विषय हो।

9.12 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न –

(1) अनुभवातीत तर्कशास्त्र क्या है। इसके प्रमुख लक्षण बतायें?

(2) अनुभवातीत तर्कशास्त्र एवं सामान्य तर्कशास्त्र में अन्तर स्पष्ट करें।

(3) क्या समस्त प्रागनुभविक ज्ञान अनुभवातीत होता है?

दीर्घ उत्तरी प्रश्न –

(1) अनुवातीत तर्कशास्त्र के स्वरूप पर निबंध लिखे।

(2) अनुभवातीत तर्कशास्त्र को परिभाषित करते हुए इसके प्रमुख लक्षणों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

9.13 उपयोगी पुस्तकें

(1) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

(2) काण्ट का दर्शन – संगम लाल पाण्डेय

****

MAPH 113

खण्ड 3

इकाई – 10

अनुभवातीत ज्ञान तथा उसका अनुभवातीत प्रयोग

संरचना :–

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 अनुभवातीत ज्ञान का अर्थ
10.3 अनुभवातीत ज्ञान के प्रमुख लक्षण
10.4 अनुभवातीत ज्ञान अनिवार्य एवं सार्वभौम होता है
10.5 अनुभवातीत ज्ञान प्रागनुभविक होता है
10.6 अनुभवातीत संवेदनशास्त्र का ज्ञान, अनुभवातीत ज्ञान है
10.7 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का ज्ञान, अनुभवातीत ज्ञान है
10.8 क्या गणित का ज्ञान अनुभवातीत ज्ञान है?
10.9 अनुभवातीत ज्ञान का वैध प्रयोग
10.10 अनुभवातीत संवेदनशास्त्र का ज्ञान
10.11 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का ज्ञान
10.12 अनुभवातीत ज्ञान का वैध प्रयोग
10.13 शब्दावली
10.14 प्रश्नावली
10.15 उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य –

'अनुभवातीत ज्ञान एवं उसका अनुभवातीत प्रयोग' इकाई के अन्तर्गत अनुभवातीत ज्ञान को परिभाषित करते हुए उसके प्रमुख लक्षणों का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है। अनुभवातीत ज्ञान के प्रयोग के क्षेत्रों के रूप में काण्ट द्वारा स्वीकृति अनुभवातीत संवेदनशास्त्र (Transscendental Aesthetic) एवं अनुभवातीत तर्कशास्स्त्र (Transcendental Logic) का वर्णन करते हुए अनुभवातीत सत्ताओं या परामर्श हेतु अनुभवातीत ज्ञान के अवैध ज्ञान के अवैध प्रयोग की भी चर्चा की गयी है।

10.1 प्रस्तावना –

काण्ट ज्ञान को इन्द्रिय संवेदनों एवं बुद्धि का समन्वय मानते हैं, जिसमें इन्द्रिय संवेदन ज्ञान की सामग्री है तथा बुद्धि अपने विकल्पों के माध्यम से इन्हें नियमित करने का कार्य करती है। काण्ट बुद्धि को अनुभव निरपेक्ष होने कारण अतीन्द्रिय या अनुभवातीत कहते हैं और ज्ञान के इस स्वरूप को अनुभवातीत ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान अनुभवातीत होते हुए भी अपनी सामग्री के लिए इन्द्रियानुभव पर निर्भर है किन्तु अनुभवातीत ज्ञान की गति इन्द्रियानुभव या व्यवहार तक ही सीमित है, परमार्थ या अनुभवातीत जगत तक इसकी गति नही है। अनुभवातीत संवेदनशास्त्र का संबंध ज्ञान के एक स्रोत संवेदन शक्ति से है, जिसके अतीन्द्रिय तत्त्व देश–काल है जबकि अनुभवातीत तर्कशास्त्र का संबंध बुद्धि के शुद्ध आकारों या शुद्ध संप्रत्ययों से है। काण्ट अपनी कृति 'शुद्ध बुद्धि की समीक्षा' (Critique of Pure Reason) में बुद्धि-विकल्पों के स्वरूप का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हैं।

10.2 अनुभवातीत ज्ञान का अर्थ –

काण्ट के अनुसार ज्ञान इन्द्रिय संवेदन (Sensation) एवं तर्कबुद्धि का समन्वय है। अनुभवातीत से तात्पर्य अनुभव की सीमा से परे होने या ऐसे तत्त्व से है जो अनुभव के विषय का न हो। ये तत्त्व संवेदन शक्ति द्वारा प्रदत्त एवं बुद्धि के शुद्ध आकार होते हैं। इस प्रकार अनुभवातीत ज्ञान से तात्पर्य संवेदन शक्ति द्वारा प्राप्त प्रदत्त तत्त्वों की तर्कबुद्धि द्वारा व्याख्या कर ज्ञान की प्राप्ति करने से है।

10.3 अनुभवातीत ज्ञान के प्रमुख लक्षण –

अनुभवातीत ज्ञान के स्रोत, सामग्री इत्यादि के आधार पर इसके निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं–

- अनुभवातीत ज्ञान अनिवार्य एवं सार्वभौम होता है।
- अनुभवातीत ज्ञान प्रागनुभविक होता है।
- अनुभवातीत संवेदनशास्त्र का ज्ञान, अनुभवातीत ज्ञान है।
- अनुभवातीत तर्कशास्त्र का ज्ञान अनुभवातीत ज्ञान है।

10.4 अनुभवातीत ज्ञान अनिवार्य एवं सार्वभौम होता है –

काण्ट के मतानुसार अनुभवातीत ज्ञान अनिवार्य एवं सार्वभौम होता है। अनुभवातीत ज्ञान में यह अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता बुद्धि विकल्पों से आती है। ज्ञान का प्रारंभ इन्द्रिय संवेदनों से होता है क्योंकि ज्ञान की सामग्री इन्द्रिय संवेदनों से प्राप्त होती है तथा बुद्धि विकल्पों द्वारा इसे ज्ञान का स्वरूप दिया जाता है। इन्द्रिय संवेदनों से ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता का समावेश नहीं हो सकता है क्योंकि ये प्रकृति के होते हैं किंतु इनके ज्ञान में यथार्थता का समावेश होता है। अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता के लिए ज्ञान को अतीन्द्रिय या अनुभवातीत होना होता है, जो बुद्धि विकल्पों से ही संभव है क्योंकि बुद्धि विकल्प श्वतः सिद्ध, सहज, एवं सार्वभौम होते हैं जबकि इन्द्रिय संवेदनों में कोई अनिवार्य एवं सार्वभौम नियम नही होता है।

10.5 अनुभवातीत ज्ञान प्रागनुभविक होता है?

अनुभवातीत ज्ञान प्रागनुभविक (Apriori) होता है। प्रागनुभविक ज्ञान से तात्पर्य ऐसे ज्ञान से है जो अनुभव निरपेक्ष होता है। यहाँ अनुभव निरपेक्ष होने का अर्थ यह नहीं है कि अनुभवातीत ज्ञान का अनुभव से कोई संबंध नहीं होता है अपितु अनुभव निरपेक्ष होने का तात्पर्य यह है कि वह अनुभव से उत्पन्न नहीं होता है। प्रागनुभविक ज्ञान अनिवार्यतः एवं सार्वभौम होता है और ऐसे गुणों से युक्त ज्ञान इन्द्रियानुभविक नही हो सकता क्योंकि इन्द्रियानुभवों से प्राप्त ज्ञान संभाव्य होता है, उसकी अनिवार्यता सापेक्षिक होती है न कि निरपेक्ष।

समस्त अनुभवातीत ज्ञान प्रागनुभविक होता है क्योंकि यह अनुभव स्वतंत्र एवं बुद्धि निर्मित होने के साथ अनिवार्य होता है। किन्तु समस्त प्रागनुभविक ज्ञान अनुभवातीत ज्ञान होता है क्योंकि प्रागनुभविक ज्ञान तभी संभव है जब उसका स्रोत बुद्धि हो किन्तु अनुभवातीत ज्ञान यह स्थापित करता है कि प्रागनुभविक ज्ञान का स्रोत बुद्धि ही है।

10.6 अनुभवातीत संवेदनशास्त्र का ज्ञान, अनुभवातीत ज्ञान है–

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारा सारा ज्ञान इन्द्रिय-संवेदन बुद्धि विकल्पों के समन्वय से बनता है। अनुभवातीत संवेदन शास्त्र में संवेदन शक्ति द्वारा प्रदत्त तत्त्वों (देश–काल) का अध्ययन किया जाता है। ज्ञान की सामग्री इन्द्रिय संवेदनों से प्राप्त होती है तथा बुद्धि विकल्प इसे व्यवस्थित कर ज्ञान का स्वरूप देते हैं। किन्तु इन्द्रिय संवेदनों एवं बुद्धि विकल्पों के मध्य देश–काल रूपी प्रत्यक्ष अनुभूति के दो द्वार हैं, जिनसे होकर इन्द्रिय संवेदन बुद्धि–विकल्पों तक पहुँचते हैं। ये देश–काल मानसिक चश्में के समान है, जिनके माध्यम से बाह्य जगत को देखा जा सकता है। देश–काल अनुभव निरपेक्ष एवं प्रागनुभविक होते हैं। ये आनुभविक नहीं होते हैं क्योंकि ये अनुभव का विषय न होकर अनुभव की पूर्वपेक्षा है, जिनके द्वारा हमारे समस्त अनुभव दिक्–काल परिछिन्न होते हैं। ये इन्द्रिय संवेदन एवं बुद्धि विकल्पों से भिन्न शुद्ध संवेदन है, जो अनुभवातीत एवं सार्वभौम है।

10.7 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का ज्ञान अनुभवातीत ज्ञान है –

पुनः हम जानते हैं कि काण्ट इन्द्रिय संवेदन एवं बुद्धि के समन्वय से ज्ञान के निर्माण को स्वीकारते हैं। अनुभवातीत तर्कशास्त्र में तर्कबुद्धि द्वारा प्रदत्त तत्त्वों (शुद्ध सम्प्रत्यय –Pure Concepts) एवं सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है। तर्क बुद्धि पर आधारित ज्ञान अनुभव निरपेक्ष होने के कारण प्रागनुभविक होता है और प्रागनुभविक ज्ञान अनिवार्य एवं सार्वभौम होता है। इस प्रकार अनुभवातीत तर्कशास्त्र अनिवार्य एवं सार्वभौम सत्य ज्ञान की संभावना का अध्ययन करता है। यह प्रागनुभविक कथनों की उत्पत्ति, सीमा एवं प्रामाणिकता से संबंधित होता है। ऐसा ज्ञान संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों के माध्यम से ही प्राप्त किया जाता है। अनुभवातीत तर्कशास्त्र में इन्हीं संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक कथनों का अध्ययन किया जाता है। अतः अनुभवातीत तर्कशास्त्र का ज्ञान अनुभवातीत होता है।

10.8 क्या गणित का ज्ञान अनुभवातीत ज्ञान है?

काण्ट कहते हैं कि गणित का ज्ञान, प्रागनुभविक ज्ञान होता है क्योंकि यह अनुभव स्वतंत्र होता है अर्थात् इसके लिए अनुभव की अनिवार्यता नहीं होती है। यह बुद्धि विकल्पों पर आधारित ज्ञान है। काण्ट कहते हैं कि गणितीय ज्ञान प्रागनुभविक ज्ञान की श्रेणी में आता है किन्तु यह अनुभवातीतज्ञान नहीं है। इसके कारण में काण्ट कहते हैं कि प्रागनुभविक ज्ञान तभी संभव है जब उसका उद्‌गम स्रोत बुद्धि में ही हो। काण्ट उपर्युक्त मानदण्ड के आधार पर प्रागनुभविक ज्ञान एवं अनुभवातीत ज्ञान में अन्तर करते हैं और गणित के ज्ञान को प्रागनुभविक तो मानते हैं किन्तु अनुभवातीत नहीं।

10.9 अनुभवातीत ज्ञान का वैध प्रयोग –

काण्ट के मतानुसार अनुभवातीत ज्ञान इन्द्रिय संवेदन एवं बुद्धि से निर्मित शुद्ध सम्प्रत्यय (Pure Concepts) का ज्ञान है। इस प्रकार के शुद्ध सम्प्रत्यय अनुभवातीत संवेदनशास्त्र एवं अनुभवातीत तर्कशास्त्र में पाए जाते हैं। इसलिए अनुभवातीत ज्ञान का वैध प्रयोग अनुभवातीत संवेदनशास्त्र एवं अनुभवातीत तर्कशास्त्र में किया जाता है।

10.10 अनुभवातीत संवेदनशास्त्र का ज्ञान –

अनुभवातीत संवेदनशास्त्र में संवेदना के प्रागनभविक रूप का अध्ययन किया जाता है। इसके तहत अपकर्षण की प्रक्रिया के द्वारा मानवीय ज्ञान में बुद्धिप्रदत्त तत्त्वों को पृथक कर केवल संवेदना शक्ति द्वारा प्रदत्त तत्त्वों का अध्ययन किया जाता है। संवेदना शक्ति मानवीय मन (Mind) की शक्ति है, जिसके द्वारा इन्द्रिय प्रत्यक्षों को ग्रहण किया जाता है। संवेदना शक्ति के दो पक्ष है। एक इन्द्रियानुभविक है जिसमें इन्द्रियानुभव की वस्तु सामग्री होती है तथा दूसरा प्रागनुभविक है जिससे इन्द्रिय संवेदन का आकार कहते हैं। काण्ट इन्हें शुद्ध संवेदन या संवेदन के शुद्ध आकार कहते हैं। अनुभवातीत संवेदनशास्त्र में इन्हीं शुद्ध आकारों का अध्ययन किया जाता है और संवेदनों के शुद्ध आकारों से प्राप्त ज्ञान अनुभवातीत ज्ञान कहलाता है। ज्यामिति का दृष्टांत इस संबंध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

10.11 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का ज्ञान

अनुभवातीत तर्कशास्त्र के अंन्तर्गत तर्कबुद्धि के प्रागनुभविक आकारों एवं ज्ञान की प्रक्रिया में उनके योगदान का अध्ययन किया जाता है। यह अनिवार्य एवं सार्वभौम सत्य की खोज के लिए प्रागनुभविक ज्ञान के उद्‌गम स्रोत खोज करता है क्योंकि प्रागनुभविक ज्ञान वस्तु पर आधारित न होकर उद्‌गम स्रोत बुद्धि पर आधारित होता है। बुद्धि द्वारा प्रदत्त ये तत्त्व शुद्ध सम्प्रत्यय (Pure Concepts) होते हैं। शुद्ध सम्प्रत्यय सामान्य एवं अनिवार्य होते हैं। पुनः सामान्य होने के कारण शुद्ध सम्प्रत्यय प्रागनुभविक होते है। शुद्ध सम्प्रत्यय आनुभविक विषयों की पूर्वपेक्षा है अर्थात् अनुभव के लिए शुद्ध सम्प्रत्यय अनिवार्य है इसलिए शुद्ध सम्प्रत्यय अनिवार्यतः संश्लेषणात्मक होते हैं। इस प्रकार शुद्ध सम्प्रत्यय से संबंधित कथन प्रागनुभविक संश्लेषणात्मक होते हैं और इससे प्राप्त ज्ञान अनुभवातीत ज्ञान होता है।

10.12 अनुभवातीत ज्ञान का अवैध प्रयोग –

अनुभवातीत ज्ञान बुद्धि आधारित होने के कारण अनुभव निरपेक्ष या प्रागनुभविक होता है जो अनिवार्य एवं सार्वभौम सत्य ज्ञान की प्राप्ति में सहायक है। अनुभवातीत ज्ञान के उपर्युक्त लक्षणों से भ्रम उत्पन्न होता है कि अनुभवातीत ज्ञान इन्द्रियानुभव से स्वतंत्र है। अतः इसके प्रयोग से इन्द्रियातीत या अनुभवातीत सत्ताओं जैसे–ईश्वर, आत्मा स्वर्ग इत्यादि सत्ताओं के विषय में भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् अनुभवातीत ज्ञान का प्रयोग परमार्थ वस्तुओं (थिंग्स–इन–इटसेल्फ) को निर्धारित करने में भी किया जा सकता है।

काण्ट कहते हैं कि अनुभवातीत ज्ञान का प्रयोग कर पारमार्थिक सत्ताओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह एक भ्रम है तथा अनुभवातीत ज्ञान का अनुचित प्रयोग एवं दुरूपयोग है। ऐसा करने से अनुभवातीत भ्रांति का जन्म होता है। उदाहरणार्थ काण्ट कहते हैं कि कारणता का सम्प्रत्यय एक शुद्ध सम्प्रत्यय है। यह प्रागनुभविक, अनिवार्य एवं सार्वभौम है किन्तु इसके प्रयोग की सीमा इन्द्रियानुभव की सीमा या जगत की सीमा है। जगतेत्तर या पारमार्थिक वस्तुओं पर इसका प्रयोग अनुचित है। यह कारणता के प्रत्यय की सीमा का उल्लंघन है। किसी ज्ञान का ऐसा प्रयोग तभी किया जाता है जब संप्रत्यय के वास्तविक स्वरूप एवं उसके प्रयोग को सम्यक् रूप से नहीं समझा जाता है।

काण्ट कहते हैं कि शुद्ध संप्रत्यय अपने स्वरूप की दृष्टि से अनुभव स्वतंत्र होने के कारण प्रागनुभविक होते है किन्तु इसका तात्पर्य नही है कि उनके प्रयोग के समय अनुभव की सीमा का उल्लंघन किया जाये और इसका प्रयोग अतीन्द्रिय, अगोचर एवं पारमार्थिक वस्तुओं पर करने, उनको परिभाषित एवं निर्धारित करने का कार्य किया जाये। काण्ट अपनी कृति 'शुद्ध बुद्धि की समीक्षा' (The critique of Pure Reason) में कहते हैं कि अनुभवतीत ज्ञान में अतीन्द्रिय प्रयोग की प्रवृत्ति लोगों में पायी जाती है, यह स्वाभाविक है किन्तु ऐसा करने से अनुभवातीत ज्ञान नहीं अपितु अनुभवातीत भ्रम की सृष्टि होती है।

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि काण्ट संवेदन शक्ति द्वारा प्रदत्त तत्त्वों की तर्कबुद्धि द्वारा व्याख्या के रूप में अनुभवातीत ज्ञान को परिभाषित करते हैं। ऐसे ज्ञान का वैध प्रयोग अनुभवातीत संवेदनशास्त्र एवं अनुभवातीत तर्कशास्त्र में होता है। गणित का ज्ञान प्रागनुभविक होने के वावजूद इस श्रेणी में नहीं आता है। अतीन्द्रिय सत्ताओं के संदर्भ में अनुभवातीत ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करना अतीन्द्रिय ज्ञान का अवैध एवं अनुचित प्रयोग है। जिससे अतीन्द्रिय भ्रम उत्पन्न होता है।

10.13 शब्दावली

(1) बुद्धि (Undestanding) – विकल्पों को प्राप्त करने की शक्ति

(2) बुद्धि विकल्प (Categories) – सभी संभावित मानवीय अनुभवों की प्रागनुभविक प्रागपेक्षाएँ

(3) संवेदन शक्ति (Sensibility) – बाह्य संवेदनाओं को ग्रहण करने की शक्ति।

10.14 प्रश्नावली

लघुउत्तरीय प्रश्न –

(1) अनुभवातीत ज्ञान के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख लक्षण बतायें।

(2) अनुभवातीत ज्ञान अनिवार्य, सार्वभौम एवं प्रागनुभविक होता है, सिद्ध करें।

(3) अनुभवातीत तर्कशास्त्र का ज्ञान, अनुभवातीत है, सिद्ध करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(1) अनुभवातीत ज्ञान को परिभाषित करते हुए इसके अवैध प्रयोग पर प्रकाश डालिए?

(2) अनुभवातीत ज्ञान के प्रयोग पर निबंध लिखे।

10.15 उपयोगी पुस्तकें -

(1) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

(2) पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव एवं विकास – हरिशंकर उपाध्याय

MAPH 113

खण्ड – 3

इकाई – 11 : अनुभवातीत तर्कशास्त्र का विभाजन

संरचना–

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का अर्थ

11.3 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का विभाजन

11.4 अनुभवातीत विश्लेषकी

11.4.1 सम्प्रत्ययों की विश्लेषकी : तर्कबुद्धि की कोटियाँ

11.4.2 बुध्दि –विकल्पों का तात्त्विक निगमन

11.4.3 बुद्धि–विकल्पों का अनुभवातीत निगमन

11.5 सिद्धातों की विश्लेषकी

11.5.1 आकारायण

11.5.2 तर्कवुद्धि के सिद्धांत

11.6 अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय

11.7 शब्दावली

11.8 प्रश्नावली

11.9 उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

अनुभवावीत तर्कशास्त्र का विभाजन इकाई के अन्तर्गत काण्ट द्वारा अनुभवातीत तर्कशास्त्र के विभाजन को क्रमशः अनुभवातीत विश्लेषकी एवं अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय के रूप में दर्शाया गया है। इसके उप–विभाजनों की भी संक्षिप्त में चर्चा की गयी है। आगामी खण्डों में इनकी पृथक रूप से विस्तारपूर्वक चर्चा की जायेगी।

11.1 प्रस्तावना

अनुभवातीत तर्कशास्त्र ज्ञान के अनुभव निरपेक्ष स्वरूप का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करता है। काण्ट बुद्धि को अतीन्द्रिय कहते हैं क्योंकि यह आनुभविक न होकर प्रागनुभविक है। अनुभवातीत श्तर्कशास्त्र में इसी अतीन्द्रिय बुद्धि द्वारा आनुभविक प्रत्ययों के स्वरूप का विश्लेषण किया जाता है, जिससे अनिवार्य एवं सार्वभौम ज्ञान की प्राप्ति की जाती है।

जब अनुभवातीत बुध्दि आनुभविक जगत तक सीमित रहकर इंद्रिय संवेदनों का विश्लेषण करती है तो इसका सम्बन्ध अनुभवातीत विश्लेषकी से होता है किन्तु जब बुद्धि इंद्रिय जगत का अतिक्रमण कर

अनुभवातीत सत्ताओं –ईश्वर, आत्मा एवं जगत का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करती है तो इससे भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसे अनुभवातीत भ्रम कहते हैं। इस अनुभवातीत भ्रम का सम्वन्ध अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय या प्रज्ञा के विवेचन से है क्योंकि ईश्वर, आत्मा एवं जगत बुद्धि के प्रत्यय न होकर प्रज्ञा (Reason) के प्रत्यय हैं।

11.2 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का अर्थ –

तर्कशास्त्र सत्य तर्क को असत्य तर्क से पृथक करने में प्रयुक्त होने वाले सिद्धांतों एवं विधियों का समुच्चय है, जिसमें वैध अनुमानों का प्रयोग कर निष्कर्ष की प्राप्ति की जाती है। अनुभवातीत का सामान्य अर्थ अनुभव की सीमा से परेह होना है। काण्ट बुद्धि को अनुभव की सीमा से परेह या प्रागनुभवातीत होने के कारण मानते हैं। इस प्रकार अनुभवातीत तर्कशास्त्र से आशय तर्कशास्त्र की उस शाखा से है, जिसमें तर्कबुद्धि के प्रागनुभविक आकारों का प्रयोग करके सत्य तर्क को असत्य तर्क से पृथक करने की विधियों एवं सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है।

अनुभवातीत तर्कशास्त्र अनिवार्य एवं सार्वभौम सत्य की खोज के लिए प्रागनुभविक ज्ञान के उद्गम स्रोत की खोज करता है क्योंकि प्रागनुभाविक वस्तु आधारित न होकर उद्गम स्रोत बुध्दि पर आधारित होता है। बुध्दि द्वारा प्रदत्त ये तत्त्व शुद्ध सम्प्रत्यय (Pure Concepts) होते हैं, जो सामान्य एवं सार्वभौम प्रकृति के होते हैं। ये शुद्ध सम्प्रत्यय इन्द्रियानुभविक न होकर प्रागनुभविक हैं क्योंकि ये आनुभविक विषयों की प्रागपेक्षा हैं।

अनुभवतीत तर्कशास्त्र में शब्द सम्प्रत्ययों से सम्बन्धित कथन प्रागनुभविक संश्लेषणात्मक प्रकार के होते हैं, जिसमें आनुभविक विषयों का निराकरण कर अनुभवातीत ज्ञान की प्राप्ति की जाती है । यह ज्ञान अनिवार्य, सार्वभौम एवं यथार्थ होता है।

11.3 अनुभवातीत तर्कशास्त्र का विभाजन–

काण्ट ने अनुभवातीत तर्कशास्त्र का विभाजन दो भागों में किया है–

(1) अनुभवातीत विश्लेषकी या अतीन्द्रिय बोध सिध्दान्त (Transcendental Analytic)

(2) अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय या प्रज्ञा का विवेचन (Transcendental Dialectic)

11.3.1 अनुभवातीत विश्लेषकी –

अनुभवातीत विश्लेषकी के अन्तर्गत बुध्दि द्वारा प्रदत्त शुद्ध ज्ञान के उन तत्त्वों एवं सिध्दान्तों का अध्ययन किया जाता है जिसके अभाव में वस्तु या विषय पर विचार ही नहीं किया जा सकता है। अनुभवातीत विश्लेषकी सार्वभौम सत्य का ज्ञान है। इन नियमों के अभाव या इन नियमों का निषेध कर सार्वभौम एवं अनिवार्य सत्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं की जा सकती है क्योंकि ज्ञान की उपादान सामग्री के अस्त–व्यस्त, विश्रृंखल एवं क्षणिक इन्द्रिय संवेदनों को व्यवस्थित एवं नियमित करने का कार्य बुद्धि ही करती है।

(1) बुध्दि विकल्पों का तात्विक निगमन (Metaphysical Deduction of Categories)

(2) बुध्दि विकल्पों का अनुभवातीत निगमन (Transcendental Deduction of Categories)

11.3.1.1 बुध्दि विकल्पों का तात्विक निगमन–

काण्ट बुद्धि विकल्पों को अनुभव निरपेक्ष या प्रागनुभविक मानते हैं। ये ज्ञान में अनिवार्यता सार्वभौमिकता लाने का कार्य करते हैं। बुद्धि विकल्प प्रागनुभविक होने के बावजूद अनुभव के विषयों पर ही लागू होते हैं। काण्ट कहते भी हैं कि बुद्धि विकल्प इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में अंधे या पंगु होते हैं क्योंकि ये इंन्द्रिय संवेदनों को ही ज्ञान के रूप में व्यवस्थित करते हैं। बुद्धि विकल्पों का घनिष्ठ सम्बन्ध तत्कालीन

तर्कशास्त्र के निर्णयों से है। यही कारण है कि जितनी संख्या तर्कशास्त्र में निर्णयों की है उतनी ही संख्या बुद्धि विकल्पों की भी है। तत्समय आकारिक तर्कशास्त्र में निर्णयों की संख्या बारह थी उसी के अनुरुप काण्ट ने बुद्धि विकल्पों की संख्या बारह बतायी है। जिससे प्रत्येक निर्णय एक बुद्धि विकल्प को अभिव्यक्त करता है।

निर्णय (Judgements)	बुद्धि विकल्प (Categaries of Understanding)
(अ) परिमाणवाचक	(अ) परिमाणवाचक
(1)सर्वव्यापी (Universal)	(1) एकता (Unity)
–सभी मनुष्य मरणशील हैं।	
(2)अंशव्यापी (Particular)	(2) अनेकता (Plurality)
– कुछ मनुष्य श्वेत है। –	
(3)एकव्यापी (Singular)	(3) समग्रता (Tetality)
– यह मनुष्य श्वेत है।	

11.3.1.2 अनुभवावीत विश्लेषकी को काण्ट पुनः दो भागों में विभाजित करते हैं–

(क) सम्प्रत्ययों की विश्लेषकी-तर्कबुध्दि की कोटियाँ (Analytic of Concepts -The Categaries of Understanding)

(ख) सिद्धांतों की विश्लेषकी (Analytic of Principles)

11.3.1.2.1 सम्प्रत्ययों की विश्लेषकी

तर्कबुध्दि की कोटियाँ– संवेदनों के सम्प्रत्ययों का विश्लेषण करने के उपरान्त काण्ट बुद्धि के आकार का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हैं। काण्ट बुद्धि के आकारों को बौद्धिक सम्प्रत्यय कहते हैं। ये बौध्दिक सम्प्रत्यय ही अव्यवस्थित एवं अनियमित इन्द्रिय संवेदनों को व्यवस्थित एवं नियमित करने का कार्य करते हैं। बुद्धि विकल्पों को प्राप्त समस्त इन्द्रिय संवेदन देश–काल रूपी प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वारों या मानसिक चश्मे से होकर ही बुद्धि विकल्पों तक पहुँचते हैं। अतः बुद्धि विकल्पों को प्राप्त संवेदनों में देश–काल अन्तर्व्याप्त रहते हैं। काण्ट के मतानुसार मानवीय बुद्धि ग्रहणशील एवं सृजनात्मक दोनों है। यह इन्द्रिय संवेदनों को ग्रहण करती है तथा इन संवेदनों को व्यवस्थित एवं नियमित कर ज्ञान का सृजन करती है। इन्द्रिय संवेदन ज्ञान की उपादान सामग्री है, जिनके अभाव में ज्ञान का सृजन नहीं हो सकता है, साथ ही यदि बुद्धि विकल्प, न हों तो इन्द्रिय संवेदन ज्ञान का स्वरूप भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। काण्ट अपनी पुस्तक 'शुद्ध बुद्धि की समीक्षा' (Critique of Pure Reason) में बुद्धि विकल्पों का गहन विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते है।

काण्ट सम्प्रत्ययों की विश्लेषण, तर्कबुद्धि की कोटियों का विश्लेषण कर पुनः दो भागों में विभाजित करते हैं–

(ब) गुणवाचक	(ब) गुणवाचक
(4) विधायक (Affirmative)	(4) भाव (Reality)
– मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है।	
(5) निषेधात्मक (Negative)	(5) अभाव (Negation)
– पशु विवेकशील प्राणी नहीं है।	

(6) अपरिमित (infinite) – आत्मा अमर है। (6) सीमांकन (Limitation)

(स) सम्बन्धवाचक (स) सम्बन्धवाचक

(7) निरपेक्ष (Categarical) (7) द्रव्य–गुण सम्बन्ध (Substance and qulaities)

– अग्नि ऊष्ण है।

(8)सापेक्ष (Hypothetical) (8) कारण–कार्य सम्बन्ध (Cause and Effect)

– यदि पानी बरसेगा तो फसल अच्छी होगी ।

(9) वैकल्पिक (Disjunctive) (9) अन्योन्याश्रय सम्बन्ध (Reciprocity between the active and the passive)

– प्रकाश है या अंधकार है।

(द) प्रकारतावाचक (द) प्रकारतावाचक

(10) संभाव्य (Probable) (10) संभावना और असंभावना (Possibility&Impossibility)

– यदि पूर्ण न्याय होगा तो दुष्ट दण्डित होंगे।

(11) प्रतिपन्न (Assertaric) (11) अस्तित्व एवं अनस्तित्व (Existence-non-existence)

–पृथ्वी गोल है।

(12) स्वतः सिद्ध (Apadictic) (12) अनिवार्यता एवं आपातिकता (Necessity & Contingency)

–प्रत्येक कार्य सकारण है।

11.4 बुद्धि–विकल्पों का अनुभवातीत निगमन–

काण्ट बुद्धि को अतीन्द्रिय कहते हैं। वे बुद्धि–विकल्पों के अतीन्द्रिय निगमन के अन्तर्गत बाह्य जगत से प्राप्त संवेदनों पर प्रागनुभविक सम्प्रत्ययों के प्रयोग का औचित्य प्रतिपादित करते हैं। काण्ट द्वारा प्रतिपादित अनुभवातीत निगमन के दो पक्ष हैं –

(1) बुद्धि विकल्पों का आत्मनिष्ठ निगमन

(2) बुद्धि विकल्पों का वस्तुनिष्ठ विगमन

11.5 सिद्धांतों की विश्लेषकी– सिध्दान्तों की विश्लेषकी के अन्तर्गत काण्ट अनुभवातीत तर्कशास्त्र के सिध्दान्तों एवं नियमों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हैं। इसमें तर्कबुध्दि के शुध्द सम्प्रत्ययों में निहित नियमों का प्रदर्शन किया जाता है।

काण्ट सिद्धान्तों की विश्लेषकी को दो भागों में बाँटते हैं –

(1) आकार योजना (Schematism)

(2) तर्कबुद्धि के सिद्धान्त (Principles of Understanding)

11.5.1 आकार योजना– आकार योजना के माध्यम से काण्ट बुद्धि विकल्पों एवं प्रत्यक्ष के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करते हैं। यही बुद्धि विकल्प रूपी आकारों में प्रत्यक्षों अर्थात् 'विशेषों' का सन्निवेश है क्योंकि बुद्धि विकल्प अनिवार्य एवं सार्वभौमिक जबकि प्रत्यक्ष विशिष्ट होते हैं। आकार योजना से युक्त होने पर पदार्थ आकार युक्त पदार्थ कहे जाते हैं और जब वे आकार युक्त नहीं रहते तो उन्हें शुद्ध पदार्थ कहा जाता है। आकार योजना कालावच्छेद है। जब शुद्ध पदार्थ कालावच्छन्न या कालावस्थित होते हैं तो उन्हें आकार युक्त पदार्थ कहा जाता है। काण्ट कहते हैं कि बुद्धि विकल्पों में आकार काल (Time) से

प्राप्त होता है। काल ही बुद्धि विकल्पों एवं इन्द्रिय संवेदनों के मध्य सम्वन्ध स्थापित करने का कार्य करता है। जो इस प्रकार है –

(अ) परिमाण –

(1) एकता– काल के सभी क्षण

(2) अनेकता– काल के अनेक क्षण

(3) समग्रता– काल का एक क्षण

(ब) गुण–

(4) भाव– काल में भाव

5 अभाव– काल में अभाव

(6) परिसीमा –काल में कुछ भाव

(स) सम्बध–

(7) द्रव्य–गुण –परिवर्तनशील वस्तुओं में कुछ अव्यावहत वस्तु शेष रहती है।

(8) कारण–कार्य –कुछ वस्तुओं में अनिवार्य सम्बध पाया जाता है।

(9) अन्योन्याश्रय –कुछ गुण काल में एक साथ दिखाई पड़ते हैं।

(द) निश्चय मात्रा सम्बन्धी

(10) संभावना –असंभावना–किसी एक समय में किसी वस्तु का अस्तित्व है।

(11) सत्ता– असत्ता –किसी निर्धारित काल में होना।

(12) अनिवार्यता – यादृच्छिकता–सभी कालों में होना।

11.5.2 तर्कबुद्धि के सिद्धान्तः–

काण्ट तर्कबुद्धि के सिध्दांत में कहते हैं कि बुद्धि–विकल्प एवं आकार योजना स्वंय सिध्दात न होकर सम्प्रत्यय मात्र हैं। इन सम्प्रत्ययों में व्यवहार के विषय में जो सिद्धान्त है वे ही अनुभव की अनिवार्य प्रागपेक्षाएँ हैं।

बुध्दि के कुल आठ सिद्धांत हैं। जिन्हें काण्ट चार भागों में विभाजित करते हैं–

(1) परिमाण– संवेदना के स्वतः सिद्ध सूत्र

(2) गुण– प्रत्यक्ष के पूर्वावधारण

(3) सम्बन्ध अनुभवों के सादृश्य

(4) प्रकार– सामान्य अनुभवों के अपेक्षित अभ्युपगम

11.6 अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय –

काण्ट कहते हैं कि जब अनुभवातीत तर्कशास्त्र की अनिवार्यता के आधार पर ज्ञान का नियमन न करके अनिवार्यता के आधार पर ज्ञान का विस्तार करने का प्रयास किया जाता है तो अनुभवातीत तर्कशास्त्र से सत्य ज्ञान की प्राप्ति न होकर द्वन्द्वन्याय भ्रान्ति का जन्म होता है। अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय में काण्ट इस प्रकार की भ्रान्तियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हैं। अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय भ्रान्ति का तर्कशास्त्र है ।

काण्ट ने भ्रान्तियों का वर्गीकरण प्रज्ञा के तीन प्रत्ययों के अनुरूप तीन प्रकारों में करते हैं–

(1) बौध्दिक मनोविज्ञान

(2) बौध्दिक विश्वविज्ञान

(3) बौध्दिक धर्म विज्ञान

सारतः काण्ट अनुभवातीत तर्कशास्त्र का विभाजन अनुभवातीत विश्लेषकी एवं अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय में कर इसके उप–विभाजनों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए अनुभवातीत तर्कशास्त्र को समृद्ध करने का कार्य करते हैं। अनुभवातीत विश्लेषकी में तर्क बुद्धि एवं इसके विकल्पों की गहन समीक्षा कर इसे तर्कशास्त्र के निर्णयों से जोड़ते हैं। वहीं अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय में बुद्धि (Understanding) से भिन्न प्रज्ञा (Reasen) के तीन प्रत्ययों–ईश्वर, आत्मा, जगत की भी समीक्षा एवं मूल्यांकन करते हैं।

11.7 शब्दावली

(1) बुद्धि विकल्प (Categories)– सभी संभावित मानवीय अनुभवों की प्रागनुभविक प्रागपेक्षा।

(2) बौद्धिक मनोविज्ञान (Rational Psychology)– आत्मा का विज्ञान, जो बुद्धि–पर आधारित है।

11.8 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न–

(1) अनुभवातीत तर्कशास्त्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए, इसके विभाजनों का नामोल्लेख करें।

(2) अनुभवातीत विश्लेषकी क्या है? इसके उप–विभाजन को बतायें।

(3) अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय का अर्थ स्पष्ट करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

(1) अनुभवावीत तर्कशास्त्र के विभाजन पर निबन्ध लिखें।

(2) अनुभवावीत विश्लेषकी के अर्थ को सविस्तार स्पष्ट करते हुए इसका विभाजन कीजिए।

11.9 उपयोगी पुस्तकें

(1) काण्ट का दर्शन – संगल माल पाण्डेय

(2) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

(2) पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव एवं विकास – हरिशंकर उपाध्याय

----------0000----------

MAPH 113

खण्ड : 4

बुध्दि विकल्पों का तात्त्विक निगमन

प्रस्तावनाः–

ज्ञान की प्रक्रिया में बुद्धि सम्प्रत्ययों के माध्यम से कार्य करती है। ये सम्प्रत्यय समस्त मानवीय अनुभवों की पूर्ववर्ती शर्त के रूप में मानवीय बुद्धि में निहित होते हैं। ये मानवीय अनुभव को संभव बनाते हैं। काण्ट बुद्धि को सम्प्रत्ययों का संकाय कहते हैं जो अस्त–व्यस्त अनियमित इन्द्रिय संवेदनों को व्यवस्थित, नियमित एवं प्रबंधित करने का कार्य करते हैं। प्रत्यक्ष अनुभूति के विषय ही मानवीय बुद्धि के ज्ञान के विषय हैं। जब मानवीय बुद्धि किसी विषय के सम्बंध में कोई निर्णय देती है तो उसके मूल में मानवीय बुद्धि विकल्प निहित होते हैं। ये बुद्धि विकल्प अनुभव निरपेक्ष होते हैं अर्थात् ये अनुभव के विषय न होकर अनुभव के कारण या समस्त मानवीय अनुभवों की प्रागनुभविक प्रागपेक्षाएँ है। यही बुद्धि विकल्पों का अतीन्द्रिय निगमन है।

----------0000000----------

MAPH 113

खण्ड : 4

ईकाई : 12 सम्प्रत्ययों का तात्त्विक निगमन

संरचना –

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सम्प्रत्यय का अर्थ

12.3 निर्ण़य का अर्थ

12.4 निर्णयों के प्रकार

12.5 निर्णयों के वर्गीकरण का स्रोत

12.6 सम्प्रत्ययों की संख्या का निर्धारण

12.7 सम्प्रत्ययों की तात्त्विक निगमन की प्रक्रिया के चरण

12.8 निर्णयों का विभाजन

12.9 सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन का मूल्यांकन

12.10 निष्कर्ष

12.11 शब्दावली

12.12 प्रश्नावली

12.13 उपयोगी पुस्तकें

.....00000.....

12.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई ''सम्प्रत्यय का तात्त्विक निगमन'' में काण्ट के तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों के निगमन का वर्णन किया गया, जो प्रागनुभविक हैं। इसमें सम्प्रत्ययों की परिभाषा, प्रकार, वर्गीकरण के स्रोत, संख्या एवं खोज की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन की प्रक्रिया के मुख्य चरणों, निर्णयों के प्रकार एवं कोटियों की संख्या का नामोल्लेख करते हुए काण्ट के सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन के विरुद्ध उठायी गयीं आपत्तियों को दर्ज करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

12.1 प्रस्तावना–

काण्ट सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन के तहत बुद्धि के उन सम्प्रत्ययों का तात्त्विक निगमन करते हैं जो समस्त मानवीय अनुभवों की पूर्ववर्ती शर्त के रूप में मानवीय अनुभव की संरचना में निहित होते हैं। इनके अभाव में मानवीय अनुभव संभव नहीं हैं। ये मानवीय अनुभव के मूल में विद्यमान हैं। सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन के लिए काण्ट शुद्ध सम्प्रत्ययों की खोज करते हैं तथा उनकी संख्या निर्धारित करते हैं। काण्ट उस पद्धति को भी स्थापित करने का प्रयास करते हैं जिसके आधार पर सम्प्रत्ययों को खोजा जा सके। उद्देश्य की प्राप्ति हेतु काण्ट निर्णय की प्रक्रिया एवं निर्णय के प्रकारों का विश्लेषण करते हैं क्योंकि निर्णयों में सम्प्रत्ययों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है।

12.2 सम्प्रत्यय का अर्थ :–

काण्ट ज्ञान प्राप्ति के मूल में दों स्रोतों –संवेदन (Sensation) और सम्प्रत्यय (Conception) को स्वीकार करते हैं। संवेदन एवं सम्प्रत्यय दोनों प्रक्रियाएँ हैं जो मानवीय मस्तिष्क द्वारा सम्पादित की जाती हैं। संवेदन का सम्बन्ध संवेद्यता (Sensibility) से है, जिसे आत्मा द्वारा बाहय संस्कारों को ग्रहण करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। सम्प्रत्यय की प्रक्रिया मानवीय बुद्धि (Understanding) में सम्पन्न होती है। बुद्धि आत्मा की शक्ति है जो विज्ञानों को बाह्य संस्कारों के बिना ही स्वयं उत्पन्न करती है। इस प्रकार काण्ट सम्प्रत्यय को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि सम्प्रत्यय मानवीय मस्तिष्क में सम्पन होने वाली प्रक्रिया है जिसमें बुद्धि बाह्य संस्कारों के बिना ही विज्ञानों की उत्पत्ति करती है।

ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में बुद्धि सम्प्रत्ययों के माध्यम से बाह्य संस्कारों को ज्ञान के रूप में परिवर्तित करती है। बुद्धि सम्प्रत्ययों के माध्यम से कार्य करती है क्योंकि वह असंवेदनशील है अर्थात् बाह्य संवेदनों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है। बाह्य संवेदन देश–काल द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। वाह्य संवेदनों के अभाव में सम्प्रत्यय ही ज्ञान के निर्माण के अन्य साधन हैं, जिसके द्वारा बुद्धि निर्णय देने का कार्य करती है।

12.3 निर्णय का अर्थ–

काण्ट निर्णय को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि निर्णय बाह्य बस्तुओं का अप्रत्यक्ष ज्ञान है। यहाँ अप्रत्यक्ष ज्ञान कहने से तात्पर्य है कि वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान केवल संवेदनों में होता है।क्योंकि संवेदन वस्तु के प्रत्यक्ष सम्पर्क में होते हैं जबकि संवेदन बुद्धि द्वारा ग्राह्य न होकर देश– काल द्वारा ग्राह्य होते हैं। बुद्धि सम्प्रत्ययों के माध्यम से ज्ञान का निर्माण करती है। अतः इस अर्थ में सम्प्रत्यय के माध्यम से बुद्धि द्वारा कृत निर्णय वाहय वस्तुओं का अप्रत्यक्ष ज्ञान है। निर्णय के द्वारा बुध्दि ज्ञान की सामग्री में समन्वय स्थापित करती है। हम जानते हैं कि बुध्दि के समस्त कार्य निर्णयात्मक होते हैं। यही कारण है कि बुद्धि को निर्णय शक्ति के आधार पर जाना जाता है। इस प्रकार निर्णय बाह्य वस्तुओं के संवेदनो की एकता या संकुचन की प्रक्रिया है। अन्य शब्दों में निर्णय तात्कालिक संवेदनो के वजाय अन्य कई संवेदनों की संकुचन की प्रक्रिया का परिणाम है। काण्ट इसे एक दृष्टान्त के माध्यम से स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि श शरीर विभाज्य होता है, इस निर्णय में विभाज्यता का सम्प्रत्यय उसके सम्प्रत्ययों की एकता या संकुचन है। यह निर्णय शरीर के अतिरिक्त अन्य पदार्थों पर भी लागू होता है। सम्प्रत्ययों की एकता की यह प्रक्रिया निर्णय के अति प्रारम्भिक प्रकारों में भी पायी जाती है।

12.4 निर्णयों के प्रकार –

काण्ट निर्णयों के दो प्रकारों को स्वीकार करते हैं.– निर्णय (1) प्रत्यक्षात्मक निर्णय (2) वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय।

(1) प्रत्यक्षात्मक निर्णय, निर्णय का अति प्रारम्भिक रूप है जो बाह्य वस्तु की तात्कालिक प्रत्यक्ष अनुभूति को व्यक्त करता है। इस प्रकार के निर्णय में निहित एकता का प्रत्यक्ष इन्द्रिय प्रत्यक्ष के द्वारा आकर्षित होता है। प्रत्यक्षात्मक निर्णय व्यक्तिनिष्ठ निर्णय होते हैं क्योंकि इसका सत्य अनुभवकर्ता के सापेक्ष होता है। दो भिन्न अनुभवकर्ताओं का एक ही वस्तु के सम्बन्ध में पृथक–पृथक निर्णय हो सकता है। एक दृष्टान्त के द्वारा इसे समझा जा सकता है। एक बाह्य वस्तु का प्रत्यक्ष करने के उपरान्त एक अनुभव कर्ता उस वस्तु सम्बंध में निर्णय देता है कि (यह भारी प्रतीत होता है।) यहाँ उपरोक्त निर्णय प्रत्यक्षात्मक निर्णय है। इसमें दो प्रत्यक्ष सम्मिलित हैं। एक यह अर्थात– बाह्य वस्तु (पत्थर) तथा दूसरा भारी होना। इस प्रकार यह निर्णय बुद्धि द्वारा दो प्रत्यक्षों के संवेदनों के एकीकरण अथवा संकुचन की प्रक्रिया का परिणाम है। यहाँ एकता या संकुचन का सम्प्रत्यय इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा आकर्षित है। यह एक व्यक्तिनिष्ठ निर्णय है क्योंकि वाह्य वस्तु को देखकर उसके भारी होने का अनुभव करना अनुभवकर्ता का व्यक्तिगत अनुभव है। कोई भिन्न अनुभवकर्ता इसी वस्तु का अनुभव करने के उपरान्त इससे भिन्न निर्णय भी दे सकता है। इस अर्थ में यह अनुभवकर्ता पर निर्भर है।

(2) वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय भी सम्प्रत्ययों के एकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम हैं किन्तु यह अनुभवकर्ता की तात्कालिक प्रत्यक्ष अनुभूति न होकर बाह्य वस्तु के सम्बन्ध में वस्तुनिष्ठ, सत्य अभिव्यक्त करती है। ये वस्तुगत निर्णय होते हैं जो अनुभवकर्ता के निजी अनुभव पर निर्भर न करके अनुभव निरपेक्ष प्रकृति होते हैं। ये सभी अनुभवकर्ताओं के लिए सत्य होते हैं। यथा– यह पत्थर भारी है। एक वस्तुगत इंद्रियानुभविक निर्णय है। यह निर्णय एक विशेष वस्तु पत्थर के सन्दर्भ में दिया जा रहा है अर्थात् पत्थर की पहचान सार्वजनिक रूप से की जा सकती है। पत्थर के सम्बन्ध में भारी होने का निर्णय वस्तुगत सत्य है क्योंकि कोई भी अनुभवकर्ता पत्थर के भारी होने का अनुभव समान रूप से करेगा तथा पत्थर के भारी होने को सार्वजनिक रूप से प्रमाणित भी किया जा सकता है।

प्रत्यक्षात्मक निर्णय एवं वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय की उपर्युक्त परिभाषाओं एवं दृष्टान्तों के आलोक में कहा जा सकता है कि–(1) प्रत्यक्षात्मक निर्णय अनिश्चित पदार्थ की ओर संकेत करता है जबकि वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय में बाह्य पदार्थ, जिसका अनुभव, अनुभवकर्ता द्वारा किया जाता है, वह निश्चित होता है। उपरोक्त दृष्टान्तों के संदर्भ में वह बाह्य पदार्थ पत्थर है। (2) प्रत्यक्षात्मक निर्णय व्यक्तिगत सत्य होते हैं अर्थात् अनुभवकर्ता पर निर्भर नहीं करते हैं जबकि वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय वस्तुगत सत्य होते हैं। ये अनुभवकर्ता पर निर्भर न करके निरपेक्ष सत्य होते हैं। ये सामान्य चेतना की यथार्थता से युक्त निर्णय के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

12.5 निर्णयों के वर्गीकरण का स्रोत–

काण्ट कहते हैं कि उपरोक्त निर्णयों की विशेषताओं के आधार पर इन निर्णयों को प्रत्यक्षात्मक निर्णय एवं वस्तुगत, इन्द्रियानुभविक निर्णय के रूप में वर्गीकृत करने का स्रोत प्रत्यक्ष नहीं माना जा सकता है क्योंकि प्रत्यक्षात्मक निर्णय में जो विशेषताएँ पायी जाती हैं वे वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय में नहीं पायी जाती हैं। निर्णयगत सम्प्रत्यय को भी निर्णयों के वर्गीकरण का आधार नहीं माना जा सकता है। क्योंकि उपरोक्त दोनों दृष्टान्तों में पत्थर एवं भारीपन के प्रत्यय निहित हैं। इस प्रकार निर्णयगत सम्प्रत्यय की दृष्टि से प्रत्यक्षात्मक निर्णय एवं वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय समान हैं क्योंकि यदि निर्णयगत सम्प्रत्यय को निर्णयों के वर्गीकरण का आधार माना जायेगा तो प्रत्यक्षात्मक निर्णय एवं वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय दोनों ही व्यक्तिगत यथार्थता या सामान्य यथार्थता में से किसी एक से ही युक्त होते हैं, पृथक–पृथक नहीं जबकि हम जानते हैं कि प्रत्यक्षात्मक निर्णय में व्यक्तिगत यथार्थता तथा वस्तुगत इंद्रियानुभविक निर्णय में सामान्य यथार्थता पायी जाती है।

प्रत्यक्ष एवं निर्णयगत सम्प्रत्यय की उपर्युक्त समीक्षा के आलोक में कहा जा सकता है कि निर्णयों के वर्गीकरण का स्रोत प्रत्यक्ष व निर्णयगत सम्प्रत्यय में निहित न होकर दोनों ही निर्णयों की मौलिकता है। जिससे प्रथम प्रकार का निर्णय प्रत्यक्ष पर आधारित है जबकि द्वितीय प्रकार के निर्णय में बुद्धि प्रत्यक्षगत सम्प्रत्ययों को ग्रहण करने में प्रागनुभविक सम्प्रत्यय का प्रयोग करती है, जिससे वे प्रत्यक्षात्मक निर्णय के समान चेतना विशेष के लिए यथार्थ न होकर सामान्य चेतना के लिए यथार्थ हो जाते हैं। इस प्रकार काण्ट वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णयों की सामान्य यथार्थता को बुद्धि के वे प्रागनुभविक सम्प्रत्ययों (कोटियों) में निहित मानते हैं। वे कहते हैं कि हर वस्तुगत निर्णय की सामान्य यथार्थता प्रागनुभविक सम्प्रत्यय पर निर्भर करती है।

12.6 सम्प्रत्ययों की संख्या का निर्धारण–

काण्ट कहते हैं कि निर्णयों के भेद के मूल में निहित सम्प्रत्यय की खोज के उपरान्त सम्प्रत्ययों की संख्या का निर्धारण करना आसान हो जाता है। वे कहते हैं कि निर्णयों के विविध प्रकार पारम्परिक तर्कशास्त्र द्वारा निर्धारित किये जाते हैं इसलिए उन निर्णयों का सहारा लेते हुए हम बुद्धि समस्त संप्रत्ययों (कोटियों) की संख्या को निर्धारित करते हैं। काण्ट कहते हैं कि जो बुद्धि अपने सम्प्रत्ययो में विश्लेषणात्मक एकता की क्रिया द्वारा निर्णय का तार्किक आकार उत्पन्न करती है वही बुद्धि सम्प्रत्ययों की उसी क्रिया द्वारा संवेदनों की संश्लेषणात्मक एकता द्वारा प्रागनुभविक तत्त्व का भी प्रवेश करती है।

12.7 सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन की प्रक्रिया के चरण :– काण्ट निर्णय के तार्किक आकारों के आधार पर बुद्धि के प्रागनुभविक सम्प्रत्यय के निगमन की प्रक्रिया को मुख्यतः पाँच चरणों में व्यक्त करते हैं ताकि सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन की प्रक्रिया को सुगम बनाया जा सके। ये पाँच चरण निम्नलिखित हैं–

(1) बुद्धि सम्प्रत्ययों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता से युक्त है।

(2) बुद्धि के सम्प्रत्ययों के माध्यम से किसी बाह्य वस्तु के बारे में जानना, निर्णय देना है।

(3) निर्णय देने का तात्पर्य प्रत्ययों में एकता या संकुचन स्थापित करना है।

(4) आकारिक तर्कशास्त्र द्वारा प्रतिपादित निर्णय के विभिन्न आकारों द्वारा निर्णय की प्रक्रिया में प्रत्ययों को एकीकृत किया जाता है।

(5) निर्णय के आकारों की संख्या बुद्धि के प्रागनुभविक सम्प्रत्ययों की पूर्ण संख्या है।

12.8 निर्णयों का विभाजन :–

काण्ट ने पारम्परिक तर्कशास्त्र को निर्णयों के विभाजन का आधार मानते हुए निर्णयों को चार वर्गो में विभाजित किया है तथा प्रत्येक वर्ग के तीन उप–विभाजन किये हैं।

पारम्परिक तर्कशास्त्र में काण्ट कृत कुछ बदलाव भी शामिल है –

(क) परिमाण वाचक निर्णय (Quantitative Judgement)

(1)सामान्य निर्णय (Universal)

(2)विशेष निर्णय (Particular)

(3)एकात्म निर्णय (Singular)

(ख) गुण वाचक निर्णय (Qualitative Judgement)

(1) भावात्मक निर्णय (Affirmative)

(2) अभावात्मक निर्णय (Negative)

(3) सीमित निर्णय (Limited)

(ग) सम्बध वाचक निर्णय (Relational judgement)

(1) निरपेक्ष निर्णय (Categorical)

(2) सापेक्ष निर्णय (Hypothetical)

(3) वैकल्पिक निर्णय (Disjunctive)

(घ) प्रकार वाचक निर्णय (Model Judgement)

(1) संभावित निर्णय (Problemative)

(2) प्रतिपन्न निर्णय (Assertaric)

(3) आवश्यक निर्णय (Apodiatic)

काण्ट निर्णयों की सम्यक् विभाजन एवं उप–विभाजन प्रस्तुत करने के उपरान्त तर्कबुध्दि की कोटियों को निर्धारित करते हैं। जिसका आधार वे निर्णयों के विभाजन को मानते हैं और निर्णयों के बारह उप–विभाजन के अनुरुप बुध्दि की बारह कोटियों का उल्लेख करते हैं। इसे ही बुध्दि के शुध्द प्रागनुभविक सम्प्रत्यय भी कहा जाता है।

बुध्दि की बारह कोटियाँ निम्नलिखित है–

(क) परिणाम के सम्प्रत्यय	–	(1) एकता
		(2) अनेकता
		(3) पूर्णता
(ख) गुण के सम्प्रत्यय	–	(4) वास्तविकता
		(5) निषेध
		(6) सीमा
(ग) सम्बन्ध के सम्प्रत्यय	–	(7) द्रव्य एवं गुण
		(8) कार्य एवं कारण
		(9) परस्परता
(घ) प्रकारता के सम्प्रत्यय	–	(10) संभावना एवं असंभावना

(11) भाव एवं अभाव

(12) अनिवार्यता एवं यादृच्छिकता

निर्णयों के प्रकार एवं उप–प्रकार तथा बुध्दि के शुध्द प्रागनुभविक सम्प्रत्ययों (कोटियों) की विस्तारपूर्वक व्याख्या इसी खण्ड के अगले इकाई में की गयी है।

12.9 सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन का मूल्यांकन :– कुछ विचारकों का मत है कि काण्ट द्वारा तर्कबुध्दि के मूलभूत सम्प्रत्ययों की खोज उनका मौलिक सिध्दान्त नहीं हैं क्योंकि काण्ट के पूर्व एवं सर्वप्रथम अरस्तू ने तर्कबुध्दि के मूलभूत सम्प्रत्ययों के खोजने का कार्य किया था। किन्तु काण्ट का मत है कि अरस्तू का प्रयास किसी सिध्दांत के अन्तर्गत न होकर उच्छृंखल रूप से किया गया था। काण्ट कहते है कि अरस्तू के मन में जैसे–जैसे ये सम्प्रत्यय आते गये वह इन्हें स्वीकार करते गये इसलिए उसकी सम्प्रत्ययों की सूची अपूर्ण है जबकि काण्ट अपने सिद्धांत के पक्ष में कहते हैं कि यह सुनिश्चित सिद्धांत है। जिसमें तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों की पूर्ण सूची प्रस्तुत की गयी है।

सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन के विरुद्ध सबसे सशक्त आपत्ति यह है कि काण्ट अपने सिद्धांत के प्रतिपादन के क्रम में अरस्तू के पारम्परिक तर्कशास्त्र को आधार बनाते हैं। काण्ट यह मान लेते हैं कि पारम्परिक तर्कशास्त्र पर आधारित उनके निर्णयों की सूची पूर्ण है। किन्तु हेगेल एवं गिल्बर्ट राइल जैसे विचारकों का मानना है कि काण्ट की यह सूची पूर्ण नहीं है। आधुनिक तर्कशास्त्र में तर्कवाक्यों के विभाजन का अध्ययन किया जाये तो उसमें यह नहीं खोजा जा सकता है कि वस्तुओं की अवधारणा में कोई प्रागनुभविक सम्प्रत्यय है।

काण्ट की आलोचना उनके इस दावे के विरुद्ध जाती है कि उनके द्वारा प्रस्तुत कोटियों के अतिरिक्त कोई प्रागनुभविक कोटि नहीं हो सकती है। किन्तु व्हाइटहेड की चार आयामी घटनाओं का सम्प्रत्यय, जो सापेक्षता–भौतिकी में प्रयोग किया जाता है, के आधार पर काण्ट के घटनाओं को त्रिआयामी मानने के सम्प्रत्यय का खण्डन हो जाता है।

12.10 निष्कर्ष –

काण्ट के सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन के विरुद्ध उठायीं गयी आपत्तियों एवं आधुनिक तर्कशास्त्र के आलोक में यह स्वीकार करना होगा कि काण्ट के तात्त्विक निगमन की बहुत सी बातें अब अपनी प्रासंगिकता खो चुकी हैं और उनका स्थान नये अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षो ने ले लिया है। किन्तु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि काण्ट का सिद्धान्त सर्वथा व्यर्थ एवं अनावश्यक है। यदि काण्ट निर्णयों एवं बुद्धि के सम्प्रत्ययों की सूची अपूर्ण है तो उसे काण्ट की पारम्परिक तर्कशास्त्र पर निर्भरता के आलोक में देखा जाना चाहिए न कि सम्पूर्ण सिध्दान्त को व्यर्थ एवं अनावश्यक कहा जाये।

12.11 शब्दावली

(1) तात्विक निगमन – परामर्श रूपों से तत्वों/पदार्थों का निष्कर्ष निकालना।

(2) इन्द्रियानुभविक –इन्द्रियों के अनुभव पर आधारित ।

12.12 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न–

(1) सम्प्रत्यय के अर्थ को स्पष्ट करें।

(2) निर्णय क्या हैं? इनके प्रकार बतायें।

(3) वस्तुगत इन्द्रियानुभविक निर्णय क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः–

(1) सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगमन की प्रक्रिया के प्रमुख चरणो का उल्लेख करें।

(2) निर्णय को परिभाषित करते हुए इसके प्रकारों की व्याख्या विस्तारपूर्वक करें।

12.13 उपयोगी पुस्तकें

(1) काण्ट का दर्शन–सभाजीत भित्र

(2) पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव एवं विकास–हरिशंकर उपाध्याय

******000***000*****

खण्ड –.4

इकाई –13 बुध्दि–विकल्पों एवं निर्णयों के प्रकार

संरचना :–

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 बुध्दि विकल्प की परिभाषा

13.3 बुध्दि के कार्य

13.4 निर्णय की परिभाषा

13.5 निर्णयों के प्रकार

13.6 बुध्दि विकल्पों के प्रकार

13.7 बुध्दि विकल्पों की विशेषताएँ

13.8 बुध्दि विकल्पों की अवधारणा का मूल्यांकन

13.9 निष्कर्ष

13.10 शब्दावली

13.11 प्रश्नावली

13.11 उपयोगी पुस्तकें

******0000******

13.0 उध्देश्य :–

प्रस्तुत इकाई बुद्धि विकल्प एवं निर्णयों के प्रकार के अंतर्गत बुद्धि विकल्प को परिभाषित करते हुए इनकी विशेषताओं एवं प्रकारों की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गयी है। इसी क्रम में निर्णय को परिभाषित करते हुए निर्णय के प्रकारों का भी वर्णन किया गया है। अन्त में बुद्धि – विकल्पों की अवधारणा के विरुध्द विचारकों द्वारा उठायी गयी आपत्तियों को दर्ज करते हुए निष्कर्ष निगमित किया गया है।

13.1 प्रस्तावना–

जानना या अवधारणा करना या परामर्श देना निर्णय देना है। निर्णय करना बुद्धि का व्यापार है। काण्ट बुध्दि को सम्प्रत्ययों का संकाय कहते हैं जो अस्त–व्यस्त एवं अनियमित संवेदनों को व्यवस्थित बुद्धि को देकर सम्प्रत्ययों को नियमित करने का कार्य करती है। बुद्धि के ज्ञान के विषय प्रत्यक्ष अनुभूति के विषय हैं। जब बुद्धि किसी विषय के सम्बन्ध में निर्णय या परामर्श देती है तो उसके मूल में बुद्धि की कोटियाँ

निहित होती हैं । इन कोटियों को बुद्धि–विकल्प भी कहते हैं। ये बुद्धि –विकल्प अनुभव निरपेक्ष हैं अर्थात् ये अनुभव के विषय नहीं होते हैं किन्तु फिर भी ये अनुभव के विषयों पर लागू होते हैं। बुद्धि – विकल्पों के अभाव में जगत से प्राप्त बाह्य वस्तुओं के संवेदन ज्ञान का स्वरूप प्राप्त नहीं कर पायेंगे क्योंकि ये समस्त ज्ञान की प्रागपेक्षा हैं। काण्ट द्वारा प्रस्तुत बुद्धि–विकल्पों का घनिष्ठ सम्बंध पारम्परिक तर्कशास्त्र के निर्णयों से है अर्थात् आकारिक तर्कशास्त्र में तर्कवाक्यों (निर्णयों) एवं बुद्धि के विकल्पों की संख्या समान है।

13.2 बुध्दि –विकल्प की परिभाषा –

काण्ट बुद्धि–विकल्पों को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि इन्द्रियानुभव द्वारा प्राप्त संवेदनों को नियमित, प्रबन्धित एवं समन्वित करने वाले संसाधनों को बुद्धि विकल्प (Categories) कहा जाता है। बुद्धि–विकल्प नित्य साँचों के समान हैं जो इन्द्रिय संवेदनों को ज्ञान का स्वरूप प्रदान करते हैं।

हमारा समस्त ज्ञान इन्द्रिय संवेदन एवं बुद्धि–विकल्पों के योग से निर्मित होता है। इस प्रक्रिया में इन्द्रिय संवेदन उपादान का कार्य करते हैं तथा बुद्धि विकल्प नित्य साँचे के समान हैं जिसमें उपादान सामग्री ढलकर ज्ञान का स्वरूप प्राप्त करती है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मिट्टी साँचे में ढलकर मूर्ति की स्वरूप प्राप्त करती है। इन्द्रिय संवेदन अस्त व्यस्त, विश्रृंखल व असम्बद्ध होते हैं। बुद्धि विकल्प इन्हें नियमित, व्यवस्थित व सम्बद्ध कर ज्ञान का रूप देते हैं। इसी सम्बंध में काण्ट की प्रसिद्ध उक्ति है इन्द्रिय संवेदनों के बिना बुद्धि विकल्प पंगु हैं तथा बुद्धि विकल्पों के बिना इन्द्रिय संवेदन अंधे हैं। हमारे ज्ञान में सत्यता एवं यथार्थता इंद्रिय संवेदनों से तथा अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता बुद्धि–विकल्पों से आती है। क्योंकि इंद्रिय संवेदन हमारे मन की रचना न होकर जगत के वास्तविक पदार्थों द्वारा उत्पन्न होते हैं इसीलिए हमारा ज्ञान इन्द्रिय संवेदनों तक ही सीमित होता है। इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में सत्य एवं यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। परमार्थ के इंद्रिय संवेदना प्राप्त नहीं होते हैं इसलिए परमार्थ के सम्बंध में हम सत्य एवं यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकते हैं।

हमारे ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता बुद्धि–विकल्पों से आती है। हमारी आत्मा सक्रिय रूप में इंद्रिय संवेदनों को ग्रहण कर बुद्धि में ज्ञान का स्वरूप देने हेतु प्रस्तुत करती है। बुद्धि अपने विकल्पों से संवेदनों को गुजारकर ज्ञान का स्वरूप प्रदान करती है। बुद्धि – विकल्प सार्वभौमिक एवं अनिवार्य रूप से सभी व्यक्तियों में समान रूप से पाये जाते हैं। जिससे सभी ज्ञान में निश्चितता, अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता समान रीति से पायी जाती है। परमार्थ के इंद्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते है। अतः इंद्रिय संवेदनों के अभाव में बुद्धि को व्यवस्थित एवं नियमित करने हेतु कोई सामग्री प्राप्त नहीं होती है। यही कारण है कि परमार्थ के विषय में अनिवार्य एवं सार्वभौम ज्ञान की प्राप्ति नहीं की जा सकती है।

इन्द्रिय संवेदनों को ज्ञान का स्वरूप प्राप्त करने के लिए बुद्धि – विकल्पों से गुजरना ही पड़ता है। बुद्धि विकल्पों इन्द्रिय संवेदन व देश–काल नामक दो मानसिक चश्मों के माध्यम से प्राप्त होते हैं। बुद्धि के नियम सार्वभौम, अनिवार्य एवं निश्चित होते हैं। ये नियम उत्पत्ति की दृष्टि से इन्द्रियानुभव –निरपेक्ष हैं किन्तु अभिव्यक्ति की दृष्टि से इन्द्रियानुभव सापेक्ष हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ज्ञान का आरम्भ अनुभव से प्राप्त इन्द्रिय संवेदनों से तथा पूर्णता बुद्धि द्वारा इन्द्रिय संवेदन को व्यवस्थित एवं नियमित करने से होती है। इस संदर्भ में काण्ट की प्रसिद्ध उक्ति है कि समस्त ज्ञान का आरम्भ अनुभव से होता है किन्तु इसकी प्राप्ति अनुभव से न होकर बुद्धि से होती है।

13.3 बुध्दि के कार्य –

बुद्धि इन्द्रिय संवेदनों के रूप में देश–काल के माध्यम से प्राप्त अस्त–व्यस्त, एवं अनियमित संवेदनों को बुद्धि–विकल्पों से गुजारकर व्यवस्थित एवं नियमित करने का कार्य करती है। बुद्धि किसी विषय–वस्तु

के संवेदनों को व्यवस्थित कर निर्णय या परामर्श के रूप में प्रस्तुत करती है। काण्ट बुद्धि के कार्य को स्पष्ट करने के लिए दृष्टान्त का सहारा लेते हैं कि बुद्धि का कार्य को चीटियों के समान एकत्रित करना नहीं है, न ही मकडियों के समान सामग्री को अपने अन्दर से उत्पन्न करके जालों के निर्माण करने के समान है अपितु बुद्धि मधुमक्खियों के समान कार्य करती है। जिस प्रकार मधुमक्खियाँ फूलों से रस को एकत्रित करती हैं और उसे संसाधित कर मधु का रूप देती हैं। ठीक उसी प्रकार बुद्धि इन्द्रिय संवेदनों से प्राप्त सामग्री को बुद्धि विकल्पों से नियमित एवं प्रबन्धित करके ज्ञान का स्वरूप देती हैं। यह ज्ञान किसी वस्तु के सम्बंध में निर्णय या परामर्श के रूप में जाना जाता है।

13.4 निर्णय की परिभाषा –

निर्णय बुद्धि के व्यापार हैं। यह बाह्य वस्तुओं का अप्रत्यक्ष ज्ञान हैं। जब बाहय वस्तुओं से प्राप्त संवेदन, इंद्रिय संवेदनों के रूप में देश–काल के द्वारा बुध्दि ग्रहण करती है तो उनके सम्बन्ध में ज्ञान को निर्णय या परामर्श के रूप में व्यक्त किया जाता है।. निर्णय के द्वारा बुद्धि ज्ञान की सामग्री को व्यवस्थित, नियमित एवं समन्वित करने का कार्य करती है। बुद्धि के सभी कार्य निर्णय के रूप में अभिव्यक्त होते है । इस प्रकार निर्णय को बाह्य वस्तुओं के संवेदनों की एकता या संकुचन की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

13.5 निर्णयों के प्रकार –

काण्ट ने पारम्परिक तर्कशास्त्र को निर्णयों के विभाजन का आधार मानते हुए निर्णयों को चार प्रकारों में विभाजित किया है तथा प्रत्येक प्रकार को तीन उप–प्रकारों में विभाजित किया गया है। जो इस प्रकार है–

(क) परिमाणवाचक(Quantitative) –(1) सामान्य व्यक्ति बोधक (Universal) जैसे–सभी मनुष्य मरणशील है।

(2) विशेष व्यक्ति बोधक (Particular) जैसे– कुछ मनुष्य मरणशील है।

(3) एकात्म बोधक (Singular) जैसे– राम मरणशील है।

परम्परागत तर्कशास्त्र में एकात्मक निर्णयों को सामान्य अन्तर्गत रखा जाता है। इन्हें स्वतंत्र नहीं माना जाता है। काण्ट इससे सहमत नहीं है। काण्ट के मतानुसार एकात्मक निर्णय स्वतंत्र होते हैं क्योंकि एकात्मक निर्णय में ज्ञान का विस्तार व्यक्ति विशेष तक सीमित होता है तथा सामान्य में ज्ञान का विस्तार सम्पूर्ण वर्ग तक विस्तारित होता है।

जैसे–राम मरणशील' है। यह एकात्मक निर्णय है, जो राम के मरणशील होने का ज्ञान प्रदान करता है। यहाँ मरणशील के गुण का विस्तार राम (व्यक्ति विशेष) तक सीमित है जबकि सभी मनुष्य मरणशील हैं। एक सामान्य निर्णय है। जो समूची मानव जाति के मरणशील होने का ज्ञान प्रदान करता है। यहाँ मरणशीलता के गुण का विस्तार समूची मानव जाति तक है। इस अन्तर के आलोक में काण्ट एकात्मक निर्णय एवं सामान्य निर्णय में भेद को स्वीकार करते हैं–

(ख) गुणवाचक (Qualitative) (4) भावात्मक निर्णय (Affirmative) जैसे– राम मरणशील है।

(5) अभावात्मक निर्णय (Negative) जैसे–राम मरणशील नहीं है।

(6) सीमित/अनन्त (Limited) जैसे– राम मरणशील नहीं है।

सामान्य तर्कशास्त्र के अंतर्गत सीमित/अनन्त तर्कवाक्यों को स्वीकारात्मक निर्णयों में शामिल किया जाता है। किन्तु काण्ट इस विचार से सहमत नहीं हैं। काण्ट के मतानुसार सीमित/अनन्त तर्कवाक्यों को स्वीकारात्मक निर्णयों में शामिल नहीं किया जा सकता है क्योंकि स्वीकारात्मक निर्णय सुनिश्चित रूप से उद्देश्य को प्रस्तुत करते हैं जबकि अनन्त या सीमित निर्णय उद्देश्य को एक विधेय से बहिष्कृत कर अनंत विधेय के अंतर्गत रखता है।

जैसे– राम मरणशील है से उद्देश्य को बहिष्कृत कर राम अ–मरणशील है (अनन्त) में रखना।

(ग) सम्बन्ध वाचक (Relational) – (7)निरपेक्ष (Categarical) जैसे– राम मनुष्य है।

(8) सापेक्ष (Hypothetical) जैसे – यदि राम मनुष्य है तो वह मरणशील है।

(9) वैकल्पिक (Disjemctive) जैसे– या तो राम दोषी है या निर्दोष।

सामान्य तर्कशास्त्र में सम्बन्ध सूचक प्रथम निर्णय निरपेक्ष के अन्तर्गत अन्य दोनों निर्णय सापेक्ष एवं वैकल्पिक को भी समाहित किया जाता है किन्तु काण्ट इससे सहमत नहीं हैं। काण्ट के मतानुसार सम्बन्ध सूचक तीनों निर्णय पृथक–पृथक है। प्रथम निर्णय निरपेक्ष का सम्बन्ध दो प्रत्ययोंश श्रामश एवं श्मनुष्यश से है, शद्वितीय निर्णय सापेक्ष का सम्ध दो शनिर्णयों के तार्किक क्रम से है जो शर्त के अधीन है, जिसमें से केवल एक ही निर्णय सत्य हो सकता है तथा तृतीय निर्णय वियोजक का सम्बंध दो निर्णयों के पारस्परिक विरोध से हैं, जिसमें एक निर्णय दूसरे निर्णय का विरोध करता है।

(घ) प्रकार वाचक (Model)– (10) संभावित (Problematic) जैसे– चाँद पर जीवन संभव है।

(11) प्रतिपन्न (Asserteric) जैसे– वह मरणशील है।

(12) आवश्यक (Apodiatic) जैसे– प्रत्येक कार्य का कारण होता है।

प्रकारता सम्बन्धी निर्णय अन्य तीनों निर्णयों–परिमाण वाचक,गुण वाचक एवं सम्बन्ध वाचक से भिन्न होते हैं क्योंकि जहाँ प्रथम शतीनों निर्णयों का सम्बन्ध निर्णयों की अन्तर्वस्तु से होता है, वहीं प्रकारता सम्बंधी निर्णय का सम्बन्ध निर्णयों की अन्तर्वस्तु से नही होता है बल्कि इसका सम्बन्ध निर्णय की अन्तर्वस्तु एवं विचार के सम्बन्ध से होता है। प्रकारता वाचक प्रथम निर्णय संभाव्य होता जिसमें विधि या निषेध दोनों संभव हैं।

जैसे– चाँद पर जीवन की संभव है,में चाँद पर जीवन की संभावना एवं असंभावना दोनों समाहित है। द्वितीय निर्णय प्रतिपन्न सदैव सत्य होते हैं क्योंकि ये सुनिश्चित आधारों से प्रतिपन्न होते हैं तथा तृतीय निर्णय स्वतः सिद्ध में अनिवार्यता होती है।

13.6 बुद्धि–विकल्पों के प्रकारः–

निर्णयों के समान ही बुद्धि–विकल्पों को चार आयामों के अन्तर्गत बारह प्रकारों में विभक्त किया गया है। ये बाराह निर्णयों से साम्यता प्रदर्शित करते हैं, जो इस प्रकार हैं–

(क) परिणात्मक – (1) पूर्णता (Unity)

(2) अनेकता (Plurality)

(3) एकता (Totality)

(ख) गुणात्मक – (4) सत्ता (Reality)

(5) अभाव (Negation)

(6) सीमा (Limitation)

(ग) सम्बन्धात्मक – (7) द्रव्य–गुण सम्बन्ध (Substance and Accident)

(8) कार्य–कारण सम्बन्ध (Cause and effect)

(9) अन्योन्य सम्बन्ध (Reciprocity between active and Passive)

(घ) प्रकारात्मक – (10) संभावना एवं असंभावना (Possibility and impossibility)

(11) भाव–अभाव (Existence and non-existence)

(12) अनिवार्यता–आगन्तुकता (Neccessity and contingency)

उपरोक्त बारह बुद्धि–विकल्पों में प्रथम छः बुद्धि विकल्पों स्थैतिक (Mathematical) हैं जो वस्तुओं के स्वभाव का वर्णन करते हैं तथा द्वितीय छः बुद्धि विकल्प गत्यात्मक (Dynamic) हैं, ये वस्तुओं के परस्पर सम्बंधों तथा बुद्धि एवं वस्तु के सम्बंधों को व्यक्त करते हैं।

उपरोक्त प्रत्येक आयाम में तीन बुद्धि–विकल्पों का समावेश किया गया है, जिसमें प्रत्येक आयाम का तीसरा बुद्धि–विकल्प प्रथम एवं द्वितीय बुद्धि विकल्प के समन्वय से निर्मित है। जैसे– एकता, अनेकता का समन्वय पूर्णता, अभाव एवं सत्ता की समय सीमा, द्रव्य–गुण सम्बंध एवं कार्य–कारण सम्बन्ध का समन्वय अन्योन्य सम्बन्ध तथा संभावना–असंभावना एवं भाव–अभाव का समन्वय अनिवार्यता–आगन्तुकता में है। इसमें तृतीय सम्बन्धात्मक आयाम को महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि दो वस्तुओं एवं विचारों के मध्य सम्बंध स्थापित करना बुद्धि का प्रमुख कार्य है। इसमें द्रव्य–गुण सम्बन्ध, कार्य–कारण सम्बंध एवं अन्योन्य सम्बन्ध सम्मिलित हैं।

13.7 बुद्धि–विकल्पों की विशेषताएं– बुद्धि विकल्पों के वर्णन एवं व्याख्या से इनकी निम्नलिखित विशेषताएँ उभरती हैं–

(1) बुद्धि–विकल्प इन्द्रिय– संवेदनों को नियमित एवं व्यवस्थित कर ज्ञान का स्वरूप प्रदान करते हैं। इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में बुद्धि–विकल्प निष्क्रिय हैं।

(2) बुद्धि–विकल्प स्थैतिक एवं गत्यात्मक दोनों हैं। स्थैतिक बुद्धि विकल्प वस्तुओं के स्वभाव तथा गत्यात्मक बुद्धि विकल्प वस्तुओं के सम्बन्ध को बतलाते हैं।

(3) प्रत्येक आयाम का तीसरा बुद्धि विकल्प पहले एवं दूसरे विकल्प का समन्वय है।

(4) बुद्धि–विकल्प ज्ञान को अनिवार्य एवं सार्वभौम स्वरूप प्रदान करते हैं।

(5) इन बारह बुद्धि–विकल्पों के अन्तर्गत समस्त मानवीय ज्ञान समाहित है। इससे पृथक एवं भिन्न कुछ भी नहीं है।

(6) बुद्धि विकल्पों के चार आयामों में परिमाण से अनुवाद, गुण से शून्य, सम्बध से संयोग एवं प्रकार से चमत्कार का खण्डन होता है।

13.8 बुद्धि – विकल्प की अवधारणा का मूल्यांकन– काण्ट की बुद्धि–विकल्प की अवधारणा के सम्बन्ध में विचारको ने आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैश, जो इस प्रकार हैं–

(1) काण्ट ने बुद्धि – विकल्पों को अनुभव निरपेक्ष माना है तथा इन्द्रिय संवेदनों को अनुभव सापेक्ष इस प्रकार दोनों की प्रकृति एक–दूसरे से मूलतः भिन्न है। ऐसी स्थिति में बुद्धि विकल्प इन्द्रिय संवेदनों को नियमित एवं व्यवस्थित कर ज्ञान का स्वरूप कैसे दे सकते हैं?

हालाँकि काण्ट इस समस्या के प्रति सचेत थे और उन्होने इन्द्रिय संवेदनों एवं बुध्दि विकल्पों के मध्य काल को मध्यस्थ के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार काल शुद्ध संवेदन, अनिवार्य एवं सार्वभौम होने के कारण बाह्य जगत एवं मानसिक जगत दोनों पर प्रभावी है। सभी मानवीय अनुभूतियाँ काल के सार्वभौम प्रत्यक्ष के द्वारा ही अनुभूत होती हैं तथा ज्ञान के रूप में इन्द्रिय संवेदनों को व्यवस्थित कर नियमित करने में भी काल की महत्वपूर्ण भूमिका है।

(2) काण्ट ने बुद्धि – विकल्पों के अन्तर्गत समाहित कार्य–कारण सम्वन्ध को वस्तु जगत का सम्बंध माना है। उनका मानना है कि कार्य– कारण की सीमा जगत की सीमा है। यह जागतिक वस्तुओं या व्यवहार पर ही प्रभावी होता है। किन्तु हयूम का मत इससे भिन्न है। ह्यूम का मानना है कि कार्य–कारण वस्तु जगत का सम्बन्ध न होकर विज्ञानों का सम्बंध है। हयूम कहते हैं कि कार्य–कारण के इन्द्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं। अतः इसे जागतिक वस्तुओं पर अनिवार्यतः प्रभावी नहीं किया जा सकता है।

– यद्यपि काण्ट इस आक्षेप के प्रत्युत्तर में कहते है कि बुद्धि विकल्प यदि इन्द्रिय संवेदनां को नियमित एवं व्यवस्थित न करें तो इन्द्रिय संवेदन ज्ञान का रूप नहीं ले सकते हैं अर्थात बुद्धि विकल्पों के अभाव में बाह्य जगत अनुभव का भी विषय नहीं हो सकता है। अतः न केवल ज्ञान के लिए अपितु जागतिक विषयों के अनुभव के लिए भी बुद्धि–विकल्प अपरिहार्य हैं। इस प्रकार काण्ट विषयता के आधार पर अतीन्द्रिय बुध्दि विकल्पों की स्थापना करते हैं तथा हयूम के अनुभववाद एव संदेहवाद का भी निराकरण करते हैं।

(3) काण्ट का मानना है कि बुद्धि–विकल्प विशुद्ध आत्मतत्त्व की शक्ति से इन्द्रिय संवेदनों को व्यवस्थित एवं नियमित कर ज्ञान का स्वरूप देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ज्ञान के लिए इंद्रिय संवेदन अनिवार्य हैं अर्थात् इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में बुद्धि विकल्प निष्क्रिय हैं। इन्द्रिय संवेदन केवल जागतिक वस्तुओं के प्राप्त होते हैं, परमार्थ के नहीं । अतः ज्ञान केवल व्यवहार का प्राप्त होगा, परमार्थ का नहीं। इस प्रकार काण्ट का सिद्धांत परमार्थ के सम्बन्ध में अज्ञेयवाद (Agnosticism) की स्थापना करता है। इसके साथ ही कुछ विचारकों का मानना है कि यदि परमार्थ अज्ञेय है तो परमार्थ के विषय में यह भी नहीं जाना जा सकता है कि परमार्थ अज्ञेय है क्योंकि में बुद्धि – विकल्पों की अनिवार्य भूमिका है और परमार्थ तक बुद्धि –विकल्पों की गति नहीं है। अतः परमार्थ के विषय में बुद्धि विकल्प यह ज्ञान देने में भी असमर्थ हैं कि परमार्थ अज्ञेय हैं। परमार्थ को अज्ञेय कहना बुद्धि विकल्प की सीमा का अतिक्रमण है और यदि परमार्थ को अज्ञेय कहा जायेगा तो यह परमार्थ को ज्ञान की सीमा में ला देगा।

यद्यपि काण्ट यहाँ कहते हैं कि मानवीय ज्ञान दो रूपों– विधि एवं निषेध के रूप में होता है। विधि रूप ज्ञान प्रत्यक्ष पर आधारित होता है और सदैव सत्य होता है जबकि निषेध रूप ज्ञान विधान की सदैव उपेक्षा करता है। यह सर्वथा सत्य या सर्वथा अज्ञान रूप न होकर ज्ञान की सीमा है अर्थात् यहाँ आकर ज्ञान की सीमा समाप्त हो जाती है और ज्ञान को अपनी सीमा का ज्ञान होने में कोई अन्तर्विरोध नहीं होता है। काण्ट का मत है कि परमार्थ की विधि रूप प्राप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह प्रत्यक्ष का विषय नहीं है किंतु निषेध रूप ज्ञान संभव है क्योंकि यह परमार्थ की होकर ज्ञान की सीमा का बोध कराता है।

(4) काण्ट का मत है कि इंद्रिय संवेदन ही बुद्धि विकल्पों में ढ़लकर ज्ञान का रूप लेते हैं। ऐसे में कुछ विचारक उन पर दृष्टि– सृष्टिवादी एवं अहंमात्रवादी होने का आरोप लगाते हैं।

काण्ट इस आरोप के बचाव में कहते हैं कि इंद्रिय संवेदन बुद्धि–विकल्पों के साँचों से ज्ञान की स्वरूप अवश्य प्राप्त करते हैं किन्तु बुद्धि विकल्पों को शक्ति विशुद्ध आत्म तत्त्व से प्राप्त होती है। विशुद्ध आत्म तत्त्व समस्त मानवीय ज्ञान एवं अनुभव का एकमात्र अधिष्ठान है और इसी से विभिन्न जीवों को शक्ति प्राप्त होती है। अतः यह सार्वभौम तत्त्व है जो सभी जीवों को शक्ति प्रदान करता है। जिससे विभिन्न जीवों का व्यावहारिक जगत समान होता है।

13.9 निष्कर्ष– काण्ट बुद्धि विकल्प की अवधारणा के विरुद्ध उठायी गयी आपत्तियों का समुचित निराकरण करने का प्रयास करते हैं, जिसमें वे आंशिक रूप से सफल होते हैं। जैसे काण्ट विशुध्द आत्मतत्त्व को स्वीकार कर दृष्टि–सृष्टिवाद एवं अहंमात्रवाद के आरोप से बच जाते हैं, किन्तु परमार्थ को अज्ञेय मानने के कारण अज्ञेयवाद के आरोप से बच नहीं पाते हैं। यह दर्शन का कमजोर पक्ष है किन्तु इससे काण्ट के सिध्दांत की महत्व कम नहीं होता है।

13.10 शब्दावली

(1) अज्ञेयवाद – ज्ञान प्राप्ति की संभावना को नकारने वाला सिध्दांत।

(2) अहंमात्रवाद – मैं और मेरा ज्ञान अर्थात् ज्ञान को आत्मनिष्ठ मानने वाला सिद्धांत।

13.11 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्नः–

(1) बुध्दि विकल्प को परिभाषित करें।

(2) निर्णय किसे कहते हैं?

(3) बुध्दि विकल्पों की विशेषताएँ बतायें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

(1)बुध्दि विकल्पों को परिभाषित करते हुए इसके प्रकार एवं इसकी आलोचनाओं का मूल्यांकन करें।

(2) निर्णय किसे कहते हैं, इसके प्रकारों की व्याख्या करें।

13.11 उपयोगी पुस्तकें

(1) क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन – इमैनुअल काण्ट

(2) काण्ट का दर्शन – संगम लाल पाण्डेय

----------0000----------

MAPH 113

खण्ड – 4

इकाई–14 विज्ञानवाद का खण्डन

संरचना :–

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 विज्ञानवाद का सामान्य अर्थ

14.3 डेकार्ट एवं बर्कले का विज्ञानवाद

14.4 काण्ट की विज्ञान सम्बन्धी अवधारणा

14.5 डेकार्ट के विज्ञानवाद का खण्डन

14.6 बर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन

14.7 ज्ञान के सम्बन्ध में काण्ट का दृष्टिकोण

14.8 वस्तुवाद के साथ विज्ञानवाद की स्वीकारोक्ति क्यों ?

14.9 निष्कर्ष

14.10 शब्दावली

14.11 प्रश्नावली

14.12 संदर्भित पुस्तकें

.....00000.....

14.0 उद्देश्य :– प्रस्तुत इकाई विज्ञानवाद का खण्डन के अंतर्गत काण्ट के सन्दर्भ में विज्ञानवाद की पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए विज्ञानवाद के सामान्य अर्थ का उल्लेख किया गया है। देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवाद मत को स्पष्ट करते हुए काण्ट के विज्ञानवादी मत को दर्शाया गया है। काण्ट द्वारा देकार्त एवं वर्कले के विज्ञानवादी मतों का खण्डन प्रस्तुत करते हुए ज्ञान के सम्बन्ध में काण्ट के विचारों को व्यक्त किया गया है। अन्त में विज्ञानवाद के प्रति काण्ट के आकर्षण के कारणों की व्यक्त करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

14.1 प्रस्तावना – 'विज्ञानवाद का खण्डन' काण्ट की कृति 'क्रिटिक ऑव प्योर रीजन' के द्वितीय संस्करण में प्राप्त होता है। काण्ट अपने दार्शनिक चिंतन के प्रारम्भिक चरण में बुद्धिवादी विचारधारा के दार्शनिक लाइबनीज एवं वुल्फ से प्रभावित था। बुद्धिवाद से प्रभावित होने के कारण जड़ वस्तुओं और जड़ एवं चेतन के मध्य सम्बन्ध के प्रति उसका दृष्टिकोण बुद्धिवादी मान्यताओं के अनुरूप था। काण्ट के बुद्धिवादी होने के प्रमाण के रुप में उसकी कृति क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के प्रथम संस्करण को देखा जा सकता है, जिसमें काण्ट कहते हैं कि बुद्धि के सिद्धांत बाह्य एवं आंतरिक अनुभूतियों पर समान रूप से प्रभावी होते हैं तथा

बाह्य एवं आंतरिक दोनों अनुभव एक–दूसरे के समानान्तर हैं। क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के द्वितीय संस्करण मैं काण्ट अपने मत में बदलाव करते हैं। वह कहते हैं कि बाह्य अनुभूति आंतरिक अनुभूति के समानान्तर न होकर उसकी पूर्ववर्ती होती है क्योंकि आंतरिक अनुभूति बाह्य अनुभूति पर निर्भर करती है।

काण्ट के विचारों में आये परिवर्तन के मूल में दो कारण निहित हैं, जो इस प्रकार हैं –

(1) क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के दोनों संस्करणों के मध्य आये समयान्तराल में काण्ट ने इस समस्या पर विधिवत चिंतन किया तथा अपने लेख 'रुडीमेंटस ऑव फिजिक्स' में दिखाया कि भौतिक विज्ञान एवं मनोविज्ञान दो प्रकार के विज्ञान हैं। भौतिक विज्ञान के सम्बंध में द्रव्य के सम्प्रत्यय का उपयोग प्राप्त होता है। यह द्रव्य बाह्य पदार्थों में स्थायी रूप से पाया जाता है। मनोविज्ञान के सम्बंध में द्रव्य का प्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि आन्तरिक अनुभूतियों के मूल में द्रव्य जैसी कोई स्थायी सत्ता निहित नहीं होती है। आन्तरिक अनुभूतियों का मूल आत्मा है, जो द्रव्य नहीं है। इस विश्लेषण के आधार पर निश्चिततापूर्वक कहा जा सकता है कि बाह्य पदार्थों की अनुभूतियाँ निश्चित ही आन्तरिक अनुभूतियों की अपेक्षा ठोस आधार पर स्थित है।

(2) क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के प्रथम संस्करण के सम्बंधों में कुछ भ्रातियाँ भी विद्यमान थीं, जिसका निराकरण आवश्यक था। साथ ही प्रथम संस्करण के आलोक में काण्ट पर बर्कले वादी होने का आरोप भी लगाया गया था। इसलिए काण्ट को अपनी दार्शनिक स्थिति स्पष्ट करना आवश्यक हो गया था।

आन्तरिक अनुभूति एवं बाह्य अनुभूति के सम्बंध में काण्ट के विचारों में आया बदलाव आमूल परिवर्तन नहीं था अपितु 'क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन' के प्रथम संस्करण में उसके दार्शनिक चिंतन के विषय में कुछ बातें अस्पष्ट या अकथित रह गयीं थीं, इसे उन्हें ही स्पष्ट करने के क्रम में देखना चाहिए। साथ ही यह क्रिटिक के प्रथम संस्करण के विषय में उठायी गयी समस्याओं का भी समाधान था।

14.2 विज्ञानवाद का सामान्य अर्थ–

विज्ञानवाद ज्ञान सम्बधी दार्शनिक सिद्धांत है। परम्परागत विज्ञानवाद के अनुसार ज्ञाता एवं ज्ञेय में ऐसा सम्बंध है कि ज्ञाता से स्वतन्त्र रहने पर ज्ञेय (बाह्य वस्तु) का अस्तित्व कायम नहीं रह सकता है अर्थात् वाहय वस्तुएँ अपने अस्तित्व के लिए ज्ञाता पर निर्भर हैं। ज्ञाता से सम्बन्ध रखना वाहय वस्तुओं के लिए अनिवार्य है क्योंकि उसी सम्बन्ध पर बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व निर्भर है। ज्ञाता – ज्ञेय सम्बन्ध के अभाव में वाहय वस्तुओं की कल्पना संभव नहीं है। विज्ञानवाद मानता है कि ज्ञान परमार्थ (Ultimate) है। हम जो कुछ भी कहते हैं, वह ज्ञान की परिधि में होता है, ज्ञान की परिधि को पार कर पाना संभव नहीं है। इसके अनुसार कुछ भी अज्ञेय एवं अज्ञात नहीं है। मानवीय बुद्धि की सहायता से सब कुछ जाना जा सकता है। मानवीय बुद्धि के ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति असीमित है।

14.3 देकार्त एवं बर्कले का सारवाद –

बुद्धिवादी विचारक देकार्त संशय पद्धदति का प्रयोग करके इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि केवल एक ही कथन को असंदिग्ध रूप से सत्य माना जा सकता है, वह है 'मैं हूँ'। देकार्त कहते हैं कि हमें, प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक रूप से केवल आत्म तत्त्व की ही अनुभूति होती है। देकार्त कहते है कि 'मैं सोचता हूँ, अतः मैं हूँ' (Cogite Ergo Sum)। चूँकि सोचना एक चेतन क्रिया है जिसके लिए चेतन कर्ता का होना अनिवार्य है। वह चेतन की आत्म तत्त्व (मैं) है। आत्म तत्त्व की सत्ता के अतिरिक्त अन्य किसी सत्ता के विषय में हमें प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त नहीं होती है। इसीलिए उनके सम्बंध में प्रत्यक्ष अनुभूति के आधार पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

अनुभववादी विचारक बर्कले का मत है कि 'सत्ता दृश्यता है' अर्थात सत्ता अनुभवमूलक है। सत्ता उसी की है जिसका अनुभव होता है, और अनुभव केवल विज्ञानों का होता है इसीलिए सत्ता केवल विज्ञानों की है, वाह्य वस्तुओं की नहीं। समस्त वाह्य सत्ताएँ देश में स्थित हैं और देश की सत्ता असंभाव्य है इसलिए वाह्य वस्तुएँ मात्र कल्पना का विषय हैं। बर्कले के अनुसार देश वस्तुओं का गुण है और वस्तुएँ मन के विज्ञान हैं इसलिए देश में प्रत्यक्षीकृत सत्ताएँ भ्रान्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।

देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवाद में एक बात पर दोनों की सहमति है कि प्रत्यक्षतः हमें अपने ही विज्ञानों की अनुभूति प्राप्त होती है। गहन विश्लेषण करने पर यहाँ भी दोनों में मतवैविध्य उभर आता है। जहाँ बर्कले का मत है कि बाह्य पदार्थ की प्रतीति वास्तव में हमारे आन्तरिक विज्ञानों की प्रतीति है क्योंकि मन के विज्ञान से पृथक अन्य किसी पदार्थ की सत्ता नहीं है। वहीं देकार्त का मत है कि बाह्य पदार्थ की सत्ता संदिग्ध है।

14.4 काण्ट की विज्ञान सम्बन्धी अवधारणा –

काण्ट अपने विज्ञानवाद के माध्यम से देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन करना चाहते हैं तथा अपने विज्ञानवाद के सिद्धांत की अन्य विज्ञानवादी सिद्धान्तो सें पृथकता सुनिश्चित करना चाहते है। विज्ञानवाद के सन्दर्भ में काण्ट का सामान्य विचार है कि इलियाटिक सम्प्रदाय से लेकार बर्कले तक सभी ज्ञात विज्ञानवादियों की यह धारणा रही है कि जो कुछ इन्द्रियों के द्वारा ज्ञात होता है, वह भ्रामक है तथा सत्य ज्ञान की प्राप्ति केवल बुध्दि के सम्प्रत्ययों से की जा सकती है। काण्ट के विज्ञानवाद के अनुसार कोरी बुध्दि के सिध्दान्तों से उत्पन्न होने वाला ज्ञान भ्रान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, सत्य ज्ञान की प्राप्ति केवल अनुभव से की जा सकती है।

इलियाटिक सम्प्रदाय से बर्कले तक के विज्ञानवाद को काण्ट भौतिक विज्ञानवाद कहते हैं, जिसके अनुसार वाहय जगत में पदार्थों की स्थिति संदिग्ध, मिथ्या एवं असंभाव्य है। उसके संदर्भ में स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है। देकार्त के विज्ञानवाद को काण्ट संभाव्य या संदेहवादी विज्ञानवाद कहते हैं जबकि बर्कले के विज्ञानवाद को रहस्यवादी विज्ञानवाद कहते हैं। बर्कले एवं देकार्त दोनों के विज्ञानवाद की काण्ट भौतिक विज्ञानवाद के अन्तर्गत रखते हैं।

देकार्त एवं बर्कले के मतों का सम्यक अध्ययन करने के उपरान्त काण्ट स्थापित करते हैं कि–

(1) हमें वस्तुओं का अनुभव या प्रत्यक्ष होता है। वस्तुओं का यह प्रत्यक्ष वस्तुओं की कल्पना नहीं है।

(2) आंतरिक अनुभूति, जिसे देकार्त असंदिग्ध मानता है, वह बाह्य पदार्थ की अनुभूति को पूर्व स्वीकार करती है। पदार्थ चेतना, वाहय चेतना का अनिवार्य निहितार्थ है।

काण्ट की उपरोक्त स्थापनाओं के मूल में दो आधार हैं– (1) मैं जिस रूप में अपनी सत्ता को जानता हूँ, वह काल के अन्तर्गत निर्धारित होती है। (2) काल के अन्तर्गत समस्त निर्धारण प्रत्यक्ष के अन्तर्गत किसी स्थायी सत्ता की अपेक्षा रखता है।

14.5 देकार्त के विज्ञानवाद का खण्डन –

प्रथम आधार जिसमें काण्ट कहते हैं कि मैं जिस रूप में अपनी सत्ता को जानता हूँ, वह काल के अन्तर्गत निर्धारित होती है। इसके द्वारा काण्ट आत्म–चेतना के स्वरूप का निर्धारण करते हैं। वे कहते हैं कि शुद्ध चेतना या चेतना की अनुभवातीत एकता हमारे समस्त अनुभवों का अनिवार्य सहवर्ती एवं प्रागनुभविक तत्त्व है, जिसका स्वरूप आकारिक या वौद्धिक होता है। किन्तु आत्म चेतना या इंद्रियानुभविक

चेतना का स्वरूप इससे भिन्न होता है। आत्म चेतना मेरी सत्ता का अनुभव है इसलिए इसके लिए भी अन्य ज्ञानों की भाँति संवेदनों की आवश्यकता होती है। अतः एक ज्ञाता के रूप में मुझे स्वय की सत्ता का ज्ञान केवल काल के अन्तर्गत ही हो सकता है और काल के अन्तर्गत समस्त ज्ञान किसी देशगत स्थायी तत्त्व के संदर्भ में ही संभव है। यही बुद्धि के सिद्धान्तों के अन्तर्गत काण्ट अनुभवों के प्रथम सादृश्य में स्थापित करते हैं, जिसकी चर्चा पूर्व अध्याय में की जा चुकी है। इससे यह सिद्ध होता है कि आन्तरिक अनुभूति के लिए बाह्य अनुभूति का होना आवश्यक है। बाह्य अनुभूति के अभाव में आन्तरिक अनुभूति संभव नहीं है। आन्तरिक अनुभूति प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष है, जो बाह्य की अनुभूति पर आधारित है। इससे देकार्त के मत आन्तरिक अनुभूतियां प्रत्यक्ष एवं बाह्य अनुभूतियाँ कल्पना है का खण्डन होता है।

14.6 बर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन –

बर्कले के विज्ञानवाद की आधारभूत स्थापना सत्ता अनुभवमूलक है अर्थात् सत्ता उसी की है जिसका प्रत्यक्ष होता है, जिसका प्रत्यक्ष नहीं होता है उसकी सत्ता नहीं है से असहमति व्यक्त करते हुए काण्ट कहते हैं कि वस्तुएँ देश में स्थित स्थायी तत्त्व हैं। यही हमारे आत्म ज्ञान के माध्यम हैं। ये मन की रचना न होकर वस्तुनिष्ठ सत्ताएं हैं। यदि पदार्थ हमारे मन की रचना होते तो इसकी वस्तुगत स्थायी पृष्ठभूमि न होती। ऐसी स्थिति में विज्ञानों का प्रवाह, निरंतर परिवर्तन किसी बाह्य वस्तु का निर्देश न करके हमारी ही मनःस्थिति का निर्देश करते, जो कि स्वतः परिवर्तनशील है। ऐसी स्थिति में विज्ञानों के मध्य कोई सम्बन्ध या विज्ञानों की एकता स्थापित कर पाना संभव न होता और विज्ञानों के मध्य किसी सम्बंध या एकता के अभाव में अनुभव भी संभाव न हो पाता। अतः अनुभव को संभव बनाने के लिए यह आवश्यक है कि देश में किसी स्थायी द्रव्य की सत्ता की स्वीकार किया जाये जो हमारे द्वारा प्रत्यक्षीकृत पदार्थों के विज्ञानों का केन्द्रबिन्दु हो। इसके साथ ही काण्ट स्वयं में वस्तु के सिद्धांत का भी प्रतिपादन करते हैं, जिसके अनुसार वस्तु की वस्तुनिष्ठ सत्ता है। इस प्रकार काण्ट बर्कले के आत्मनिष्ठ विज्ञानवाद का खण्डन करते हैं।

14.7 ज्ञान सम्बन्ध में काण्ट का दृष्टिकोण–

देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन करने के उपरान्त काण्ट इंद्रियानुभविक ज्ञान के सम्बंध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। इन्द्रियानुभविक ज्ञान के सम्बंध में काण्ट का दृष्टिकोण वस्तुवादी है। वस्तुवाद के अनुसार दृश्य जगत की वस्तुएँ यथारूप में सत्य हैं। प्रत्यक्षीकृत वस्तुएँ देशगत स्थित स्वतंत्र वस्तुएँ हैं ये मन की रचना नहीं हैं। ये शुद्ध बौद्धिक वस्तुएँ हैं जो अपने आप में आत्म ज्ञान या आन्तरिक अनुभूति उत्पन्न करने में सक्षम हैं। इसका अस्तित्व ज्ञाता के अस्तित्व पर निर्भर नहीं करता है। ज्ञाता के अभाव में भी यह अस्तित्ववान रहेगी। समस्त मानवीय अनुभूतियाँ देशगत स्थायी तत्त्व की अपेक्षा रखती हैं। यद्यपि काण्ट वस्तुवाद को स्वीकार करते हैं तथापि वे अपने मूल सिद्धांत ज्ञात पदार्थ अनिवार्यतः मानव मन सापेक्ष है तथा उससे नियंत्रित है का परित्याग नहीं करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि काण्ट उस अर्थ में वस्तुवादी नहीं है जिस अर्थ में लॉक जैसे विचारक वस्तुवाद को स्वीकार करते हैं। काण्ट सामान्य अर्थ में विज्ञानवादी भी नहीं है, जिस अर्थ में प्लेटो देकार्त एवं बर्कले जैसे विचारक विज्ञानवाद को स्वीकार करते हैं। वे प्लेटो के विज्ञानवाद से स्वयं को पृथक करते हैं और कहते हैं कि प्लेटो रहस्यात्मक विज्ञानवादी हैं। काण्ट इंद्रियानुभविक रूप से वस्तुवादी एवं प्रागनुभविक रूप से विज्ञानवादी हैं काण्ट सामान्य रुप से वस्तुवादी नहीं हैं, क्योंकि उनकी मान्यता है कि देश–काल सहित समस्त जगत प्रपंच आभास हैं। किन्तु वे विज्ञानवादी मान्यता आभास भ्रान्तियाँ हैं को स्वीकार नहीं करते हैं।

काण्ट के कुछ आलोचक काण्ट की तुलना बर्कले से करते हैं क्योंकि वे काण्ट द्वारा प्रस्तुत अनुभवातीत शब्द के सम्यक् अर्थ को ग्रहण नहीं कर पाते हैं। इसके समाधान हेतु काण्ट ने अनुभवावीत शब्द के स्थान पर आकारिक या आलोचनात्मक शब्द के प्रयोग को प्राथमिकता दी है। काण्ट अपनी

दार्शनिक स्थिति एवं अनुभवावीत शब्द को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यह शब्द अनुभव से पूर्णतः विच्छेद का सूचक नहीं है अपितु अनुभवातीत से तात्पर्य उन शर्तों से है जो अनुभव को संभव बनाती हैं।

14.8 वस्तुवाद के साथ विज्ञानवाद की स्वीकारोक्ति क्यों?–

काण्ट वस्तुवाद को दृढता से स्वीकार करने और देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन करने के उपरान्त भी विज्ञानवाद के प्रति अपने आकर्षण को समाप्त नहीं कर पाते हैं। वस्तुवाद के साथ विज्ञानवाद को स्वीकार करने का कारण ज्ञान की अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता की व्याख्या करना था। काण्ट यह भी भलीभाँति जानते थे कि इन्द्रियानुभव के माध्यम से ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता का समावेश नहीं किया जा सकता है। पदार्थों की ज्ञाता से सर्वथा स्वतंत्र सत्ता मान लेने से इस समस्या का समाधान संभव नही है। इस समस्या के समाधान हेतु वे पदार्थों की बुद्धि के अनुकूल स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है अर्थात् बुद्धि प्रकृति के असम्बध्द एवं क्षणिक संवेदनों को सम्बद्ध, व्यवस्थित और नियंत्रित रूप देकर प्राकृतिक नियमों सार्वभौमिकता एवं अनिवार्यता का समावेश करती है। बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है। काण्ट की इस धारणा से स्पष्ट होता है कि वाहय जगत वस्तुवादियों की धारणा का जगत नहीं है, वह आभास है। वे कहते हैं कि वाहय जगत को अपने आप में वास्तविक मान लेन पर उसके स्वरूप को समझने की प्रक्रिया में असाध्य विरोधाभास उत्पन्न हो जायेंगे, जिसे काण्ट विप्रतिषेध कहते हैं।

14.9 निष्कर्ष –

विज्ञान के प्रति काण्ट का दृष्टिकोण उनके दार्शनिक चिन्तन की परिपक्वता को प्रदर्शित करता है, जिसके अन्तर्गत वे जगत की वस्तुओं को भ्रामक एवं मन की रचना मानने वाले देकार्त एवं बर्कले के विचारों का खण्डन करते हैं और वस्तुओं की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करते है। काण्ट विज्ञानवाद को भी स्वीकार करते हैं ताकि ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता का समावेश किया जा सके। काण्ट का विज्ञानवाद प्लेटो, देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवाद से भिन्न मौलिक विचार है जिसमें बुद्धिवाद एवं अनुभववाद दोनों की अच्छी बातों का समावेश करने का प्रयास करते हैं।

14.10 शब्दावली

(1) ज्ञाता – ज्ञान प्राप्त करने वाला

(2) ज्ञेय – जिसके विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा रहा है।

14.11 प्रश्नावली

लघुउत्तरीय :–

(1) विज्ञानवाद को परिभाषित करें।

(2) काण्ट के विज्ञानवादी मत को प्रस्तुत करें।

(3) देकार्त के विज्ञानवादी विचार का वर्णन करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः–

(1)विज्ञानवाद के विचार को प्रस्तुत करते हुए देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवादी मतों का वर्णन करें।

(2)काण्ट के विज्ञानवाद का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा देकार्त एवं बर्कले के मतों का खण्डन प्रस्तुत करें।

14.12 उपयोगी पुस्तकें

(1) क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन –भाग 1 व 2 – इमैनुअल काण्ट

(2) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्रा

MAPH 113

खण्ड– 5

सिद्धान्तों की विश्लेषकी –

प्रस्तावना –

सिध्दान्तों की विश्लेश्की के अन्तर्गत काण्ट के आकारायण, बुध्दि के सिद्धातों एवं विज्ञानवाद के खण्डन को प्रस्तुत किया गया है। आकारायण अनुभवातीत तर्कशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों या आकारों के के द्वारा अन्तर्गत इन्द्रिय प्रत्यक्षों का सन्निवेश है। इसमें बुद्धि विकल्प सार्वभौमिक सामान्य जबकि इन्द्रिय प्रत्यक्ष विशेष होते हैं। आकारायण के द्वारा ही बुद्धि विकल्पों एवं इन्द्रिय प्रत्यक्षों के मध्य सम्बंध स्थापित किया गया है। बुद्धि विकल्प मानवीय बुद्धि के अनुभवातीत तत्त्व हैं जो देश–काल में प्राप्त इन्द्रिय संवेदनों को नियमित व्यवस्थित, प्रवन्धित एवं सम्बद्ध कर ज्ञान का स्वरूप प्रदान करते हैं। तर्क बुद्धि के सम्प्रत्यय प्रागनुभविक हैं। प्रागनुभविक होने के कारण निर्णयों में वस्तुगत यथार्थता का समावेश होता है। साथ ही बुध्दि विकल्पों में निहित प्रागनुभविकता के तत्त्व के कारण ही मानवीय अनुभव संभव हो पाता है। बुध्दि के सिध्दान्त बाह्य एवं आन्तरिक अनुभवों पर समान रूप से प्रभावी होते हैं। काण्ट देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवादी मतों का खण्डन करते हुए कहते हैं कि हमें वस्तुओं का प्रत्यक्ष होता है और वस्तु कल्पना न होकर वास्तविक हैं और आन्तरिक अनुभूति, बाह्य अनुभूति पर निर्भर करती है। यह विज्ञानवादी मान्यता की विरोधी स्थापना है।

.....000.....

खण्ड– 5

इकाई–15 आकारायण

संरचनाः–

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 आकारायण का अर्थ

15.3 अनुभवातीत आकार से तात्पर्य

15.4 अनुभवातीत आकार में काल की भूमिका

15.5 अनुभवातीत आकार का स्रोत

15.6 बुध्दि विकल्पों के आकार

15.7 आकारायण के विरुध्द आपत्तियाँ

15.8 निष्कर्ष

15.9 शब्दावली

15.10 प्रश्नावली

15.11 संदर्भित पुस्तकें

*****0000*******

15.0 उद्देश्य – प्रस्तुत इकाई 'आकारायण' में आकारायण या आकार–योजना के अर्थ को स्पष्ट करते हुए अनुभवातीत आकारों के तात्पर्य का सविस्तार व्याख्यायित किया गया है। तत्पश्चात अनुभवातीत आकार में काल की भूमिका को चिन्हित करते हुए इसके स्रोतों की चर्चा की गयी है। बुद्धि विकल्पों के आकारों को सारणी रूप में प्रस्तुत करते हुए समुचित विश्लेषण किया गया है। अन्ततः आकारायण के विरुद्ध उठायी गयी आलोचकों की आपत्तियों को दर्ज करते हुए निष्कर्ष निगमित करना है।

15.1 प्रस्तावना – काण्ट सामान्य तर्कशास्त्र एवं अनुभवातीत तर्कशास्त्र में भेद को स्वीकार करते हैं। सामान्य तर्कशास्त्र का सम्बंध ज्ञान के आकारिक नियमों से होता है। यह आकारिक नियमों को अधिक महत्व देता है, ये आकारिक नियम किसी विषय से सम्बंधित है, यह इसके विचार का विषय नहीं होता है। सामान्य तर्कशास्त्र विचार की विषयवस्तु से स्वयं को पृथक करके सामान्य एवं आकारिक नियमों तक स्वंय को सीमित करता है। सामान्य तर्कशास्त्र से भिन्न अनुभवावीत तर्कशास्त्र तर्कबुद्धि के शुद्ध सम्प्रत्ययों में निहित नियमों को व्यक्त करने के साथ ही उन स्थितियों को स्पष्ट करता है, जहाँ इन नियमों का प्रयोग होता है। यदि अनुभवातीत तर्कशास्त्र तर्कबुद्धि में निहित नियमों एवं प्रयोग की स्थितियों की स्पष्ट करने में विफल हो जाता है तो इस स्थिति में तर्कबुद्धि के प्रागनुभविक सम्प्रत्ययों की सदैव रिक्त माना जाता है और

इससे किसी वस्तु का बोध नहीं होता है। अनुभवातीत नियमों के अन्तर्गत काण्ट दो प्रकार से कार्यों को सम्पादित करते हैं–

(1) काण्ट अनुभवातीत सिद्धांतों की संवेद्य शर्तों को प्रस्तुत करते हैं, जिसके अंन्तर्गत शुद्ध सम्प्रत्ययों का प्रयोग संभव है। इन शर्तों को काण्ट आका (Schem) कहते हैं।

(2) काण्ट न संश्लेषणात्मक निर्णयों की व्याख्या करते हैं जो उपरोक्त शर्तों के अधीन तर्कबुद्धि के शुद्ध सम्प्रत्ययों के प्रयोग से उत्पन होते हैं।

15.2 आकारायण का अर्थ– आकारायण अनुभवातीत तर्कशास्त्र के सामान्य सिध्दान्तों या आकारों कें अन्तर्गत विशेष इन्द्रिय प्रत्यक्षों का सन्निवेश है। इसमें बुध्दि विकल्प सार्वभौमिक एवं सामान्य होते है,जबकि इन्द्रिय प्रत्यक्ष विशेष होते हैं। आकारायण के माध्यम से बुद्धि विकल्पों एवं इन्द्रिय प्रत्यक्षों के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह सामान्य के अतर्गत विशेषों का सन्निवेश है। आकारायण, जिसे आकर–योजना भी कहते हैं, ऐसे माध्यमों से ही संभव है जो सार्वभौम प्रत्ययों और विशिष्ट इन्द्रिय संवेदनों, दोनों से सम्बंधित है। बुद्धि विकल्प जब तक आकार योजना से युक्त नहीं होते हैं तब तक उन्हें विशुद्ध विकल्प (Pure Categories) कहा जाता है। काण्ट का मत है कि बुद्धि विकल्प काल के द्वारा ही आकार युक्त होते हैं। काल का आकार योजना से युक्त बुद्धि विकल्पों को आकार युक्त बुद्धि विकल्प (Schematired Categarie) कहा जाता है।

15.3 अनुभवातीत आकार से तात्पर्य – काण्ट के अनुसार तर्कबुद्धि के सम्प्रत्यय एवं जिन विषय– वस्तुओं पर इन सम्प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, के मध्य यदि दूरी है तो उस दूरी को समाप्त करने के लिए एक तृतीय तत्त्व की आवश्यकता पड़ती है। यह तृतीय तत्त्व तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों का सजातीय और तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों के प्रयोग वाली विषयवस्तु से समानता रखने वाला होना चाहिए अर्थात् इस तृतीय तत्त्व को वौद्धिक एवं संवेद्य दोनों होना चाहिए। तर्कबुद्धि के सम्प्रत्यय एवं तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों के प्रयोग वाली विषयवस्तु के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाने वाले तृतीय तत्त्व को ही अनुभवातीत आकार (Transcendertal Schem) कहते हैं।

देश –काल में प्राप्त इंद्रिय संवेदन तर्कबुद्धि के सम्प्रत्यायों से गुजरकर ज्ञान का स्वरूप प्राप्त करते हैं। सम्प्रत्ययों के द्वारा किसी वस्तु को जानने के लिए उस वस्तु का सम्प्रत्यय में अन्तर्भाव होना आवश्यक है। यह अन्तर्भाव तभी संभव है जब सम्प्रत्यय स्वयं वस्तु सजातीय हो अर्थात् सम्प्रत्यय में वही लक्षण हो जो वस्तु में निहित हैं। यदि सम्प्रत्यय एवं वस्तु सजातीय न होकर विजातीय होते हैं तो उस वस्तु का सम्प्रत्ययो में अन्तर्भाव नहीं हो पाता है और हम उस वस्तु के विषय में ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकते हैं । यही कठिनाई तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों के सम्बंध में उपस्थित होती है जो इन्द्रियानुभविक सम्प्रत्ययों के सम्बंध में उत्पन नहीं होती है। इसे एक दृष्टान्त के माध्यम से समझा जा सकता है। यथा–यह गाय है वाक्य में उपस्थित पशु गाय का अन्तर्भाव 'गाय' के सम्प्रत्यय में आसानी से किया जा सकता है क्योंकि गाय इन्द्रियानुभविक सम्प्रत्यय तथा प्रसंगतः वस्तु 'गाय' भी इन्द्रियानुभव में पाया जाता है। ऐसे में दोनों में इन्द्रियानुभविकता का तत्त्व समान रूप से पाया जाता है। गाय के सम्प्रत्यय में इन्द्रियानुभविक लक्षण जैसे– इसके चार पैर, पूँछ, इत्यादि पाये जाते हैं।

उपरोक्त स्थितियाँ तर्कबुद्धि की कोटियों के विषय में प्रभावी न होने से यह आसान नहीं है क्योंकि तर्कबुद्धि की कोटियों की इंद्रिय संवेदनों से समानता नहीं पायी जाती है। बुद्धि की कोटियाँ शुद्ध एवं प्रागनुभविक होती हैं, जिन्हें इन्द्रियानुभव से निगमित नहीं किया जा सकता है। इसे एक दृष्टान्त के माध्यम से समझना आसान होगा। यथा कारणता का सम्प्रत्यय तर्कबुद्धि का सम्प्रत्यय है, जिसे इन्द्रियानुभव से प्राप्त

नहीं किया जा सकता है किन्तु इस कारणता के सम्प्रत्यय का प्रयोग जिन घटनाओं पर किया जाता है, उन घटनाओं का सम्बन्ध इन्द्रियानुभव से होता है। इस प्रकार यहाँ तर्क बुद्धि के सम्प्रत्यय (कारणता) और जिन विषयों पर इसका प्रयोग किया जाता है, उनके बीच दूरी उत्पन्न हो जाती है। इस दूरी को भरने के लिए मध्यस्थ के रूप में तृतीय तत्त्व आवश्यक होता है, जो तर्कबुद्धि के सम्प्रत्यय का सजातीय एवं इन्द्रियानुभवों से भी समानता रखता हो। यह मध्यस्थ ही अनुभवातीत आकार है।

15.4 अनुभवातीत आकार में काल की भूमिका–

तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों एवं इसके प्रयोग के इन्द्रियानुभविक विषयों में अनुभवातीय आकार (मध्यस्थ) की भूमिका काल द्वारा निभायी जाती है। काल सभी आंतरिक बोधों की अनिवार्य शर्त है इसलिए इंद्रिय संवेदनों का काल के अन्तर्गत अनुभवातीत निर्धारण एक ऐसी शर्त है जो तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों और इन्द्रियानुभविक विषयों में सामान्य रूप से पाया जाता है। तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों में काल की समानता पायी जाती है क्योंकि काल भी तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों के समान प्रागनुभविक एवं सामान्य हैं जबकि इन्द्रियानुभविक विषयों से श्काल की समानता पायी जाती है क्योंकि काल इन्द्रियानुभविक विषयों की भाँति संवेद्य होता है और प्रत्येक संवेद्य विषय में यह पाया जाता है। इसलिए काल इन्द्रियानुभविक विषय को तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों के अन्तर्गत (अन्तर्भाव) रखे जाने की प्रक्रिया में मध्यस्थ की भूमिका का निर्वहन करता है। काल के अनुभवातीत निर्धारण के कारण ही बुद्धि के सम्प्रत्यय (कोटियाँ) इन्द्रियानुभविक विषयों के ऊपर प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

सम्प्रत्ययों के अनुभवातीत निगमन से हम जानते हैं कि इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में तर्क बुद्धि की कोटियाँ निरर्थक हो जाती है और इन्द्रिय संवेदन तर्क बुद्धि की कोटियों से गुजरकर ही बोध/ज्ञान की रूप प्राप्त करती है। अनुभवातीत आकार के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हो चुका है कि तर्क बुद्धि के सम्प्रत्ययों को इन्द्रिय-संवेदनों को व्यवस्थित कर बोधगम्य बनाने के साथ ही संवेदन (आंतरिक बोध) की कुछ शर्तों को भी प्रागनुभविक रूप में धारण करना चाहिए। यह आन्तरिक बोध काल के माध्यम से होता है इसलिए तर्कबुद्धि की कोटियों में काल की एकता भी शर्त के रूप में पायी जाती है यह काल सभी इन्द्रिय संवेदनों की आन्तरिक शर्त–सम्प्रत्ययों का आकार है। इस आकार के द्वारा तर्क बुद्धि की प्रक्रिया ही आकारायण है।

15.5 अनुभवातीत आकार का स्रोत–

काण्ट अनुभवातीत आकार का स्रोत कल्पना को मानते हैं किन्तु आकारों के साथ ही बिम्बों का स्रोत भी कल्पना है। इसलिए काण्ट आकार एवं बिम्ब में भेद करते हैं। काण्ट के अनुसार बिम्ब या चित्र व्यक्तिगत इन्द्रिय संवेदन या प्रत्यक्ष से उत्पन्न होते हैं। इसके लिए आकार आवश्यक है। वास्तव में आकार के माध्यम से ही किसी सम्प्रत्यय का बिम्ब खींचा जा सकता है। जबकि आकार कल्पना की संश्लेषणात्मक क्रिया द्वारा उत्पन होते हैं। आकार को उत्पन्न करने वाली संश्लेषणात्मक क्रिया का लक्ष्य केवल इन्द्रिय संवेदनों को निर्धारित कर एकता उत्पन्न करना होता है । उदाहरण स्वरूप माना कि हमारे पास सौ की संख्या का कोई बिम्ब नहीं है, किन्तु यदि हम सामान्य संख्या पर विचार करें तो वह संख्या कोई भी हो सकती है–एक, पाँच, दस या पचास इत्यादि। तो इन संख्याओं के द्वारा किसी भी संख्या को बिम्व रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। किन्तु संवेद्य सम्प्रत्ययों जैसे–त्रिभुज इत्यादि के सार्वभौमिक स्वरूप को विम्वों द्वारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता है। संवेद्य सम्प्रत्ययों के सार्वभौमिक स्वरूप का आधार उसका आकार होता है। त्रिभुज का आकार विचार रूप में अस्तित्ववान है, यह इन्द्रियानुभव में नहीं पाया जाता है। इन्द्रियानुभव में पाये जाने वाले त्रिभुज का बिम्ब, त्रिभुज के सम्प्रत्यय के लिए पर्याप्त नहीं होता है क्योंकि इन्द्रियानुभव में पाये जाने वाले त्रिभुज का बिम्ब त्रिभुज के किसी एक प्रकार का प्रतिनिधित्व करेगा। यथा समकोण

त्रिभुज, विषमकोण त्रिभुज, समवाहु त्रिभुज इत्यादि ? जबकि त्रिभुज का आकार एक ऐसा नियम है जिसके आधार पर हमारी कल्पना त्रिभुज की सामान्य पहचान कर सकती है।

उपरोक्त विश्लेषण के आलोक में कहा जा सकता है कि बिम्ब का कारण मानव की इन्द्रियानुभविक शक्ति है, जिसे पुनरोत्पादक कल्पना (Reproductive Imagination) कहा जाता है जबकि आकार का स्रोत प्रागनुभविक कल्पना (Transcendental Imagination) है। आकार, शुद्ध संश्लेषण एवं कल्पना की अनुभवातीत रचना हैं जिनके कारण ही बिम्बों की उत्पत्ति होती है। आकार को कभी बिम्ब द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

15.6 बुध्दि विकल्पों के आकार–

बुध्दि विकल्पों के आकार के सम्बन्ध में काण्ट की स्वीकारोक्ति है कि बुध्दि विकल्पों के आकारों का विवरण देना शुष्क एवं दुरुह कार्य है। बुध्दि विकल्पों के आकारों की प्रक्रिया रहस्यमय है, इसलिए इसें पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता है। बुध्दि विकल्पों को आकार युक्त बनाने का कार्य आकार योजनाओं द्वारा किया जाता है। आकार योजनाओं की संख्या आठ है। जिसे निम्नलिखित सारणी के माध्यम से समझा जा सकता है।

बुध्दि विकल्प आकार सिध्दान्त

(क) परिमाण – एकता

– अनेकता

– पूर्णता (1) संख्या–सभी संवेदनों में विस्तार युक्त परिमाण होता है।

(ख) गुण – वास्तविकता

– निषेध

– सीमा (2) मात्रा–जिस वास्तविक इन्द्रिय प्रत्यक्ष की संवेदना प्राप्त होती है उसमें मात्रा होती है।

(ग) सम्बन्ध – द्रव्य

–कार्य –कारण

–समुदाय़ (3) स्थायित्व

(4) काल में नियत अनुक्रम

(5) काल में सह–अस्तित्व –इन्द्रिय प्रत्यक्षों के सारे परिवर्तनों में द्रव्य स्थायी रहता है, उसके परिमाण में बृध्दि एवं कमी नहीं होती है।

सभी परिवर्तन कारणता नियम के अनुसार होते है।

देश–काल के अन्तर्गत सह अस्तित्व वाले द्रव्यों में या क्रिया–प्रतिक्रिया होती है।

(घ) प्रकारता – संभावना–असंभावना

– भाव–अभाव

– अनिवार्यता–औपाधिकता

(6) काल के साथ अनुकूलता

(7) किसी काल में होना या न होना

(8) जो अनुभव की सार्वभौम शर्तों द्वारा नियमित है,वह अनिवार्य है।जो संवेदनों की आकारिक शर्तों के अनुकूल है, वह संभव है।

जो इन्द्रिय संवेदनों से सम्बध्द है वह वास्तविक है।

जो अनुभव की सार्वभौम शर्तों द्वारा नियमित है,वह अनिवार्य है।

(1) प्रथम तीन बुद्धि–विकल्पों का सम्बन्ध परिमाण से है। ये बुद्धि विकल्प एकता, अनेकता एवं पूर्णता है। इसे सजातीय इकाईयों के संश्लेषण का प्रत्यय कहा जाता है क्योंकि सार्वभौमिक निर्णय में उद्देश्य एवं विधेय द्वारा निर्दिष्ट बुद्धि विकल्प सजातीय होते हैं। आकार युक्त बुद्धि विकल्पों को सजातीय इकाईयों के देश–काल के अतर्गत संश्लेषण की सम्प्रत्यय कहा जाता है। इसमें निहित आकार योजना संख्या (Number) है। अन्य शब्दों में इन्द्रियानुभविक प्रत्यक्षों को जानने के लिए देश–काल के अन्तर्गत सजातीय इकाईयों का संबलेषण आवश्यक है और संख्या के द्वारा परिमाण का शुद्ध बुद्धि विकल्प आकार पर प्रयुक्त न होकर इंद्रिय प्रत्यक्षों पर प्रयुक्त होता है।

(2) गुण सम्बन्धी तीन बुद्धि विकल्पों – वास्तविकता, निषेध एवं सीमा का आकार (Reality) है। प्रत्येक इन्द्रियानुभविक प्रत्यक्ष देश–काल के अंतर्गत किये गये संश्लेषण का परिणाम है। चूँकि इसका आकार वास्तविकता है, अतः इसमें विस्तार युक्त परिमाण होना चाहिए, जिसकी काल में क्रमिक रूप से गणना की जा सके, किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। वास्तविक होने के लिए उस इंद्रिय प्रत्यक्ष की अधिक मात्रा में सम्वेदना उत्पन होनी चाहिए। उदाहरणस्वरूप रंग के इन्द्रिय प्रत्यक्ष के माध्यम से इसे समझा जा सकता है। यदि किसी देश–काल में किसी रंग का इन्द्रिय संवेदन प्राप्त होता है तो वह तीव्र या क्षीण के रूप में हो सकता है। इंद्रिय संवेदनों के भाव–अभाव में यही भेद है। जहाँ इंद्रिय संवेदन का भाव होगा, वहाँ संवेदना की मात्रा में अन्तर अवश्य होगा। इसलिए देश–काल में प्रत्यक्ष का विषय होने वाली प्रत्येक इन्द्रियानुभाविक वस्तु का मात्रा से युक्त होना आवश्यक है। यही मात्रा उसकी वास्तविकता का प्रमाण है, मात्रा का अभाव वास्तविकता के अभाव का सूचक है।

(3) सम्बंध सूचक बुद्धि जैसे विकल्प द्रव्य–गुण की आकार योजना स्थायित्व (Permanance) है। अर्थात काल के प्रवाह में पड़े हुए इंद्रिय प्रत्यक्षों में द्रव्य स्थायी होता है। उसके परिमाण में वृद्धि या कमी नहीं होती है।

(4) कार्य–कारण सम्बन्ध की आकार योजना नियत क्रम (Regular Succession) है। जिसमें इंद्रिय प्रत्यक्ष एक नियम के अनुसार क्रम में उपस्थित होते हैं। प्रकृति में घटित होने वाले परिवर्तन कार्य– कारण नियम के अधीन होते हैं।

(5) समुदाय या परस्परता की आकार योजना सहअस्तित्व (co-existence) है। जिसमें एक सामान्य नियम के अनुसार दो द्रव्यों की स्थितियों सहअस्तित्व में रहती हैं।

(6) प्रकारता सूचक बुद्धि विकल्प संभावना असंभावना की आकार योजना सामान्य काल की अपेक्षाओं की अनुकूलता है अर्थात जो अनुभव की आकार युक्त शर्तों के अनुकूल है, वह संभव है।

(7) सत्ता–असत्ता (भाव–अभाव) की आकार योजना निश्चित काल में अस्तित्ववान होना है अर्थात जो संवेदनों से सम्बद्ध है, वह निश्चित काल में विद्यमान है।

(8) बुद्धि विकल्प अनिवार्यता – औपाधिकता की आकार योजना किसी विषय का सभी कालों में अस्तित्ववान होना या नित्य होना है। जो अनुभव की सार्वभौम शर्तों से नियमित है, वह अनिवार्य है।

उपरोक्त विवेचना के आलोक में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक बुध्दि विकल्प की आकार योजना का सम्बन्ध काल से है। यथा मात्रा की आकार योजना किसी विषय के क्रमिक अवधारण में काल का ही संश्लेषण है। इसी प्रकार गुण की आकार योजना काल के प्रत्युस्थापन के साथ संवेदना का संश्लेषण है। सम्बन्ध की आकार योजना सभी कालों में इन्द्रिय प्रत्यक्षों का परस्पर संयोजन है। शेष आकार योजनाएँ निश्चित मात्रा से सम्बन्धित हैं। इस निर्धारण के सहसम्बन्ध में निश्चित मात्रा की आकार योजनाएँ काल ही है।

आकार युक्त बुध्दि विकल्पों का प्रयोग प्रत्येक इन्द्रिय संवेदन के ऊपर होता है। यथा देश काल के अन्तर्गत घटित होने वाली प्रत्येक घटना में अधिक मात्रा में गुण पाया जाता है। वह घटना किसी द्रव्य में घटित होती है, कारणता के सम्बन्ध से नियंत्रित होती है तथा उसकी घटनाओं से सहअस्तित्व भी होता है। यहाँ आत्मा उपरोक्त नियम का अपवाद है क्योंकि आत्मा द्रव्य, कारणता एवं समुदाय इत्यादि बुद्धि विकल्पों का विषय नहीं है।

15.7 आकारायण के विरुद्ध आपत्तियां –

काण्ट के आलोचकों ने आकारायण को काण्ट के दर्शन का दुर्बलतम पक्ष माना है और इसके विरुध्द निम्नलिखित आपत्तियाँ उठायीं है–

(1) काण्ट आकार योजना के माध्यम से ज्ञान के सहसम्बन्ध घटकों (बुध्दि विकल्पों) में एक मिथ्या अलगाव उत्पन्न करने का प्रयास करते है। वास्तव में ज्ञान के ये सभी घटक एक दूसरे से पृथक–पृथक न होकर संगठित है।

(2) काण्ट बुध्दि – विकल्पों को सार्वभौमिक एवं प्रागनुभविक तथा इन्द्रिय संवेदनों को पूर्णतः विशिष्ट मानते हैं । किन्तु ज्ञान के अन्तर्गत इनमें से कोई न पूर्वतः प्रागनुभविक है नाहि पूर्णतः विशिष्ट यहाँ काण्ट द्वारा बुद्धि विकल्पों और इन्द्रिय संवेदनों को मूलताः भिन्न एवं विजातीय मानना उसकी भूल हैं। प्रागनुभविकता एवं विशिष्टता दोनों ही ज्ञान के दो पक्ष हैं, जिन्हें एक–दूसरे से पृथक कर दिया जायेगा तो इसकी सार्थकता समाप्त हो जायेगी ।

15.8 निष्कर्ष–

यद्यपि काण्ट की आकारायण की विविध आलोचकों ने आलोचना करते हुए इसे काण्ट के दर्शन का दुर्वलतम पक्ष तक करार दिया है। किन्तु इसके बावजूद काण्ट के दर्शन में आकारायण की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। काण्ट अपने दार्शनिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बुद्धि विकल्पों एवं आकारयुक्त बुद्धि विकल्पों के मध्य भेद को अनिवार्य मानते हैं। आकार युक्त बुद्धि विकल्पों का प्रयोग केवल इन्द्रिय प्रत्यक्षों (जागतिक विषयों) के सम्वन्ध में ही किया जा सकता है जबकि बुद्धि विकल्पों का प्रयोग इन्द्रिय प्रत्यक्षों से परे नैतिक एवं धार्मिक जीवन भी किया जा सकता है। भले ही नैतिक एवं धार्मिक जीवन का हमें तात्त्विक ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। इसके बावजूद विशुद्ध बुद्धि विकल्प असंदिग्ध रूप से उसकी वास्तविकता की ओर संकेत करते हैं। विशुद्ध बुद्धि विकल्प इन्द्रिय प्रत्यक्षों (व्यवहार) से ऊपर उठकर पारमार्थिक सत्ता की ओर संकेत करते हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आकार युक्त बुद्धि विकल्प एवं विशुद्ध बुद्धि

विकल्प के रूप में काण्ट द्वारा स्वीकृत भेद उसकी गहन दार्शनिक दृष्टि का बोध करता है। कालान्तर में अस्तिववादी एवं संवृत्तिशास्त्रीय विधियों में मनुष्य की अतिक्रमिकता के रूप में काण्ट की इस दार्शनिक दृष्टि की झलक दिखाई देती है।

15.9 शब्दावली

(1) आभास – इन्द्रिय प्रत्यक्ष या व्यवहार

(2) औपाधिकता –शर्त के अधीन होना

(3) सहअस्तित्व –एक साथ दो वस्तुओं का अस्तित्ववान होना ।

15.10 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न–

(1)आकारायण को परिभाषित करें ।

(2) आकार योजना के स्रोत को बतायें।

(3)आकार योजना में काल की भूमिका स्पष्ट करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

(1) आकारायण को स्पष्ट करते हुए आकार योजना में काल की भूमिका स्पष्ट करें।

(2) आकार योजनाओं की संख्याओं को सविस्तार वर्णन करते हुए आलोचकों द्वारा आकारायण के विरुद्ध उठायी गयी आपात्तियों– को दर्ज करायें।

15.11 उपयोगी पुस्तकें

(1) क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन – इमैनुअल काण्ट

(2) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

****

MAPH 113

खण्ड – 5

इकाई – 16 तर्कबुध्दि के सिध्दांत

इकाई की संरचना :–

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 तर्कबुध्दि के सिध्दांत से आशय

16.3 तर्कबुध्दि के सिध्दांत

16.3.1 संवेदना की स्वयं सिध्दियाँ

16.3.2 इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पूर्वानुमान

16.3.3 अनुभवों के सादृश्य

16.3.3.1 प्रथम सादृश्य – स्थायी द्रव्य का सिध्दांत

16.3.3.2 द्वितीय सादृश्य – कारणता सिध्दांत

16.3.3.3 तृतीय सादृश्य – सहअस्तित्व का सिध्दांत

16.4 इन्द्रियानुभविक विचार की पूर्वमान्यताएँ

16.4.1 प्रथम पूर्वमान्यता –संभावना

16.4.2 द्वितीय पूर्वमान्यता – वास्तविकता

16.4.3 तृतीय पूर्वमान्यता – अनिवार्यता

16.5 निष्कर्ष

16.6 शब्दावली

16.7 प्रश्नावली

16.8 उपयोगी पुस्तकें

.....000.....

16.0 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई में तर्कबुद्धि के सिद्धांत का आशय स्पष्ट करते हुए तर्कबुद्धि के आठ सिध्द्धातों को चार भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग में संवेदन की स्वंयसिध्दियों के सिद्धान्त, द्वितीय भाग में इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पूर्वानुमान के सिद्धांत का वर्णन किया गया है। तृतीय भाग में अनुभवों के सादृश्य के अन्तर्गत तीन सादृश्यों के रूप में बुद्धि के तीन सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। चतुर्थ भाग इन्द्रियानुभविक विचार की पूर्वमान्यताएँ के अन्तर्गत संभावना, वास्तविकता एवं अनिवार्यता के रूप में तीन पूर्वमान्यताओं की चर्चा बुद्धि के तीन सिध्दांतों के रूप में की गयी है । अन्त में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

16.1 प्रस्तावना –

सम्प्रत्ययों के तात्त्विक निगम के द्वारा काण्ट यह प्रमाणित करते हैं कि निर्णयों में वस्तुगत यथार्थता का कारण निर्णयों के तार्किक आकार में निहित प्रागनुभविक सप्रत्यय है। पुनः काण्ट अनुभवावीत निगमन के माध्यम से इंद्रिय संवेदन के सम्बंध में बुद्धि के सम्प्रत्ययों के औचित्य की सिद्ध करते हुए कहते हैं कि सम्प्रत्ययों में निहित प्रागनुभविकता के कारण ही ज्ञान संभव हो पाता है। किंतु शुद्ध सम्प्रत्ययों एवं इंद्रिय संवेदनों में सादृश्यता न होने के कारण यह प्रत्यक्षतः संभव सम्प्रययों न होकर मध्यस्थ के रूप में ऐसे ऐन्द्रिक तत्त्व की अपेक्षा रखता है जो शुद्ध सम्प्रत्ययों के समान प्रागनुभविक एवं इंद्रिय संवेदनों के समान संवेद्य हो। इसी का सविस्तार वर्णन किया गया है। तर्कवाद के सिद्धान्तों के अन्तर्गत काण्ट ज्ञान के लिए तर्क बुद्धि के सम्प्रत्ययों की आवश्यकता एवं विभिन्न सम्प्रत्ययों को व्यक्त करने वाले निर्णयों की विवेचना कर सम्प्रत्ययों की वैधता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

16.2 तर्कबुद्धि के सिद्धांत– तर्कबुद्धि अनुभवातीत तत्त्व है जो देश–काल में प्राप्त इन्द्रिय संवेदनों को बुद्धि विकल्पों के द्वारा नियमित कर ज्ञान का स्वरुप प्रदान करती है। तर्कबुद्धि के सिध्दांत से आशय तर्कबुद्धि के व्यावहारिक या वस्तुगत प्रयोग के नियमों से है। ये सिध्दांत बताते हैं कि बुद्धि के सम्प्रत्ययों का प्रयोग अनुभव में क्यों और कैसे किया जाता है? तर्कबुद्धि के सिध्दांत अनुभव की अनिवार्य प्रागपेक्षाएँ है। इसके अभाव में मानवीय अनुभव संभव नहीं है। ये आकार योजनाओं से घनिष्टता से सम्बन्धित हैं।

16.3 तर्कबुद्धि के सिद्धांत– काण्ट के अनुसार तर्कबुद्धि के आठ सिद्धांत है। जिन्हें चार भागों में विभक्त किया गया है। जो क्रमशः परिमाण, गुण, सम्बन्ध एवं प्रकारता के बुद्धि विकल्पों से सम्बन्धित है। ये निम्नलिखित हैं–

तर्कबुद्धि के सिद्धांतों का विभाजन–

(1) संवेदना की स्वंय सिध्दियाँ (Aims of intuition)

(2) इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पूर्वानुमान (Anticipation of perception)

(3) अनुभवों के सादृश्य (Analogies of Experience)

(4) इन्द्रियानुभविक विचार की पूर्वमान्यताएं (Postulates of Empirical thought)

16.3.1 संवेदना की स्वंयसिध्दियाँ –तर्कबुद्धि के इस सिद्धान्त का सम्बन्ध परिमाण से है क्योंकि संवेदन विस्तार युक्त परिमाण होते हैं। जिन विषयों के हमें इंद्रिय प्रत्यक्ष प्राप्त होते हैं वे विस्तारवान अवश्य होते हैं। विस्तार से तात्पर्य देश–काल के अन्तर्गत स्थान घेरने तथा काल के अन्तर्गत सातत्य से है। देश –काल के अन्तर्गत ज्ञात वस्तुएँ आभास कहलाती हैं। आभासों के दो पक्ष– आकार एवं सामग्री होते हैं।

आभासों की आकारिक पक्ष देश–काल से प्राप्त प्रागनुभविक संवेदन हैं तथा सामग्री इन्द्रियानुभविक संवेदनों से प्राप्त होती है। अतः हमारे समस्त अनुभव देश काल के अन्तर्गत होते हैं। देश–काल में विद्यमान समस्त वस्तुएँ संवेदनों की स्वंयसिद्धियों के नियम से नियंत्रित होती हैं।

इस सिद्धांत की प्रस्तुति का ढंग इसके मनोवैज्ञानिक होने का भ्रम उत्पन्न करता है किन्तु काण्ट इसे प्रागनुभविक संश्लेषणात्मक सिद्धांत मानते हैं। यह सिद्धांत मूलतः गणित एवं ज्यामिति से सम्बन्धित है। यह ज्यामिति की संभावना की एक शर्त है। ज्यामिति के शुद्ध सिद्धांत वस्तुगत यथार्थता से युक्त होते हैं।

16.3.2 इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पूर्वानपमान –

समस्त वास्तविक पदार्थ जो इन्द्रिय संस्कार के विषय होते हैं, तीव्रता युक्त विस्तार वाले होते हैं। बुद्धि के इस सिद्धांत का सम्बंध गुप्त है। समस्त इन्द्रिय संवेदनों के विषयों में परिमाण के साथ परिमाण की एक कोटि भी होती है जो उसमें पूर्ण अस्तित्व से लेकर अनस्तित्व के मध्य होती है।

तीव्रतायुक्त विस्तार एवं विस्तारयुक्त परिमाण में काण्ट अन्तर करते हैं। विस्तारयुक्त परिणाम देश–काल में एक–दूसरे के बाहर स्थित विभिन्न भागों से निगमित होता है जबकि तीव्रता युक्त विस्तार पूर्णता के रूप में प्राप्त होता है। जैसे एक मीटर सेन्टीमीटर के सौ हिस्सों से मिलकर बना होता है उसी प्रकार विस्तारयुक्त परिमाण देश–काल के बाहर स्थिति भागों से मिलकर बना होता है जबकि गर्मी की अनुभूति सम्पूर्णता है क्योंकि इसमें अलग–अलग हिस्से शामिल नहीं है। यह तीव्रतायुक्त विस्तार है।

हमारे समस्त अनुभवों में इन्द्रिय संस्कार अनिवार्यतः पाये जाते हैं जो किसी वस्तु विशेष से सम्बंधित होते हैं। प्रागनुभविक रूप से वस्तु विशेष के सम्बंध में कुछ नहीं कहा जा सकता है किन्तु उसके सम्बंध में सामान्य रूप से पूर्वानुमान किया जा सकता है। जिसका सम्बंध वस्तु के इन्द्रिय संस्कारों की भाषा से है जो न्यूनाधिक तीव्रता से युक्त होते हैं। तीव्रता की यह मात्रा शून्य से लेकर किसी भी स्तर तक हो सकती है। इन्द्रिय संस्कार की प्राप्ति के समय उसकी सुनिश्चित तीव्रता होती है। जिसका कथन इंद्रियानुभवविक न होकर प्रागनुभविक संश्लेषणात्मक होता है। यह आकार युक्त गुण के विकल्पों वास्तविकता निषेध एवं सीमा के द्वारा प्रागनुभविक ढंग से पूर्व निर्धारित होता है।

16.3.3 अनुभवों के सादृश्य–

इस भाग के अंतर्गत तर्कबुध्दि के तीन सिद्धातों को शामिल किया जाता है। अनुभवों के सादृश्य के अनुसार अनुभव केवल प्रत्यक्षों के किसी अनिवार्य सम्बंध के प्रतिविम्ब के द्वारा ही संभव है। यहाँ अनुभव से आशय इन्द्रियानुभविक ज्ञान से है जो इन्द्रिय संवेदनों के द्वारा यथार्थ को निर्धारित करता है। यह अनुभव प्रत्यक्षों का संश्लेषण है। संश्लेषण प्रत्यक्षों में निहित होकर अनुभवातीत सम्प्रत्यक्ष की क्रिया है। यह अनुभवातीत संप्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष को संभव बनाते हैं। प्रत्यक्ष स्वतः किसी क्रम में व्यवस्थित न होकर औपाधिक क्रम में प्राप्त होते हैं। इसीलिए अनुभव हेतु काल के अन्तर्गत प्राप्त प्रत्यक्षों के सम्बंध की कल्पना अनिवार्य है। यह सम्बन्ध तर्कबुद्धि के प्रागनुभविक सम्प्रदायों द्वारा स्थगित किया जाता है। यह अनिवार्य सम्बंध है। प्रत्यक्षों के अनिवार्य सम्बंध की कल्पना पर ही अनुभव की संभावना निर्भर होती है।

काल के तीन प्रकार– सातत्य, क्रम एवं सहअस्तित्व है इसलिए काल के अन्तर्गत आभासों के तीन नियम हो सकते हैं–(क) परिवर्तनीय आभासों का संश्लेषण द्रव्य के सम्प्रत्यय द्वारा होता है द्य सभी परिवर्तनों के मध्य एक अपरिवर्तनीय द्रव्य की आवश्यकता संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक सिद्धांत है।

(ख) कारणता के माध्यम से क्रमिक इन्द्रिय प्रत्यक्षों में वस्तुगत अनिवार्यता स्थगित की जाती हैं।

(ग) एक साथ पाये जाने वाले आभासों का संश्लेषण समुदाय में सम्प्रत्यय द्वारा किया जाता है।

द्रव्य, कारणता एवं समुदाय के सम्प्रत्यय काल के तीन प्रकारों – सातत्य, क्रम एंव समकालिकता भी क्रमशः अभिव्यक्तियाँ है।

इन्हीं तीनों सम्प्रत्ययों पर अनुभव के सादृश्य के तीन सिद्धान्त आधारित है। ये सिद्धांत काल के अन्तर्गत आभासों के सम्बंध में अनिवार्य एवं सार्वभौम नियम हैं, जो प्रागनुभविक रूप से सभी अनुभवों पर लागू होने के साथ ही अनुभव को भी संभव बनाते है।

16.3.3.1 प्रथम सादृश्य– स्थायी द्रव्य का सिद्धान्त –

आभासों के समस्त परिवर्तनों में द्रव्य नित्य एवं शाश्वत रहता है अर्थात् द्रव्य का परिभाण घटता या बढ़ता नहीं है। इस सादृश्य से काण्ट कहना चाहते हैं कि द्रव्य में होने वाले परिवर्तनों के बोध के लिए अपरिवर्तनशीन द्रव्य को स्वीकार करना अनिवार्य है। यहाँ द्रव्य न तो अनुभवावीत सत्ता है और न अपने आप में वस्तु है अपितु परिवर्तनशील आभासों का अपरिवर्तनीय आधार है जो आभास से मिन्न नहीं है।

समस्त आभास काल में समाहित होते हैं। काल के ही सन्दर्भ में आभासों के क्रम एवं समकालिकता का बोध होता है। काल प्रत्यक्ष का विषय नहीं है इसलिए प्रत्यक्ष के विषयों (आभासों) में ही वह अधिष्ठान उपलब्ध होना चाहिए, जिसके संदर्भ में परिवर्तन का ज्ञान हो सके। आभासों में स्थायी आधार द्रव्य के संदर्भ में आभासों के वस्तुगतकालिक सम्बंधों को समझा जा सकता है।

16.3.3.2 द्वितीय सादृश्य–कारणता सिद्धान्त –

कारणता सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक कार्य का कारण होता है और कार्य की उत्पत्ति के मूल में कारण समाहित होता है। ह्यूम इससे सहमत नहीं है और अपने तर्कों के माध्यम से कारणता की अनिवार्यता का खण्डन करते हैं। वे कहते हैं कि कारणता का सम्प्रत्यय प्रागनुभविक न होकर इन्द्रियानुभविक है। ह्यूम वैध ज्ञान के दो स्रोतों के रूप में इन्द्रिय प्रत्यक्ष एवं विश्लेषणात्मकता को स्वीकार करते हैं। किंतु कारणता की अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता, इन्द्रियानुभविक एवं विश्लेषणात्मकता दोनों ही से सिद्ध नहीं होती है। अतः ह्यूम कारणता को भ्रम एवं मन की कल्पना कहते हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है।

काण्ट ह्यूम के मत से सहमत नहीं हैं। काण्ट कहते हैं कि कारणता सम्बंध की सत्यता या असत्यता का प्रमाण इन्द्रियानुभविक निरीक्षण है। किंतु यदि कोई विशेष सम्बंध असत्य सिद्ध हो जाता है तो उसके आधार पर कारणता सम्बंध को असत्य नहीं माना जा सकता है। काण्ट कहते हैं कि यहाँ ह्यूम सत्य आधार वाक्य से अनुचित निष्कर्ष निगमित करते हैं। काण्ट कहते हैं कि जब इन्द्रियानुभविक कारणता सम्बंध की चर्चा करते हैं तो चर्चा में कारणता सम्बंध पूर्ण निहित होता है। यह सिद्धान्त औपाधिक न होकर सम्प्रत्ययात्मक सत्य है, जिसके आधार पर विशेष कारणता सम्बंध का प्रतिपादन किया जा सकता है। यह सम्प्रत्ययात्मक सत्य है जो मानवीय अनुभव की संरचना में प्रागनुभविक रूप से निहित है। अर्थात् जो सत्य अनुभव को संभव बनाता है उसे अनुभव से निगमित नहीं किया जा सकता है। काण्ट कारणता सम्बंध के पक्ष में निम्नलिखित तर्क देता है –

काण्ट कहते हैं कि काल के विभिन्न क्षणों में हम किसी वस्तु की विभिन्न अवस्थाओं को देखते हैं। ऐसे इन्द्रिय प्रत्यक्ष में दो प्रत्यक्षों को काल के अन्तर्गत सम्बद्ध करते हैं। यह सम्बन्ध इंद्रियों द्वारा स्थापित नहीं हो सकता है अपितु यह कल्पना की संश्लेषणात्मक शक्ति द्वारा संभव है। काण्ट कहते हैं कि विचारों से अनियंत्रित कल्पना प्रत्यक्षों को मनमाने ढंग से व्यवस्थित कर सकती है। इसलिए प्रत्यक्षों के अनिवार्य

सम्वन्ध के लिए कल्पना के साथ ही सम्बंध संप्रत्यय का होना आवश्यक है और सम्बन्ध संप्रत्यय तर्कबुद्धि ही उत्पन्न कर सकती है, इन्द्रियानुभव नहीं ।

काण्ट का मत है कि हम किसी घटना या परिवर्तन को उसके पूर्ववर्ती को देखे बिना नहीं जान सकते हैं क्योंकि हम रिक्त काल का प्रत्यक्ष नहीं कर सकते हैं। हमारे प्रत्यक्षों में एक निश्चित–क्रम पाया जाता है अर्थात हमारे प्रत्यक्ष (वस्तुगत) किसी नियम से नियंत्रित हैं। यह पूर्वापर सम्बन्ध बुद्धि का नियम है।

यह युक्ति अप्रत्यक्ष युक्ति है जो द्वितीय युक्ति को प्रभावित करती है। यदि यह मान लिया जाये कि किसी घटना की कोई पूर्ववर्ती शर्त नही होती है, जिसका यह नियमतः पालन करती है। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष के सभी क्रम प्रत्यक्ष में ही निहित होंगे अर्थात् वैयक्तिक होंगे, जिसका वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं होगा। मनुष्य अपने प्रत्यक्षों के द्वारा दो घटनाओं में कोई अंतर नहीं कर पायेगा। परन्तु हम जानते हैं कि ऐसा नहीं होता है क्योंकि घटनाओं में नियत क्रम होता है।

हमारी बुद्धि के सम्प्रत्यय पदार्थों पर एक अनिवार्य व्यवस्था को आरोपित करके उन्हें एक अनिवार्य नियम का विषय बना देते हैं। जिससे प्रत्यक्ष में विचार या स्थिति किसी नियम के अनुसार पूर्वगामी व्यवस्था की अनुशरण करते है।

काण्ट कहते हैं कि पूर्ववर्ती काल परवर्ती काल को अनिवार्यतः निर्धारित करता है क्योंकि हम परवर्ती काल तक पूर्ववर्ती काल के माध्यम से ही पहुँच सकते हैं। काल के अंतर्गत सम्बंध की यह निरंतरता केवल इन्द्रिय प्रत्यक्षों में ही देखी जा सकती है। इसीलिए पूर्ववर्ती घटना परवर्ती घटना को निर्धारित करती है।

16.3.3.3 तृतीय सादृश्य –सहअस्तित्व का सिद्धांत–

सभी द्रव्य, जहाँ तक वे देश में एक साथ घटित होते हुए प्रत्यक्ष किये जाते हैं, अन्योन्याश्रय सम्बंध में स्थिर होते हैं। जिन प्रत्यक्षों का क्रम अपरिवर्तनीय होता है वहां कारणता का नियम कार्य करता है तथा जिन घटनाओं में क्रम परिवर्तनीय होता है, वहाँ भी एक नियम कार्य करता है जिससे एक स्थिति से दूसरी स्थिति तथा दूसरी स्थिति से पहली स्थिति की ओर जा सकते हैं अर्थात क्रम में परिवर्तन के बाद भी उसमें एक नियम होता है तथा उन दोनों स्थितियों में परस्परता का सम्बन्ध होता है। परस्परता का सम्प्रत्यय वस्तुगत सहअस्तित्व के अनुभव की आवश्यक शर्त है। इसीलिए यह अनुभव के सभी पदार्थों का प्रागनुभविक सिद्धांत है। अनुभव के तीन सादृश्य काल के अन्तर्गत आभासों के अन्तर्गत आभासों के अस्तित्व को काल के तीन सम्बंधों–सातत्य, क्रम तथा समकालिकता में निर्धारित करते हैं। सादृश्य के ये सिद्धांत आनुभविक न होकर शुद्ध चेतना से उत्पन्न हैं इसलिए प्रागनुभविक हैं।

16.4 इन्द्रियानुभविक विचार की पूर्वमान्यताएँ –

प्रकारता की तीन कोटियों को तीन सिद्धान्तों में व्यक्त किया गया है । इन्हें इन्द्रियानुभविक विचार की पूर्वमान्यताएं कहा जाता है।

(1) जो भी अनुभव की आकारिक शर्तों–संवेदन एवं सम्प्रत्यय के आकारों के अनुकूल है, वह संभव है।

(2)जो भी अनुभव की उपादान शर्तों अर्थात् संवेदना से संयुक्त होता है, वह वास्तविक होता है। वास्तविक के साथ सम्बंध अनुभव की सार्वभौम शर्तों के द्वारा निर्धारित होता है, वह अनिवार्य होता है।

काण्ट आभास जगत की घटनाओं के सम्बंध में कहते हैं कि ये संभव, वास्तविक एवं अनिवार्य होती है। यहाँ काण्ट उन परिस्थितियों का वर्णन करते हैं जिसके फलस्वरूप कोई वस्तु या घटना संभव, वास्तविक एवं अनिवार्य कही जा सकती है। काण्ट यहाँ संभावना, वास्तविकता एवं अनिवार्यता के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हैं। यदि किसी वस्तु के सम्बन्ध में मात्र इतना ज्ञान है कि उसको संवेदनों के आकारों तथा बुद्धि के सम्प्रत्ययों द्वारा सोचा जा सकता है तो वह संभव है। यदि वह वस्तु इन्द्रिय संवेदनों के माध्यम से प्राप्त है अथवा किसी इन्द्रिय संवेदन से उसका अनुमान किया जा सकता है तो वह वास्तविक है और यदि उसकी कारणता के नियम के अन्तर्गत व्याख्या की जा सकती है तो वह अनिवार्य है।

16.4.1 प्रथम पूर्वमान्यता संभावना –

संभावना का अर्थ किसी वस्तु या घटना का अनुकूलता की शर्तो के अनुकूल होने से है। लाइवनीज का मत है कि शुद्ध सम्प्रत्यय ही ज्ञान का साधन हैं इसलिए विरोध का अभाव ही संभावना का प्रमाण है। विचार के नियमों से सहमति या अनुकूलता ही किसी वस्तु/घटना के संभव होने की शर्त है। वह कहता है कि तत्वमीमांसा–विज्ञान के रूप में ही संभव है। लेकिन काण्ट संभावना के लिए लाइवनीज के विचार को पर्याप्त नहीं मानते हैं। उसके अनुसार शुद्ध सम्प्रत्ययों के आधार पर वस्तु के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है। किसी वस्तु/घटना की संभावना के लिए विचार के नियमों के अनुकूल होने के साथ ही अनुभव की शर्तों के अनुकूल भी होना चाहिए। संभावना का अर्थ आत्म विरोध का अभाव, बुद्धि के सिद्धांतों, संवेदन की स्वयंसिद्धियों, प्रत्यक्ष में पूर्वानुमान, अनुभवों के सादृश्यों तथा संवेदन आकारों के भी अनुकूल होना चाहिए। अतः संभावना के लिए सम्प्रत्यात्मक विरोध के अभाव के साथ इन्द्रियानुभविक साक्ष्य भी होना चाहिए।

16.4.2 द्वितीय पूर्वमान्यता – वास्तविकता–

काण्ट का मत है कि किसी वस्तु/घटना के सम्प्रत्यय का ज्ञान उसके वास्तविक होने का प्रमाण नहीं है क्योंकि सम्प्रत्यय में अस्तित्व निहित नहीं होता है। वे कहते हैं कि यदि किसी वस्तु का सम्प्रत्यय उसके प्रत्यक्ष का पूर्वगामी है तो वस्तु मात्र संभावना होगी और उसका प्रत्यक्ष उसके सम्प्रत्यय का पूर्वगामी है तो वस्तु वास्तविक होगी अर्थात् किसी वस्तु को वास्तविक होने के लिए उसका इन्द्रियानुभव में सत्यापन होना अनिवार्य है।

तार्किक प्रत्यक्षवादियों का मत है कि जिसका कोई भी संवेदन इन्द्रियानुभव में प्राप्त न हो और न प्राप्त होने की संभावना हो, उसका अस्तित्व विचार मात्र से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। एयर तत्वमीमांसीय सत्ता को ऐसा ही मानकर निरर्थक कहते हैं। किन्तु काण्ट का मत इससे भिन्न है। काण्ट कहते हैं कि ऐसी सत्ताओं के सम्बंध में सम्प्रत्ययात्मक चिंतन करना ही नहीं चाहिए। किसी वस्तु को प्रमाणित या अप्रमाणित करने की शर्तें समान हैं। संभव है किसी वस्तु का प्रत्यक्ष न होने का कारण इन्द्रियों का दोष या वस्तु की कोई उपाधि हो जो उसे प्रत्यक्ष होने से रोकती है। अतः प्रत्यक्ष के लिए दोष रहित इन्द्रियाँ और प्रतीति सक्षम वस्तु का होना आवश्यक है। यह भी संभव है कि एक वस्तु की सत्ता का अनुमान दूसरी वस्तु के आधार पर कर सकें और उपयुक्त अवसर पर उसकी प्रत्यक्ष हो जाये। जैसे लोहे में चुम्बकत्व प्रत्यक्ष का विषय नहीं है किन्तु आकर्षण शक्ति के आधार पर उसका अनुमान संभव है।

16.4.3 तृतीय पूर्वमान्यता –अनिवार्यता –

अनिवार्यता का अर्थ है आभासों के सम्बंधों को कारणता के नियम से जानना। वास्तविक सत्ता से सम्बन्धित होते हुए भी अनुभव की सार्वभौम उपाधियों से निर्धारित होना ही अनिवार्य होता है। किसी घटना का अनुभव में प्रत्यक्ष होना उसकी वास्तविकता है? तथा उस घटना को किसी अन्य घटना के कार्य के रूप

में देखना उसकी अनिवार्यता है। यहाँ अनिवार्यता तार्किक नहीं होती हैं बल्कि वस्तु के अस्तित्व से सम्बन्ध रखती है। साथ ही अनिवार्यता की स्थापना वस्तु की समूची सत्ता के सम्बंध में न होकर उसकी अवस्थाओं के संदर्भ में होती है।

प्रकारता के तीनों सिद्धान्त एक–दूसरे से पृथक न होकर अन्तर्सम्बन्धित हैं। जो वास्तविक होता है, वह अनिवार्य होता है। संभाव्य भी वास्तविकता एवं अनिवार्यता से सम्बद्ध होता है। जिस मात्रा में किसी वस्तु या अन्य वस्तु के साथ सम्बन्ध का ज्ञात होता है उसी अनुपात में उसे संभव, वास्तविक एवं अनिवार्य कह सकते हैं।

बुद्धि के सिद्धांतों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बुद्धि के प्रथम दो सिध्दान्त–संवेदन की स्वंयसिध्दियाँ तथा प्रत्यक्ष के पूर्वानुमान गणितीय हैं। जिसका आशय है कि ये सिद्धांत आभासों परिमाण को निर्धारित करते हैं जबकि दूसरे दोनों सिद्धांत– अनुभव के सादृश्य एवं इन्द्रियानुभविक विचार की पूर्वमान्यताएं गत्यात्मक है। ये सिद्धांत आभासों के अस्तित्व को न बताकर उसके पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित करती हैं इसीलिए उसकी प्रकृति नियामक है।

16.5 निष्कर्ष – बुद्धि के सिद्धान्तों का सूक्ष्म अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि बुद्धि का प्रत्येक सिद्धांत किसी न किसी आकार योजना में प्रयोग का सिद्धांत है और आकार योजना से युक्त होने पर ही पदार्थ अनुभव में सन्निहित होते हैं। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर आकारयुक्त पदार्थ अनुभव के मूलाधार बनते हैं। बुद्धि इन आकार युक्त पदार्थों का उपयोग अनुभव में करती है।

16.6 प्रश्नावली

लघुउत्तरीय प्रश्न –

(1) संवेदना की स्वयंसिद्धियाँ क्या है?

(2) इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पूर्वानुमान से आप क्या समझते हैं।

(3) कारणता का सिध्दान्त को स्पष्ट करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

(1) तर्कबुध्दि के सिध्दान्त के अर्थ को स्पष्ट करते हुए अनुभवों के सादृश्य के तीनों सादृश्य सिध्दान्तों का वर्णन करें।

(2) इन्द्रियानुभविक विचार की पूर्वमान्यताएँ क्या हैं। तीनों पूर्वमान्यताओं की व्याख्या करें।

16.7 शब्दकुंजी

(1) आभास देश–काल के अन्तर्गत ज्ञात वस्तुएँ।

(2) पूर्वमान्यता – पहले से स्वीकृत विश्वास

16.8 उपयोगी पुस्तकें :

(1) क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन – इमैनुअल काण्ट

(2) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

.....0000.....

MAPH 113

खण्ड–5

इकाई : 17 – विज्ञानवाद का खण्डन

संरचना –

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 विज्ञानवाद का सामान्य अर्थ

17.3 देकार्त एवं बर्कले का विज्ञानवाद

17.4 काण्ट की विज्ञान सम्बन्धी अवधारणा

17.5 देकार्त के विज्ञानवाद का खण्डन

17.6 बर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन

17.7 ज्ञान के सम्बंध में काण्ट का दृष्टिकोण

17.8 वस्तुवाद के साथ विज्ञानवाद की स्वीकारोक्ति क्यों?

17.9 निष्कर्ष

17.10 शब्दावली

17.11 प्रश्नावली

17.12 उपयोगी पुस्तकें

17.0 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई विज्ञानवाद का खण्डन के अन्तर्गत काण्ट के सन्दर्भ में विज्ञानवाद की पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए विज्ञानवाद के सामान्य अर्थ का उल्लेख किया गया है । देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवादी मत को स्पष्ट करते हुए काण्ट के विज्ञानवादी मत को दर्शाया गया है। काण्ट द्वारा देकार्त एवं वर्कले के विज्ञानवादी मतों का खण्डन प्रस्तुत करते हुए ज्ञान के सम्बन्ध में काण्ट के विचारों को व्यक्त किया गया है। अन्त में विज्ञानवाद के प्रति काण्ट के आकर्षण के कारणों को व्यक्त करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

17.1 प्रस्तावना –

विज्ञानवाद का खण्डन काण्ट की कृति क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के द्वितीय संस्करण में प्राप्त होता है। काण्ट अपने दार्शनिक चिंतन के प्रारम्भिक चरण में बुद्धिवादी विचारधारा के दार्शनिक लाइबनीज एवं वुल्फ से प्रभावित था। बुद्धिवाद से प्रभावित होने के कारण जड़ वस्तुओं और जड़ एवं चेतन के मध्य सम्बन्ध के प्रति उसका दृष्टिकोण बुध्दिवादी मान्यताओं के अनुरूप था। काण्ट के बुद्धिवादी होने के प्रमाण के रुप में उसकी कृति क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के प्रथम संस्करण को देखा जा सकता है, जिसमें काण्ट

कहते हैं कि बुद्धि के सिध्दांत बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियों के समान रूप से प्रभावी होते हैं तथा बाह्य एवं आंतरिक दोनों अनुभव एक– दूसरे के समानान्तर हैं। क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के द्वितीय संस्करण में काण्ट अपने मत में बदलाव करते हैं। वह कहते हैं कि बाह्य अनुभूति आन्तरिक अनुभूति के समानान्तर न होकर उसकी पूर्ववर्ती होती हैं क्योंकि आन्तरिक अनुभूति बाह्य अनुभूति पर निर्भर करती है।

काण्ट के विचारों में आये परिवर्तन के मूल में दो कारण निहित हैं, जो इस प्रकार हैं –

(1) क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के दोनों संस्करणों के मध्य आये समयान्तराल में काण्ट ने इस समस्या का विधिवत् चिंतन किया तथा अपने लेख 'रुडीमेंटस ऑव फिजिक्स' में दिखाया कि भौतिक विज्ञान एवं मनोविज्ञान दो प्रकार के विज्ञान हैं। भौतिक विज्ञान के सम्बंध में द्रव्य के सम्प्रत्यय का उपयोग प्राप्त होता है। यह द्रव्य बाह्य पदाथों में स्थायी रूप से पाया जाता है। मनोविज्ञान के सम्वन्ध में द्रव्य का प्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि आन्तरिक अनुभूतियों के मूल में द्रव्य जैसी कोई स्थायी सत्ता निहित नहीं होती है। आंतरिक अनुभूतियों का मूल आत्मा है, जो द्रव्य नहीं है। इस विश्लेषण के आधार पर निश्चयतापूर्वक कहा जा सकता है कि बाह्य पदार्थों की अनुभूतियाँ निश्चित ही आन्तरिक अनुभूतियों की अपेक्षा ठोस आधार पर स्थित है।

(2) क्रिटिक ऑव प्योर रीजन के प्रथम संस्करण के सम्बन्धों में कुछ भ्रातियाँ भी विद्यमान थीं, जिनका निराकरण आवश्यक था। इसके साथ ही प्रथम संस्करण के आलोक में काण्ट पर बर्कले वादी होने का आरोप भी लगाया गया था। इसलिए काण्ट को अपनी दार्शनिक स्थिति स्पष्ट करना आवश्यक हो गया था। आन्तरिक अनुभूति एवं बाह्य अनुभूति के सम्बंध में काण्ट के विचारों में आया बदलाव आमूल परिवर्तन नहीं था अपितु क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन के प्रथम संस्करण में उसके दार्शनिक चिंतन के विषय में कुछ बातें अस्पष्ट या अकथित रह गयीं थीं, उन्हें ही स्पष्ट करने के क्रम में देखना चाहिए। साथ ही क्रिटिक के प्रथम संस्करण के विषय में उठायी गयी समस्याओं का भी समाधान था।

(3) विज्ञानवाद का सामान्य अर्थ– विज्ञानवाद ज्ञान सम्बधी दार्शनिक सिद्धान्त है। परम्परागत विज्ञानवाद के अनुसार ज्ञाता एवं ज्ञेय में ऐसा सम्बन्ध है कि ज्ञाता से स्वतन्त्र रहने पर ज्ञेय (बाह्य वस्तु) का अस्तित्व कायम नहीं रह सकता है अर्थात् बाह्य वस्तुएँ अपने अस्तित्व के लिए ज्ञाता पर निर्भर हैं। ज्ञाता से सम्बंध रखना बाह्य वस्तुओं के लिए अनिवार्य है क्योंकि उसी सम्बध पर बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व निर्भर है। ज्ञाता–ज्ञेय सम्बन्ध के अभाव में बाह्य वस्तुओं की कल्पना संभव नहीं है। विज्ञानवाद मानता है कि ज्ञान परमार्थ (ultimate) है। हम जो कुछ भी कहते हैं, वह ज्ञान की परिधि में होता है, ज्ञान की परिधि को पार कर पाना संभव नहीं है। इसके अनुसार कुछ भी अज्ञेय एवं अज्ञात नहीं है। मानवीय बुद्धि की सहायता से सब कुछ जाना जा सकता है। मानवीय बुद्धि में ज्ञान प्राप्त करने की असीमित शक्ति है।

17.3 देकार्त एवं बर्कले का विज्ञानवाद–

बुद्धिवादी विचारक देकार्त संशय पध्दति का प्रयोग करके इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि केवल एक ही कथन को असंदिग्ध रूप से सत्य माना जा सकता है, वह है मैं हूँ देकार्त कहते हैं कि हमें प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक रूप से केवल आत्म तत्त्व की ही अनुभूति होती है। देकार्त कहते है कि मैं सोचता हूँ, अतः मैं हूँ (Cogito Ergo Sum) चूँकि सोचना एक चेतन क्रिया है। जिसके लिए चेतन कर्ता का होना अनिवार्य है। वह चेतन कर्ता आत्म तत्त्व (मैं) है। आत्मतत्त्व की सत्ता के अतिरिक्त अन्य किसी सत्ता के विषय में हमें प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त नहीं होती है। इसीलिए उनके सम्बंध में प्रत्यक्ष अनुभूति के आधार पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

अनुभववादी विचारक बर्कले का मत है कि सत्ता दृश्यता है। अर्थात् सत्ता अनुभवमूलक है। सत्ता उसी की है जिसका अनुभव होता है और अनुभव केवल विज्ञानों का होता है इसीलिए केवल विज्ञानों की सत्ता है, बाह्य वस्तुओं की नहीं। समस्त बाह्य सत्ताएँ देश में स्थित हैं और देश की सत्ता असंभाव्य है इसलिए बाह्य वस्तु मात्र कल्पना का विषय हैं। बर्कले के अनुसार देश वस्तुओं का गुण है और वस्तु मन के विज्ञान है इसलिए देश में प्रत्यक्षीकृत सत्ता भ्रांति के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।

देकार्त एवं वर्कले के विज्ञानवाद में एक बात पर दोनों की सहमति है के प्रत्यक्षतः हमें अपने ही विज्ञानों की अनुभूति प्राप्त होती है। गहन विश्लेषण करने पर यहाँ भी दोनों में मत वैविध्य उभर आता है। जहाँ बर्कले का मत है कि बाह्य पदार्थों की प्रतीति वास्तव में हमारे आन्तरिक विज्ञानों की प्रतीति है क्योंकि मन के विज्ञानों से पृथक अन्य किसी पदार्थ की सत्ता नहीं है। वही देकार्त का मत है कि बाह्य पदार्थों की सत्ता संदिग्ध है।

17.4 काण्ट की विज्ञान सम्बन्धी अवधारणा –

काण्ट अपने विज्ञानवाद के माध्यम से देकार्त एवं बर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन करना चाहते हैं तथा अपने विज्ञानवाद के सिध्दान्त की अन्य विज्ञानवादी सिद्धतों से पृथकता सुनिश्चित करना चाहते हैं । विज्ञानवाद के संदर्भ में काण्ट की सामान्य विचार है कि इलियाटिक सम्प्रदाय से लेकर वर्कले तक सभी विज्ञानवादियों की यह धारणा रही है कि जो कुछ इन्द्रियों के द्वारा ज्ञात होता है, वह भ्रामक है तथा सत्य ज्ञान की प्राप्ति केवल बुद्धि के सम्प्रत्ययों से की जा सकती है। काण्ट के विज्ञानवाद के अनुसार कोरे बुद्धि के सिद्धान्तों से उत्पन्न होने वाला ज्ञान भ्रांति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, सत्य ज्ञान की प्राप्ति केवल अनुभव से की जा सकती है।

इलियाटिक सम्प्रदाय से बर्कले तक के विज्ञानवाद को काण्ट भौतिक विज्ञानवाद कहते हैं, जिसके अनुसार बाह्य जगत में पदार्थों की स्थिति संदिग्ध, मिथ्या एवं असंभाव्य है। उसके संदर्भ में स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है। देकार्त के विज्ञानवाद को काण्ट संभाव्य या संदेहवादी विज्ञानवाद कहते हैं जबकि वर्कले के विज्ञानवाद को हठवादी विज्ञानवाद कहते हैं। वर्कले एवं देकार्त दोनों के विज्ञानवाद को काण्ट भौतिक विज्ञानवाद के अंतर्गत रखते हैं।

देकार्त एवं वर्कले के मतों का सम्यक् अध्ययन करने के उपरान्त काण्ट स्थापित करते हैं कि–

(1) हमें वस्तुओं का अनुभव या प्रत्यक्ष होता है। वस्तुओं का यह प्रत्यक्ष वस्तुओं की कल्पना नहीं है।

(2) आन्तरिक अनुभूति, जिसे देकार्त असंदिग्ध मानता है, वह बाह्य पदार्थ को अनुभूति के पूर्व स्वीकार करती है। पदार्थ चेतना, बाह्य चेतना का अनिवार्य निहितार्थ है।

काण्ट की उपरोक्त स्थापनाओं के मूल में दो आधार है–

(1) मैं जिस रूप में अपनी सत्ता को जानता हूँ, वह काल के अन्तर्गत निर्धारित होती है।

(2) काल के अन्तर्गत समस्त निर्धारण प्रत्यक्ष के अन्तर्गत किसी स्थायी सत्ता की अपेक्षा रखता है।

17.5 देकार्त के विज्ञानवाद का खण्डन

– प्रथम आधार जिसमें काण्ट कहते हैं कि मैं जिस रूप में अपनी सत्ता को जानता हूँ, वह काल के अंतर्गत निर्धारित होती है। इसके द्वारा काण्ट आत्म–चेतना के स्वरूप का निर्धारण करते हैं। वे कहते हैं कि शुद्ध चेतना या चेतना की अनुभवातीत एकता हमारे समस्त अनुभवों का अनिवार्य सहवर्ती एवं प्रागनुभविक तत्त्व है, जिसका स्वरूप आकारिक या बौद्धिक होता है। किन्तु आत्म चेतना या इंद्रियानुभविक चेतना का स्वरूप इससे भिन्न होता है। आत्म चेतना मेरी सत्ता का अनुभव है इसलिए इसके लिए भी अन्य

ज्ञानों की भाँति संवेदनों की आवश्यकता होती है। अतः एक ज्ञाता के रूप में मुझे स्वयं की सत्ता का ज्ञान केवल काल के अन्तर्गत ही हो सकता है और काल के अन्तर्गत समस्त ज्ञान किसी देशगत स्थायी तत्त्व के संदर्भ में ही संभव है। यही बुद्धि के सिद्धान्तों के अंतर्गत काण्ट अनुभवों के प्रथम सादृश्य के रूप में स्थापित करते हैं, जिसकी चर्चा पूर्व अध्याय में की जा चुकी है। इससे यह सिध्द होता है कि आन्तरिक अनुभूति के लिए बाह्य अनुभूति का होना आवश्यक है। बाह्य अनुभूति के अभाव में आन्तरिक अनुभूति संभव नहीं है। आन्तरिक अनुभूति प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष है, जो बाह्य अनुभूति पर आधारित है। इससे देकार्त के मतश आन्तरिक अनुभूतियाँ प्रत्यक्ष एवं बाह्य कल्पना है का खण्डन होता है।

17.6 बर्कले के विज्ञानवाद खण्डन–

वर्कले के विज्ञानवाद की आधारभूत स्थापना/ सत्ता अनुभवमूलक है अर्थात् सत्ता उसी की है जिसका प्रत्यक्ष होता है, जिसका प्रत्यक्ष नहीं होता है उसकी सत्ता नहीं हैश से असहमति व्यक्त करते हुए काण्ट कहते हैं कि वस्तुएँ देश में स्थित स्थायी तत्त्व हैं। यही हमारे आत्म ज्ञान के माध्यम हैं। ये मन की रचना न होकर वस्तुनिष्ठ सत्ताएँ हैं। यदि पदार्थ हमारे मन की रचना होते तो इनकी वस्तुगत स्थायी पृष्ठभूमि न होती। ऐसी स्थिति में विज्ञानों का प्रवाह, निरंतर परिवर्तन किसी बाह्य वस्तु का निर्देशन करके हमारी ही मनःस्थिति का निर्देश करते, जो कि स्वतः परिवर्तनशील है। ऐसी स्थिति में विज्ञानों के मध्य कोई सम्बन्ध या विज्ञानों की एकता स्थापित कर पाना संभव न होता और विज्ञानों के मध्य किसी सम्बन्ध या एकता के अभाव में अनुभव भी संभव न हो पाता। अतः अनुभव को संभव बनाने के लिए यह आवश्यक है कि देश में किसी स्थायी द्रव्य की सत्ता को स्वीकार किया जाये जो हमारे द्वारा प्रत्यक्षीकृत पदार्थों के विज्ञानों का केन्द्रबिन्दु हो। इसके साथ ही काण्ट स्वयं में वस्तु के सिद्धांत का भी प्रतिपादन करते हैं, जिसके अनुसार वस्तु की वस्तुनिष्ठ सत्ता है। इस प्रकार काण्ट वर्कले के आत्मनिष्ठ विज्ञानवाद का खण्डन करते हैं।

3.7 ज्ञान के सम्बन्ध में काण्ट का दृष्टकोण–

देकार्त एवं वर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन करने के उपरान्त काण्ट इन्द्रियानुभविक ज्ञान के सम्बंध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। इद्रियानुभविक ज्ञान के सम्बंध में काण्ट का दृष्टिकोण वस्तुवादी है। वस्तुवाद के अनुसार दृश्य जगत की वस्तुएँ यथारूप में सत्य हैं। प्रत्यक्षीकृत वस्तुएँ देशगत स्थित स्वतंत्र वस्तुएँ हैं। ये मन की रचना नहीं है। ये शुद्ध बौद्धिक वस्तुएँ है जो अपने आप में आत्म ज्ञान या आन्तरिक अनुभूति उत्पन्न करने में सक्षम हैं। इसका अस्तित्व ज्ञाता के अस्तित्व पर निर्भर नहीं करता है। ज्ञाता के अभाव में भी यह अस्तित्ववान रहेगी। समस्त मानवीय अनुभूतियाँ देशगत स्थायी तत्त्व की अपेक्षा रखती हैं। यद्यपि काण्ट वस्तुवाद को स्वीकार करते हैं तथापि वे अपने मूल सिद्धांत ज्ञात पदार्थ अनिवार्यतः मानव मन सापेक्ष है तथा उससे नियंत्रित है का परित्याग नहीं करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि काण्ट उस अर्थ में वस्तुवादी नहीं है जिस अर्थ में लॉक जैसे विचारक वस्तुवाद को स्वीकार करते हैं। काण्ट सामान्य अर्थ में विज्ञानवादी भी नहीं है, जिस अर्थ में प्लेटो, देकार्त एवं वर्कले जैसे विचारक विज्ञानवाद को स्वीकार करते हैं। वे प्लेटो के विज्ञानवाद से स्वंय को पृथक करते हैं और कहते है कि प्लेटो रहस्यात्मक विज्ञानवादी हैं। काण्ट इन्द्रियानुभविक रूप से वस्तुवादी एवं प्रागनुभविक रूप से विज्ञानवादी हैं। काण्ट सामान्य रूप से वस्तुवादी नहीं हैं क्योंकि उनकी मान्यता है कि देश–काल सहित समस्त जगत प्रपंच आभास हैं। किन्तु वे विज्ञानवादी मान्यता श्आभास भ्रातियाँ हैं, को स्वीकार नहीं करते हैं।

काण्ट के कुछ आलोचक काण्ट की तुलना वर्कले से करते हैं क्योंकि वे काण्ट द्वारा प्रस्तुत अनुभवातीत शब्द के सम्यक् अर्थ में तुलना को ग्रहण नहीं कर पाते हैं। इसके समाधान हेतु काण्ट ने अनुभवातीत शब्द के स्थान पर आकारिक या आलोचनात्मक शब्द के प्रयोग को प्राथमिकता दी है। काण्ट

अपनी दार्शनिक स्थिति एवं अनुभवातीत शब्द को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यह शब्द अनुभव से पूर्णतः विच्छेद का सूचक नहीं है अपितु अनुभवातीत से तात्पर्य उन शर्तों से है जो अनुभव को संभव बनाती हैं।

17.8 वस्तुवाद के साथ विज्ञानवाद की स्वीकारोक्ति क्यों?–

काण्ट वस्तुवाद को दृढता से स्वीकार करने और देकार्त एवं वर्कले के विज्ञानवाद का खण्डन करने के उपरान्त भी विज्ञानवाद के प्रति अपने आकर्षण को समाप्त नहीं कर पाते हैं। वस्तुवाद के साथ विज्ञानवाद को स्वीकार करने का कारण ज्ञान की अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता की व्याख्या करना था । काण्ट यह भी भलीभाँति जानते थे कि इंद्रियानुभव के माध्यम से ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता का समावेश नहीं किया जा सकते है। पदार्थों की ज्ञाता से सर्वथा स्वतंत्र सत्ता मान लेने से इस समस्या का समाधान संभव नही है। इस समस्या के समाधान हेतु वे पदार्थों को शुद्ध बुद्धि के अनुकूल स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है अर्थात् बुद्धि प्रकृति के असम्बध्द एवं क्षणिक संवेदनों को सम्बध्द व्यवस्थित और नियंत्रित रूप देकर प्राकृतिक नियमों/ज्ञान में सार्वभौमिकता एवं अनिवार्यता का समावेश करती है। बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है। काण्ट की इस धारणा से स्पष्ट होता है कि बाह्य जगत वस्तुवादियों की धारणा का जगत नहीं है, वह आभास है। वे कहते हैं कि बाह्य जगत को अपने आप में वास्तविक मान लेने पर उसके स्वरूप को समझने की प्रक्रिया में असाध्य विरोधाभास उत्पन्न हो जायेंगे, जिसे काण्ट विप्रतिषेध कहते हैं।

17.9 निष्कर्ष–

विज्ञान के प्रति काण्ट का दृष्टिकोण उसके दार्शनिक चिन्तन की परिपक्वता को प्रदर्शित करता है, जिसके अन्तर्गत वे जगत की वस्तुओं को भ्रामक एवं मन की रचना मानने वाले देकार्त एवं वर्कले के विचारों का खण्डन करते हैं और वस्तुओं की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करते हैं। काण्ट विज्ञानवाद को भी स्वीकार करते हैं ताकि ज्ञान में अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता का समावेश किया जा सके। काण्ट का विज्ञानवाद प्लेटो, देकार्त एवं वर्कले के विज्ञानवाद से भिन्न मौलिक विचार है जिसमें बुद्धिवाद एवं अनुभववाद दोनों की अच्छी बातों का समावेश करने का प्रयास करते हैं।

17.10 शब्दावली

(1) ज्ञाता – ज्ञान प्राप्त करने वाला
(2) ज्ञेय – जिसके विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा रहा है।

17.11 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न–
(1) विज्ञानवाद को परिभाषित करें।
(2) काण्ट के विज्ञानवादी मत को प्रस्तुत करें।
(3) देकार्त के विज्ञानवादी विचार का वर्णन करें।
दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–
(1) विज्ञानवाद के विचार को प्रस्तुत करते हुए देकार्त एवं वर्कले के विज्ञानवादी मतों का वर्णन करे।
(2) काण्ट के विज्ञानवाद का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा देकार्त एवं वर्कले के मतों का खण्डन प्रस्तुत करें।

17.12 उपयोगी पुस्तकें

(1) क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन – भाग –1 व 2 – इमैनुअल काण्ट
(2) काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

MAPH 113

खण्ड–6 – संवृत्ति एवं परमार्थ

प्रस्तावना–

काण्ट ज्ञान के लक्षण के रूप में यथार्थता, अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता को मानते हैं । इन विशेषताओं से युक्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए काण्ट अपनी ज्ञानमीमांसा में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना की सिद्ध करते हैं और संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय को ही वास्तविक ज्ञान कहते हैं। इसके लिए इंद्रिय संवेदन एवं बुद्धि के सम्प्रत्यय दोनों आवश्यक हैं। इन्द्रिय संवेदनों से ज्ञान की कच्ची सामग्री प्राप्त होती है, जिसे बुद्धि – विकल्पों द्वारा ज्ञान का स्वरूप दिया जाता है। यह ज्ञान संवृत्ति से सम्बंधित होता है। असंवेद्य वस्तुएँ इन्द्रियानुभव का विषय न होने के कारण ज्ञान का विषय न होकर चिंतन का विषय होती हैं। यह प्रज्ञा के प्रत्ययों आत्मा, जगत एवं ईश्वर से सम्बंधित होने के कारण परमार्थ के अन्तर्गत आती हैं। यहाँ प्रज्ञा बुद्धि विकल्पों का अनुचित प्रयोग कर परमार्थ का ज्ञान प्राप्त करना चाहती है जिससे भ्रम उत्पन होता है। यह भ्रम प्रज्ञा के तीनों प्रत्ययों – आत्मा, जगत एवं ईश्वर के सम्बंध मे उत्पन्न होता है जिसे क्रमशः अतीन्द्रिय मनोविज्ञान, अतीन्द्रिय सृष्टि विज्ञान एवं अतीन्द्रिय ईश्वरमीमांसा कहते हैं।

खण्ड–6

इकाई–18– संवृत्ति एवं परमार्थ तथा भ्रान्ति का तर्कशास्त्र

संरचना–

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 संवृत्ति का आशय

18.3 परमार्थ का अर्थ

18.4 संवृत्ति एवं परमार्थ में भेद

18.5 स्वलक्षण वस्तु सिद्धान्त के विरुद्ध आपत्तियाँ

18.6 भ्रान्ति का तर्काभास

18.7 अनुभवावीत भ्रांति

18.8 अनुभवातील भ्रांति का अधिष्ठान – प्रज्ञा

18.9 तर्क बुद्धि एवं प्रज्ञा में भेद

18.10 निष्कर्ष

18.11 शब्दावली

18.12 प्रश्नावली

18.13 उपयोगी पुस्तकें

.....0000000.....

18.0 उद्देश्य– प्रस्तुत इकाई संवृति एवं परमार्थ तथा भ्रान्ति का तर्कशास्त्र के अन्तर्गत संवृति एवं परमार्थ के आशय को सविस्तार स्पष्ट करते हुए संवृत्ति एवं परमार्थ के भेद का वर्णन किया गया है। इसके विरुद्ध आलोचकों द्वारा उठायी गयी आपत्तियों के दर्ज करते हुए उनका समुचित निराकरण करने का प्रयास किया गया है। तत्पश्चात भ्रांति के तर्कशास्त्र को परिभाषित करते हुए अनुभवातीत भ्रान्ति को स्पष्ट किया गया है। अनुभवातीत भ्रान्ति के अधिष्ठान के रूप में प्रज्ञा का वर्णन करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया हैं।

18.1 प्रस्तावना– काण्ट अपनी ज्ञानमीमांसा में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभावना को सिध्द करते हैं और यह स्थापित करते हैं कि संश्लेषात्मक प्रागनुभविक (Synthetic Apriori) निर्णय ही वास्तविक ज्ञान है। यह इंद्रिय संवेदनों एवं बुद्धि के सम्प्रत्ययों द्वारा प्राप्त होता है। ज्ञान का आरम्भ स्वलक्षण वस्तुओं से होता है और संवेदन संस्थानों से आकर योजना तक होते हुए बुद्धि के सम्प्रत्ययों तक पहुंचता है, तत्पश्चात बुद्धि विकल्पों से समन्वित होकर आत्मा तक पहुँचता है। तब ज्ञान की प्राप्ति की प्रक्रिया पूर्ण होती है। ज्ञान प्राप्ति में इंद्रिय संवेदन अत्याधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ज्ञान की प्रक्रिया में यह

कच्ची सामग्री के रूप में कार्य करते हैं। इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में ज्ञान में कभी सत्यता का समावेश नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह है कि जिन वस्तुओं के हमें इन्द्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं, वे वस्तुएँ हमारे ज्ञान का विषय नहीं हो सकती हैं। ऐसी वस्तुओं को ज्ञान की परिधि के अन्तर्गत शामिल नहीं किया जाता है। इसी आधार पर काण्ट कहते हैं कि स्वलक्षाण वस्तुएँ देश–काल रूपी संवेदना के आकारों की सीमा के बाहर होने के कारण असंवेद्य है अर्थात् इनके इंद्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं। इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में स्वलक्षण वस्तुओं को बुद्धि विकल्पों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता है। अतः काण्ट इन्हें अज्ञेय (Unknowledgable) कहते हैं। सभी अतीन्द्रिय वस्तुएँ (Supersensible objects) अज्ञेय हैं क्योंकि ये असंवेद्य है। इससे काण्ट स्थापित करते हैं कि जहाँ संवेदना नहीं, वहाँ ज्ञान भी नहीं होता है।

काण्ट कहते हैं कि वास्तव में वस्तुओं को हम उस रूप में नहीं जानते हैं जिस रूप में वे हैं, बल्कि वस्तुओं का ज्ञान हमें संवेदन संस्थानों और बुद्धि विकल्पों के नित्य साँचों के माध्यम से ही होता है। जब तक इन्द्रिय संवेदनों के ऊपर संवेदन संस्थानों एवं बुद्धि विकल्पों को आरोपित नहीं किया जायेगा तब तक हमें ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। किन्तु जैसे ही इन्द्रिय संवेदनों के ऊपर संवेदन संस्थानों एवं बुद्धि विकल्पों को अरोपित किया जाता है तो परमार्थ के पदार्थ ज्ञान की परिधि से बाहर हो जाते हैं। काण्ट अपने दर्शन में इस समस्या की संवृत्ति (Phenomenon) एवं परमार्थ (Noumenon) के भेद के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

18.2 संवृत्ति का आशय – काण्ट कहते हैं कि कोई भी वस्तु संवेदन के माध्यम से ही ग्रहण हो सकती है। संवेदन के माध्यम देश–काल मानव मन की आत्मगत विशेषताएं हैंश, स्वलक्षण वस्तु की नहीं । स्वलक्षण वस्तु का प्रदत्त होना असंभव है और जो प्रदत्त हो सकता है वह संवेदना के आकारों द्वारा पूर्व निर्धारित कर दिया जाता है। इस प्रकार जो कुछ संवेदना के माध्यम से प्राप्त होता है, वह स्वलक्षण वस्तु से भिन्न होता है। उसी को काण्ट संवृत्ति या आभास कहते हैं। ये मानवीय अनुभव में आने वाले विषय हैं। इसके संवेदन इन्द्रियों के माध्यम से देश –काल में ग्रहण किये जाते हैं। ये इन्द्रियगोचर हैं। इनकी व्यावहारिक सत्ता होती है। संवृत्ति के विषयों का ज्ञान यथार्थ (Real), सार्वभौम (Universal) एवं अनिवार्य होता है। उदाहरण स्वरूप जब हम किसी स्थान पर किसी रस्सी को देखते हैं तो रस्सी की संवेदना देश–कल से अविछिन्न होकर हमें प्राप्त होती हैं, बुद्धि–विकल्प इसे व्यवस्थित कर ज्ञान का स्वरूप देते हैं। इस प्रकार हमें रस्सी का ज्ञान प्राप्त होता है। यह सांवृत्तिक विषय का ज्ञान है, जो यथार्थ, सार्वभौम एवं अनिवार्य होता है। यह दृष्य के भय की रचना न होकर व्यावहारिक सत् है।

यहाँ यह सपष्ट कर देना अनिवार्य है कि सांवृत्तिक, व्यावहारिक सत् स्वलक्षण वस्तु नहीं है। व्यवहार या संवृत्ति की पृष्ठभूमि में स्वलक्षण वस्तु विद्यमान रहती है। स्वलक्षण वस्तु इन्द्रियगोचर न होकर केवल बुद्धिगोचर होती है। दृष्टा केवल व्यावहारिक सत् से सम्बंधित होता है, वह स्वलक्षण वस्तु से निरपेक्ष होता है। स्वलक्षण वस्तु (Things in themselves) निष्प्रपंच होती है। मानव की एक निश्चित ज्ञान संरचना है और इसी ज्ञान संरचना के आधार पर जगत का स्वरूप भी निर्धारित होता है। जिस जगत को हम जानते हैं वह बुद्धि द्वारा निर्मित है। किन्तु हमारी बुद्धि की यह सीमा है कि वह वस्तु को उसके मूल स्वरूप –में ग्रहण नहीं कर सकती है। यही कारण है कि वस्तु का मूल स्वरूप अज्ञात एवं अज्ञेय रह जाता है।

18.3 परमार्थ का अर्थ – परमार्थ से तात्पर्य ऐसे विषयों से है जो संवेद्य अनुभव के विषय न होकर मात्र बौद्धिक चिन्तन के विषय होते हैं। परमार्थ के विषयों के इन्द्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं और इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में परिमार्थिक विषयों के सम्बन्ध में कोई निर्णय प्रस्तुत नही किया जा सकता है। ये देश–काल से अविछिन्न न होकर देश–कालातीत होते हैं। अतः परमार्थ अज्ञेय रह जाता है। यद्यपि परमार्थ

बौध्दिक संवेदना का विषय है किंतु मानव की ज्ञान संरचना इस प्रकार कि उसमें बौध्दिक संवेदनों को ग्रहण करने की क्षमता नहीं पायी जाती है।

परमार्थ को अज्ञेय माना जाता है किंतु परंमार्थ की सम्यक समझ के लिए अज्ञेय को समझ लेना समीचीन है। अज्ञेय एक ज्ञानमीमांसीय अवधारणा है। काण्ट कहते हैं कि ज्ञान सदैव परामर्शात्मक या निर्णयात्मक होता है अर्थात् ज्ञान की अभिव्यक्ति निर्णय (Judgement) या परामर्श के रूप में होती है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिसे परामर्श के रूप में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है, वह ज्ञान की श्रेणी में समाहित नहीं है। परमार्थ के विषय में परामर्शात्मक रूप में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि परमार्थ के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है अपितु यह कि उसे परामर्श के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार अज्ञेय पूर्ण अज्ञान की स्थिति न होकर उसे परामर्श के रूप में व्यक्त न कर पाने की स्थिति है।

यद्यपि तर्क बुद्धि प्रागनुभविक होती है तथापि वह संवेदना की उन सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर सकती है, जिसके अन्तर्गत वस्तु प्रदत्त होती हैं। तर्कबुद्धि प्रागनुभविक रूप से केवल इन्द्रियानुभव की सामान्य रूपरेखा का निर्देश कर सकती है। अनुभव का विषय केवल आभास होता है। जो आभास नहीं, वह अनुभव का विषय नहीं है जबकि परमार्थ आभास नहीं है। साथ ही तर्कबुद्धि के सम्प्रत्ययों का केवल इन्द्रियानुभविक प्रयोग ही संभव है एवं उचित है तथा परमार्थ पर इनका प्रयोग असंभव एवं अनुचित है।

चूँकि बुद्धि विकल्पों के उद्‌गम स्रोत संवेदना शक्ति न होकर तर्कबुद्धि के संप्रत्यय हैं। इसलिए उद्‌गम स्रोत की दृष्टि से बुद्धि विकल्प अनुभव से सदैव भिन्न एवं प्रागनुभविक हैं। इस कारण ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है कि बुद्धि विकल्प प्रागनुभविक होने के कारण इन्द्रियानुभविक विषयों से परे जाकर अनुभवातीत विषयों के साथ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। बुद्धि विकल्प इन्द्रियानुभविक विषयों से परे जाकर अनुभवातीत विषयों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं, केवल उन पर विचार (चिन्तन) कर सकते है काण्ट ज्ञान एवं विचार में भी अन्तर करते हैं। विचार करना विशुद्ध सम्प्रत्ययात्माक क्रिया है, जिसके लिए संवेदनों की आवश्यकता नहीं होती है। इसीलिए अनुभवातीत विषयों पर भी विचार किया जा सकता है किन्तु ज्ञान की प्रक्रिया के लिए कुछ शर्तों का पूरा होना अनिवार्य है। जिसमें देश–काल में प्राप्त इन्द्रिय संवेदनों को बुद्धि विकल्पों से गुजरना पड़ता है।

18.4 संवृत्ति एवं परमार्थ में भेद– काण्ट समस्त विषयों को संवृत्ति एवं परमार्थ नामक दो श्रेणियों के अन्तर्गत समाहित करते हैं। प्रत्येक वस्तु या तो संवृत्ति है या परमार्थ है। संवृत्ति एवं परमार्थ में निम्मलिखित भेद हैं–

(1) संवृत्ति के इन्द्रिय संवेदन प्राप्त होते हैं इसलिए संवृत्ति इंद्रियगोचर होता है जबकि परमार्थ के इंद्रिय संवेदन प्राप्त नहीं होते हैं इसलिए परमार्थ इंद्रियगोचर नहीं होता है किन्तु परमार्थ बौद्धिक संवेदनों से युक्त होने के कारण बुद्धिगोचर होता है।

(2) संवृत्ति के इंद्रिय संवेदन प्राप्त होते हैं इसलिए यह ज्ञेय होता है जबकि परमार्थ इन्द्रिय सवेदनों के अभाव में अज्ञेय होता है किंतु परमार्थ बुद्धिगोचर होने के कारण चिंतन का विषय होता है।

(3) संवृत्ति देश –काल से अविछिन्न होता है और देश–काल में ही इसके इन्द्रिय संवेदन प्राप्त होते जबकि परमार्थ देशकालातीत है, अतः परमार्थ की संवेदना प्राप्त नहीं होती है।

(4) संवृत्ति दृष्टा सापेक्ष होता है क्योंकि दृष्टा द्वारा इसके इन्द्रियानुभविक संवेदन प्राप्त किये जाते हैं जबकि परमार्थ दृष्टा निरपेक्ष होता है क्योंकि यह प्रागनुभविक होता है।

18.5 स्वलक्षण वस्तु सिध्दान्त के विरुध्द आपत्तियाँ –

काण्ट के स्वलक्षण वस्तु सिध्द्धान्त के विरुद्ध आलोचकों ने निम्नलिखित आपत्तियाँ उठायी हैं–

(1) हेगल स्वलक्षण वस्तु को वदतोव्याघात कहते हैं क्योंकि जो विचार आभास एवं सत् का भेद करता है, उसके लिए सत् अगम्य सत्ता नही होती है। हेगल अपने दर्शन में सत् एवं विचार के अंतर को समाप्त कर देते हैं। हेगल की प्रसिद्ध उक्ति है –सत् बौद्धिक है, बौद्धिक सत् है। (Real is rational Rational is real) ।

(2) फिक्टे कहते हैं कि काण्ट ने स्वयं स्वलक्षण वस्तु के सिद्धांत को गम्भीरता से नहीं लिया होगा और यदि उसने ऐसा किया है तो काण्ट की अद्भुत कृति 'क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन' केवल एक संयोग की रचना है तथा यह सिध्दान्त दैवीय प्रेरणा से लिखे गये महान ग्रंथ का कमजोर पक्ष है। फिक्टे के इस कथन में काण्ट की प्रशंसा एवं आलोचना दोनों समाहित हैं।

(3) याकोवी के अनुसार काण्ट के दर्शन में स्वलक्षण वस्तु के बिना प्रवेश करना असंभव है किन्तु उसके साथ उससे बाहर निकलना भी असंभव है।

(4) काण्ट की स्वलक्षण वस्तु की मान्यता आत्मघाती है क्योंकि एक ओर तो हम वस्तु को स्वीकार करते हैं. वहीं दूसरी ओर यह कहते हैं उसे जाना नहीं जा सकता है। किसी वस्तु के बारे में यह कहना कि 'वह वस्तु है' उसके सम्बंध में एक प्रकार का ज्ञान है। इस स्थिति में वस्तु को अज्ञात एवं अज्ञेय कैसे कहा जा सकता है?

यदि काण्ट के दर्शन की गहन समीक्षा की जाये तो हम इन आपत्तियों का समुचित निराकरण कर सकते हैं। काण्ट बर्कले के आत्मनिष्ठ विज्ञानवाद का खण्डन कर वस्तुवाद की स्थापना करते हैं। वस्तुवाद की स्थापना के लिए आवश्यक है कि वस्तु की वास्तविकता को वस्तुनिष्ठ आधार प्रदान किया जाये, जिससे कि वस्तुजगत मन की रचना न होकर वास्तविक हो जाये। काण्ट इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वलक्षण वस्तु के सिध्दान्त का प्रतिपादन करते है। यह काण्ट की ज्ञानमीमांसा को वस्तुनिष्ठ आधार प्रदान करता है।

कुछ आलोचक काण्ट को स्वलक्षण वस्तु को बौध्दिक प्रत्यय के रुप में स्वीकार करने की सलाह देते हैं किन्तु ऐसा करने पर स्वलक्षण वस्तु की भूमिका वह नहीं रह जायेगी जो काण्ट चाहते हैं क्योंकि बौध्दिक प्रत्यय आकार के होते हैं और आकार रिक्त होते हैं। ये वास्तविक इन्द्रियानुभविक जगत के आधार नहीं हो सकते हैं। स्वलक्षण वस्तु को बौध्दिक प्रत्यय मानने पर इसकी परिणति संवृत्तिशास्त्र (फेनामेनोलॉजी) के रुप में होती है।

काण्ट द्वारा स्वलक्षण वस्तु को अज्ञात एवं अज्ञेय कहने के मूल में काण्ट का विचार है कि जानने की प्रक्रिया आभासों या संवृत्ति तक सीमित है। इसके लिए संवेदनों का होना अनिवार्य है। किंतु इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि जो जानने योग्य नहीं है उस पर विचार भी नहीं किया जा सकता है। यहाँ अज्ञात एवं अज्ञेय तकनीकी अर्थ में प्रयुक्त किये गये शब्द हैं।

इस प्रकार काण्ट मानवीय ज्ञान की मूलभूत संरचना के माध्यम से संवृत्ति एवं परमार्थ के भेद को स्पष्ट करते हुए यह दिखाते हैं कि केवल इन्द्रयानुभविक विषयों का ज्ञान ही संभव है। यदि हम इन्द्रियानुभव की सीमा का उल्लंघन करके अनुभवातीत विषयों पर उसका प्रयोग करते हैं तो अनुभवातीत भ्रान्ति का जन्म होता है। ईश्वर, आत्मा एवं जगत अनुभवातीत सत्ताएं हैं, जो ज्ञान का विषय नहीं हैं अपितु आस्था का विषय हैं। ये सैध्दान्तिक, ज्ञान की स्वीकृति एवं अस्वीकृति का भी विषय नहीं हैं। अब ज्ञान की

प्रतिष्ठा के लिए काण्ट अनुभवातीत द्वन्द न्याय में आस्था को प्रतिष्ठित करते हैं। तर्कबुध्दि की सीमा के आगे धर्म एवं नैतिकता की सीमा प्रारम्भ होती है।

18.6 भ्रान्ति का तर्कशास्त्र– काण्ट अनुभवातीत तर्कशास्त्र में यथार्थ ज्ञान की संरचना एवं शर्तों का विवेचन करने के कारण इसे सत्य का तर्कशास्त्र कहते है तथा अनुभवातीत द्वन्द्वन्याय के अन्तर्गत बुद्धि के सम्प्रत्ययों के अनुचित प्रयोग से उत्पन होने वाली भ्रातियों का विवरण होने के कारण श्भ्रान्ति का तर्कशास्त्र कहते हैं। भ्रान्ति के तर्कशास्त्र का उद्देश्य अतीन्द्रिय भ्रान्ति के स्वरूप का उद्घाटन करना है ताकि उनके स्वरूप को समझकर उनसे बचा जा सके।

18.7 अनुभवातीत भ्रान्ति – बुद्धि के सम्प्रत्ययों के अनुचित प्रयोग से उत्पन्न होने वाली भ्रान्ति को अनुभवातीत भ्रान्ति (Transcendental Illusions) कहा जाता है। अनुभवातीत भ्रान्ति का अधिष्ठान प्रज्ञा (Reason) है। काण्ट कहते हैं कि मानव में अपनी सीमाओं के उल्लंघन की स्वाभाविक प्रवृत्ति पायी जाती है। इसके तहत वह बुध्दि के सम्प्रत्ययों के प्रयोग की सीमा का उल्लंघन कर अनुभवातीत तत्वों को जानने का प्रयास करता है। जब प्रज्ञा बुद्धि-विकल्पों की बलात् उपयोग अनुभवातीत सत्ताओं पर करती, है तो यह बुद्धि विकल्पों का अनुचित प्रयोग या दुरुपयोग है, जिसके फलस्वरूप अतीन्द्रिय भ्रम की उत्पत्ति होती है। तत्वमीमांसीय चिन्तन के अन्तर्गत प्रज्ञा बुद्धि के सम्प्रत्ययों के माध्यम से तत्त्व, मीमांसीय सत्ताएँ यथा–ईश्वर, आत्मा, जगत इत्यादि को जानने का प्रयास करती है, किन्तु तत्वमीमांसीय सत्ताएँ बुद्धि की सीमा से परे हैं, अतः उन्हें बुद्धि विकल्पों से नहीं जाना जा सकता है।

काण्ट अनुभवातीत भ्रान्ति के कुछ समानार्थक प्रतीत होने वाले शब्दों से अन्तर को स्पष्ट करते हैं। अनुभवावीत भ्रान्ति इन्द्रियानुभविक भ्रान्ति से भिन्न है। इन्द्रियानुभविक भ्राति का कारण बुद्धि के नियमों पर कल्पना का प्रभाव है जबकि अनुभवातीत भ्रान्ति का कारण बुद्धि के नियमों का अनुचित प्रयोग है। यहाँ बुध्दि के नियमों की सीमा का उल्लंघन होता है। अनुभवातीत भ्रान्ति संभाव्य ज्ञान से भी भिन्न है क्योंकि संभाव्य ज्ञान अपूर्ण ज्ञान है। संभाव्य ज्ञान सत्य होता है। अनुभवातीत भ्रान्ति, तार्किक भ्रान्ति से भी भिन्न है क्योंकि तार्किक भ्रान्ति तर्क के नियमों में असावधानी से उत्पन्न होती है। इसे पुनरीक्षण के द्वारा दूर किया जा सकता है जबकि अनुभवातीत भ्रान्ति को जानकर भी दूर नहीं किया जा सकता है क्योंकि स्वंय बुध्दि (शुद्ध बुद्धि/प्रज्ञा) ही इस भ्रांति का अधिष्ठान है। यही कारण है कि अनुभवातीत भ्रान्ति को समझा जा सकता है और सावधानीपूर्वक इससे बचा जा सकता है किन्तु इसका निराकरण नहीं किया जा सकता है।

18.8 अनुभवावीत भ्राति का अधिष्ठान –प्रज्ञा –

काण्ट कहते हैं कि बुद्धि नियमों का संकाय है जबकि प्रज्ञा (Reason) सिद्धातों का संकाय है। प्रज्ञा के सिद्धान्त नियामक प्रकृति के होते हैं। हमारा ज्ञान इन्द्रिय सवेदनों से प्रारम्भ होकर बुद्धि से होता हुआ प्रज्ञा (शुद्ध बुद्धि) पर समाप्त हो जाता है। प्रज्ञा बुद्धि एवं अनुभव की सीमा का अतिक्रमण कर अनुभवातीत सत्ताओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहती है। तो प्रज्ञा बुद्धि को बुद्धि विकल्पों के अनुचित प्रयोग के लिए बाध्य करती है, इससे अनुभवातीत भ्रान्ति का जन्म होता है। काण्ट कहते हैं कि अनुभवातीत सत्ताओं (तत्वमीमांसा) की बुद्धि के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। तत्वमीमांसा अज्ञेय है। यहाँ अज्ञेय होना तत्वमीमांसा का निरर्थक होना नहीं है।

18.9 तर्कबुद्धि एवं प्रज्ञा में भेद–

तर्कबुद्धि नियमों का संकाय है जहाँ नियमों (बुद्धि विकल्पों) के माध्यम से आभासों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया जाता है जबकि प्रज्ञा सिद्धान्तोंश का संकाय है जहाँ सिद्धातों के माध्यम से तर्कबुद्धि के नियमों में एकता स्थापित की जाती हैं। तर्क बुद्धि का सम्बंध इंद्रियानुभव से है जबकि प्रज्ञा इन्द्रियानुभव से सम्बन्ध स्थापित नहीं करती है, वह केवल तर्कबुद्धि से सम्बंध स्थापित करती है। काण्ट तर्कवाद का स्रोत सम्प्रत्ययों/कोटियों को तथा प्रज्ञा का स्रोत प्रत्ययों (Ideas) को मानते हैं। तर्कबुद्धि निर्णयों के द्वारा इन्द्रिय संवेदनों में एकता स्थापित करने का प्रयास करती है, जो पूर्ण नहीं होती है क्योंकि निर्णय से उच्चतर अनुमान होता है, जिसमें न्यायवाक्यों के रूप में विभिन निर्णयों में एकता स्थापित की जाती है। उदा० – सभी मनुष्य मरणशील हैं। (निर्णय) –राम मनुष्य है। (निर्णय)

अतः राम मरणशील है। (निर्णयों की एकता)

18.10 निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जिस प्रकार बुद्धि की कोटियाँ वस्तु जगत को निर्धारित करने का कार्य करती हैं उसी प्रकार प्रज्ञा अपने अनुभवावीत प्रत्ययों – ईश्वर, आत्मा, जगत के चिन्तन के द्वारा अनुभवातीत सत्ताओं का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करती है। प्रज्ञा का यह अनुचित प्रयास अनुभवातीत भ्राति का कारण बनता है। आत्मा से सम्बंधित युक्त मनोविज्ञान, निरपेक्ष कारणता से युक्त सृष्टि विज्ञान एवं ईश्वर के प्रत्यय से युक्त धर्म विज्ञान का जन्म होता है। जब बुद्धि विकल्पों का प्रयोग इन अनुभवातीत प्रत्ययों पर किया जाता है, तो तीनों विज्ञान अन्तर्विरोधों से ग्रस्त हो जाते हैं। बुध्दिपरक, मनो– विज्ञान में इन अन्तर्विरोधों को तर्काभास (Paralogisms), सृष्टि विज्ञान में विप्रतिषेध (Antinomies) तथा ईश्वर ज्ञान / धर्म विज्ञान में व्याघात (Contdeleteradictions) कहते हैं।

18.11 शब्द कुंजी

(1) असंवेद्य – जिनकी संवेदन प्राप्त न हो

(2) अधिष्ठान – आश्रय

18.12 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1 संवृत्ति से आप क्या समझते हैं?

2 परमार्थ के अर्थ को स्पष्ट करें।

3 तर्काभास को परिभाषित करे।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः–

1. संवृत्ति एवं परमार्थ को परिभाषित करते हुए दोनों के मध्य अन्तर को स्पष्ट करें।
2. अनुभवातीत भ्रांति की व्याख्या करें। इसके अधिष्ठान को भी स्पष्ट करें।
3 प्रज्ञा को परिभाषित करते हुए तर्कबुद्धि से उसके भेद को बतायें।

18.13 उपयोगी पुस्तकें

1. क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन – इमैनुअल काण्ट

2. पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव एवं विकास – हरिशंकर उपाध्याय

खण्ड–6

इकाई :19 अतीन्द्रिय मनोविज्ञान और अतीन्द्रिय सृष्टिशास्त्र

संरचना :–

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 तर्काभास का अर्थ

19.3 तर्काभास का प्रकार

19.3.1 द्रव्यता का तर्काभास

19.3.2 सरलता का तर्काभास

19.3.3 व्यक्तित्व का तर्का भास

19.3.4 प्रत्ययात्मकता का तर्काभास

19.4 अतीन्द्रिय सृष्टि विज्ञान

19.5 विप्रतिषेध का अर्थ

19.6 विप्रतिषेध के प्रकार

19.6.1 प्रथम विप्रतिषेध

19.6.2 द्वितीय विप्रतिषेध

19.6.3 तृतीय विप्रतिषेध

19.6.4 चतुर्थ विप्रतिषेध

19.7 निष्कर्ष

19.8 शब्दावली

19.9 प्रश्नावली

19.10 उपयोगी पुस्तकें

.....00.....

19.0 उददेश्य –

प्रस्तुत इकाई 'अतीन्द्रिय मनोविज्ञान एवं अतीन्द्रिय सृष्टिशास्त्र' के अन्तर्गत सर्वप्रथम अतीन्द्रिय मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए तर्काभास के अर्थ को स्पष्ट किया गया है। तर्काभास के चारों प्रकारों का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात अतीन्द्रिय सृष्टिशास्त्र की पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए विप्रतिषेध को परिभाषित किया गया है। अन्त में विप्रतिषेध के चारों प्रकारों की व्याख्या –विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

19.1 प्रस्तावना–

काण्ट के पूर्ववर्ती बुध्दिवादी दार्शनिकों यथा लाइवनीज एवं वुल्फ इत्यादि का मानना था कि जिस प्रकार गणित या तर्कशास्त्र का विज्ञान होता है, उसी प्रकार आत्मा भी विज्ञान संभव है। गणित एवं विज्ञान के समान ही आत्मा के विज्ञान में भी इन्द्रियानुभव का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है। ऐसी धारणा पर आधारित मनोविज्ञान को काण्ट अतीन्द्रिय मनोविज्ञान या युक्त मनोविज्ञान कहते हैं। काण्ट कहते हैं कि यह बुद्धि विकल्पों के अनुचित प्रयोग का परिणाम है। अतः मनोविज्ञान आत्मा के सम्बंध में यथार्थ ज्ञान न देकर भ्रामक ज्ञान देता है।

काण्ट कहते हैं कि आत्मा विशुद्ध ज्ञाता है। यह समस्त ज्ञान की प्रागपेक्षा होने के कारण स्वतः सिद्ध है। चूँकि आत्मा विषयी है, अतरू इसका प्रयोग एक विषय के रूप में नहीं किया जा सकता है। आत्मा प्रज्ञा का सम्प्रत्यय होने के कारण अतीन्द्रिय है इसलिए इस पर कोई आनुभविक विधेय लागू नहीं किया जा सकता है। आत्मा को चितंनशील द्रव्य के रूप में स्वीकार करने के कारण परम्परागत मनोविज्ञान अनेक तर्काभासों से ग्रस्त हो जाता है।

19.2 तर्काभास का अर्थ–

आत्मा प्रज्ञा का प्रत्यय है, जिसका सम्बन्ध अतीन्द्रिय या पारमार्थिक जगत से है। पारमार्थिक प्रत्यय होने के कारण बुध्दि – विकल्पों के प्रयोग के माध्यम से आत्मा को नहीं जाना जा सकता है क्योंकि बुद्धि विकल्पों का प्रयोग इंद्रियानुभविक जगत के सम्बन्ध में ही किया जा सकता है। किन्तु प्रज्ञा बुद्धि विकल्पों का अनुचित प्रयोग कर आत्मा के सम्बन्ध में भी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करती है। इससे आत्मा के विज्ञान अर्थात् मनोविज्ञान अंतर्विरोधों से ग्रस्त हो जाता है। मनो– विज्ञान में इन अंतर्विरोधों को तर्काभास (Paralogisms) कहते हैं।

19.3 तर्काभास के प्रकार –

तर्काभास बुद्धि के स्वभाव या संरचना में ही निहित है। अतः इसका पूर्ण निराकरण नहीं किया जा सकता है किन्तु सावधानीपूर्वक इससे बचा जा सकता है। मनोविज्ञान के सम्बन्ध में काण्ट चार तर्काभासों का उल्लेख करते हैं–

तर्काभास –

– द्रव्यता का तर्काभास

– सरलता का तर्काभास

– व्यक्तित्व का तर्काभास

– प्रत्ययात्मकता का तर्काभास

19.3.1 द्रव्यता का तर्काभास :– काण्ट कहते हैं कि द्रव्य (Substance) का प्रयोग सदैव किसी निर्णय के निरपेक्ष उद्देश्य के रूप में किया जाता है, किसी वस्तु में विधेय के रूप में नहीं। एक विचार कर्ता के रूप में श्मैं श सभी संभावित निर्णयों में निरपेक्ष उद्देश्य हुँ, मेरा प्रतिनिधित्व किसी निर्णय में विधेय के रूप में नहीं किया जा सकता है।

काण्ट कहते हैं कि परम्परागत मनोविज्ञान में तार्किक उद्देश्य (Logical Subject) एवं तात्त्विकश उद्देश्य (Metaphysics Subject) दोनों को एक मान लिया जाता है। काण्ट देकार्त को उध्दृत करते हुए कहता है कि श्मैं सोचता हूँ, अतरू मैं हूँश में देकार्त की भूल यह है कि इस वाक्य में श्मैंश अपने विचारों का तार्किक उद्देश्य हूँ परन्तु इसके आधार पर मैं एक द्रव्य हूँ, इस निष्कर्ष का निगमन तर्क संगत नहीं है क्योंकि तार्किक उद्देश्य एवं तात्त्विक उद्देश्य मूलतः दोनो अभेद न होकर भेद है। तार्किक उद्देश्य एवं तात्त्विक उद्देश्य की द्वायार्थकता मानकर ही मनोविज्ञान द्रव्यत्व के तर्काभास में उलझ जाता है। देकार्त एवं उसकी परम्परा के दार्शनिक आत्मा के विरूपण के सम्बंध में इसी तर्काभास से ग्रस्त है। इस विश्लेषण के आधार पर काण्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि एक तत्त्व के रूप में आत्मा अज्ञेय है इसलिए सोचता हूँ, अतः मैं हूँ मैं का प्रयोग केवल तार्किक विषयों के रूप श्में ही किया जा सकता है।

19.3.2 सरलता का तर्काभासः–

प्रत्येक मिश्रित द्रव्य, अनेक द्रव्यों का संघात होता है, जिसका कार्य इसके आंगिक द्रव्यों से पृथक कार्यों का संघात होता है। ऐसा कार्य जो अनेक द्रव्यों के कार्यों के समावर्तन से उत्पन्न होता है, वह कार्य ही हो सकता है। यदि यह मान लिया जाये कि आत्मा एक मिश्रित द्रव्य है जो चिंतनशील है, तो आत्मा का प्रत्येक भाग चिंतन प्रक्रिया में प्रतिविम्वित होगा, जिससे विचारों की तारतम्यता टूट जायेगी, इसलिए आत्मा को अनेक चिंतनशील इकाईयों का संघात न मानकर अनिवार्यतरू सरल एवं निरवयव माना जाता है।

गुण की दृष्टि से आत्मा को सरल एवं निरवयव माना जाता है क्योंकि इसका विभाजन नहीं किया जा सकता है। निरवयव होने से आत्मा निर्विकार भी हो जाती है, जिसका विकाश नहीं हो सकता है। काण्ट कहते हैं कि मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय सरल एवं निरवयव तत्त्व आत्मा देश–काल में स्थित है किन्तु काण्ट सरल एवं निरवयव परमाणुओं के समान आत्मा को देश–काल में स्थित न मानकर देश–काल से परे मानते हैं। चूँकि आत्मा काल से परे है इसलिए आत्मा के सम्बंध में स्थायित्व की आकार योजना संभव नहीं है और स्थायित्व के अभाव मंक किसी द्रव्य की नित्य नहीं कहा जा सकता है । अतरू आत्मा के सम्बन्ध में द्रव्य एवं गुणों का आरोपण दोष पूर्ण है। *'मैं सोचता हो, अतः मैं हूँ'* निष्कर्ष अनुमान न होकर साक्षात् बोध है।

काण्ट आनुभविक निरवयवता को दैशिक मानते हैं। जो दैशिक होगा वह भौतिक एवं विभाज्य होगा और जो विभाज्य ही उसे अविनाशी नहीं माना जा सकता है। अतः अनुभूत सरलता आत्मा की अमरता को सिद्ध नहीं करती है। यही मनोविज्ञान का तर्काभास है।

19.3.3 व्यक्तित्व का तर्काभास –

काण्ट कहते हैं कि परम्परागत मनोविज्ञान में आत्मा पर व्यक्तित्व का आरोपण किया जाता है। आत्मा काल के विभिन्न क्षणों में अपनी एकता बनाये रखती है अर्थात विभिन्न कालों में विभिन्न विषयों का अनुभवकर्ता अपनी एकता के प्रति जागरुक रहता है। इस प्रकार आत्मा को व्यक्तित्व से युक्त माना जाता है। यह आत्मा काल सापेक्ष है। किन्तु ऐसी व्यक्तित्वपूर्ण आत्मा के सम्बंध में काल – सापेक्षता की दृष्टि से विचार करें तो इसकी एकता नष्ट हो जाती है। अतीन्द्रिय आत्मा काल से परे है। अतः मनोविज्ञान द्वारा परिकल्पित व्यक्तित्वपूर्ण आत्मा की अवधारणा दोष पूर्ण है।

यद्यपि विभिन्न क्षणों में जाने वाली आत्मा संख्या की दृष्टि से अपनी एकता को बनाये रखती है तथापि आत्मा के इस व्यक्तित्व का ज्ञान आत्मा के किसी संवेदन से उत्पन्न नहीं होता है। आत्मा व्यक्तित्वपूर्ण है यह मान्यता हमारे ज्ञान एवं विचार की एक तार्किक शर्त है। इस शर्त के विषय में कुछ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है। अतः परम्परागत मनोविज्ञान का विषय व्यक्तित्वपूर्ण आत्मा विशुद्ध आत्मा नहीं हो सकती है। यही व्यक्तित्व का तर्काभास है।

19.4 प्रत्ययात्मकता का तर्काभास–

प्रत्ययवादी दृष्टि से आत्मा के विषय में विचार किया जाये तो आत्मा के अतिरिक्त अन्य विषय–वस्तुओं की सत्ता संदिग्ध है। जिन बाह्य वस्तुओं के अस्तित्व को संवेदनों के कारण के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है, उसका अस्तित्व संदिग्ध है क्योंकि आभासों की सत्ता का प्रत्यक्षतः ज्ञान नहीं होता है। बल्कि संवेदनों के कारण के रूप में अनुमान किया जाता है। आत्मा का अस्तित्व अन्य सभी वस्तुओं के अस्तित्व से भिन्न है इसलिए आत्मा अन्य सभी वस्तुओं से निरपेक्ष है काण्ट कहते हैं कि आत्मा के अस्तित्व का निश्चयात्मक ज्ञान हो सकता है, एक काल्पनिक अवधारणा है। पुनः काण्ट कहते हैं, जो अन्य विषयों से निरपेक्ष, भिन्न एवं पारमार्थिक है, वह देश–काल से परे होगा। अतः मनोविज्ञान उस पारमार्थिक आत्मा को नहीं जान सकता है।

काण्ट के अनुसार यह सत्य है कि मेरा अस्तित्व बाह्य वस्तुओं के अस्तित्व से भिन्न है किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि मेरी सत्ता मानव शरीर से रहित, मात्र वैचारिक रूप से संभव है। इससे स्पष्ट है। कि आत्मा के विश्लेषण से उसका विषय के रूप में कोई ज्ञान नही हो सकता है। यह मनोविज्ञान का दोष है कि वह तार्किक सत्ता एवं तात्त्विक सत्ता को समान मान लेता है। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर काण्ट सिद्ध करते हैं कि मनोविज्ञान आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता है क्योंकि इससे आत्मा के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होती है। यह अनुशासन का शास्त्र है जो आत्मा के सम्बंध में परिकल्पनात्मक बुद्धि की सीमाओं को रेखांकित करता है।

19.5 अतीन्द्रिय सृष्टि विज्ञान –

प्रज्ञा प्राकृतिक जगत की वस्तुनिष्ठ शर्तों को संयुक्त कर एक सर्वोच्च कारण के रूप में सम्मिलित करने का प्रयास करती है। जगत की विभिन वस्तुओं एवं घटित होने वाली घटनाओं को देखकर व्यक्ति एक समग्र प्रकृति विज्ञान का निर्माण कर लेता है जिस पर सम्पूर्ण संसृति आधारित है। इसमें समस्त भौतिक क्रियाओं को एक साथ सम्मिलित करके सृष्टि या ब्रह्माण्ड की कल्पना की जाती है।

19.6 विप्रतिषेध का अर्थ :–

विप्रतिषेध से तात्पर्य दो विरोधी तर्कवाक्यों के ऐसे युग्म से है जिनकी उत्पत्ति के मूल में समान आधार होते है। जब अतीन्द्रिय सृष्टि विज्ञान तत्वमीमांसीय प्रयासों के द्वारा देश–काल में स्थित जगत को उसके समष्टि रूप में जानने का प्रयास करता है तथा जगत के सम्बंध में संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय स्थापित करना चाहता है, ऐसे प्रयासों की परिणति परस्पर विरोधी निष्कर्षों के युग्म के रूप में होती है। इसे ही विप्रतिषेध (Antinomies) कहते हैं। ये पारमार्थिक तथा जगत तत्वों पर बुद्धि विकल्पों के अनुचित प्रयोग से उत्पन्न होते हैं। विप्रतिषेधों की विशेषता यह है कि ये परस्पर विरोधी तर्कवाक्य होते हुए भी इसमें समान प्रामाणिकता पायी जाती है और अनुभव के द्वारा इन तर्कवाक्यों को न तो प्रमाणित किया जा सकता और न अप्रमाणित किया जा सकता है।

19.7 विप्रतिषेध के प्रकार–

मात्रा, गुण, सम्बंध एवं प्रकार के आधार पर चार विप्रतिषेध पाये जाते हैं। एक विप्रतिषेध में एक पक्ष और एक विपक्ष होता है। जो इस प्रकार है–

19.7.1 प्रथम, विप्रतिषेध– पक्ष– जगत देश–काल से सीमित है।

विपक्ष – जगत अनादि एवं अनन्त है।

सृष्टि विज्ञान में यह माना जाता है कि सृष्टि देश–काल से सीमित है अर्थात् जगत का आदि एवं अन्त दोनों है। जगत की उत्पत्ति एक विशेष काल में हुई है और यह दैशिक रूप से सीमित है। जगत का किसी काल में शुरू होना जगत की सत्ता की अनिवार्य शर्त है। इसी प्रकार विस्तार की दृष्टि से भी जगत को देश में सीमित मानना पड़ेगा क्योंकि विभिन्न वास्तविक वस्तुओं के समूह का अनुभव होता है। यदि जगत को देश–काल से सीमित न माना जाये तो अन्ततः वस्तुओं के संघात की गणना करने के लिए अनन्त काल के समाप्त होने की गणना करनी होगी जो कि असंभव है।

प्रथम विप्रतिषेध के विपक्ष में यह कहा जाता है कि जगत देश–काल से सीमित न होकर आदि एवं अनन्त है। यदि जगत के आरम्भ को काल के अंतर्गत माना जायेगा तो इसका अर्थ यह हुआ कि जगत के आरम्भ से पूर्व जगत की सत्ता नहीं थी। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय रिक्त काल की सत्ता थी। किन्तु काण्ट का मानना है कि रिक्त काल के अन्तर्गत जगत का आरम्भ नहीं हो सकता है क्योंकि रिक्त काल में सत्ता को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं होती है। काल में जगत के अन्दर वस्तुओं का श्रृंखला का आरम्भ तो हो सकता है किंतु स्वतः जगत श्रृंखला का प्रारम्भ नहीं हो सकता है। इस प्रकार जगत देश में भी अनन्त है क्योंकि यदि जगत को देश में सीमित मान लिया जायेगा तो इसकी तात्पर्य यह होगा कि वह ऐसे देश में स्थित है जिसमें उसकी किसी अन्य वस्तु से सम्बंध है किन्तु जगत वस्तुओं की पूर्णता है। अतः

रिक्त देश में जगत का सम्वन्ध रिक्त देश से होगा और उसकी सीमा रिक्त देश होगा जो कि असंगत है, इसलिए जगत असीमित है।

19.7.2 द्वितीय विप्रतिषेध :–

पक्ष – जगत अविभाज्य एवं सरल तत्वों से निर्मित है।

विपक्ष – जगत विभाज्य एवं यौगिकों से निर्मित है।

द्वितीय विप्रतिषेध के पक्ष में कहा जाता है कि जगत अविभाज्य एवं सरल तत्वों से निर्मित है। ये सरल तत्त्व निरवयव परमाणु हैं। इसके अनुसार संसार की समस्त वस्तुएँ सरल इकाईयों का संघात है। सरल इकाईयों का संघात होना वस्तुओं का बाह्य लक्षण है। वास्तव में सरल इकाईयों को उनके संघातों से पृथक करना संभव नहीं है किन्तु यह तार्किक रूप से सोचा जा सकता है कि सरल इकाईयाँ संघातों की पूर्ववर्ती शर्त हैं।

इसके विपक्ष में कहा जा सकता है कि जगत अविभाज्य एवं अविनाशी परमाणुओं से नहीं बना है। जगत की प्रत्येक वस्तु विभाज्य, सावयव एवं नाशवान है। यदि परमाणु को अविनाशी माना जायेगा। तो वे किसी देश में स्थित होंगे, किन्तु सरल एवं निरवयव परमाणुओं की दैशिक अस्तित्व संभव नहीं है। इसलिए तर्कतः यह नहीं कहा जा सकता है कि जगत की रचना अविभाज्य परमाणुओं से हुई है। वस्तुतः इन्द्रियानुभव के आधार पर निरपेक्ष सरल तत्त्व की सत्ता नहीं स्थापित की जा सकती है। अतः सरल परमाणु की अवधारणा वास्तविक न होकर काल्पनिक है क्योंकि देश–काल के अन्तर्गत सरल परमाणुओं के इंद्रिय संवेदन प्राप्त नही होते हैं। इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता है।

19.7.3 तृतीय विप्रतिषेध –

पक्ष – जगत प्रयोजनपूर्ण रचना है।

विपक्ष – जगत में स्वतंत्रता स्वाधीनता जैसी कोई चीज नहीं है। (यांत्रिक)–

तृतीय विप्रतिषेध के पक्ष में कहा गया है कि जगत की रचना प्रयोजनपूर्ण है। प्राकृतिक जगत केवल कारण– कार्य नियम से संचालित नही है। यदि जगत की रचना सिर्फ कारण–कार्य नियम से की जायेगी तो प्रत्येक घटना सकारण होगी किन्तु इस श्रृंखला का कोई अन्त नही हो सकता है। अतः अनावस्था दोष से बचने के लिए जगत की रचना को स्वाधीन एवं स्वकारण मानना होगा। इससे संकल्प स्वातंत्र्य की रक्षा होती है।

इसके विपक्ष में कहा गया है कि जगत में संकल्प स्वातंत्र्य एवं स्वाधीनता जैसी कोई चीज नहीं हो सकती है। यदि किसी सत्ता को अन्य कारणों से स्वतंत्र माना जायेगा तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह स्वयंभू है अर्थात् अकारण है। किसी सत्ता को स्वंयभू मानना कारणता के नियम के विरुद्ध है। वस्तुतरू जगत कारणता के नियम से ही अनुशासित है। जगत कार्य – कारण के यांत्रिक नियमानुसार ही संचालित है।

19.7.4 चतुर्थ विप्रतिषेध –

पक्ष – जगत का कारण एक अनिवार्य एवं निरपेक्ष सत्ता है।

विपक्ष–जगत का कारण कोई अनिवार्य एवं निरपेक्ष सत्ता नहीं है।

चतुर्थ विप्रतिषेध के पक्ष के अन्तर्गत जगत का कारण एक अनिवार्य एवं निरपेक्ष सत्ता को माना जाता है। इस जगत की रचना के क्रम में कारणों की श्रृंखला में एक अनिवार्य सत्ता है। जगत के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों में प्रत्येक परिवर्तन का एक कारण है। प्रत्येक परिवर्तन या कार्य का होना एक पूर्ण श्रृंखला की ओर संकेत करता है और इस श्रृंखला के अन्तिम कारण या आदि कारण के रूप में एक निरपेक्ष एवं अनिवार्य सत्ता को स्वीकार किया जाता है अर्थात् इस जगत के समस्त परिवर्तनों का आधार एक निरपेक्ष एवं अनिवार्य सत्ता है।

इसके विपक्ष में कहा जा सकता है कि जगत का कारण कोई अनिवार्य एवं निरपेक्ष सत्ता नही है। जगत की प्रत्येक वस्तु एवं घटना आपातिक है। इन परिवर्तनों के मूल में निरपेक्ष एवं अनिवार्य सत्ता को स्वीकार करना एक कल्पना है। यदि जगत के समस्त परिवर्तनों के मूल में एक अनिवार्य एवं निरपेक्ष सत्ता को माना जायेगा, जो स्वंय अकारण है, तो इससे कार्य–कारण नियम का ही निराकरण हो जायेगा। अतः जगत में घटित परिवर्तनों का कोई अनिवार्य कारण न होकर कार्य कारण की श्रृंखला आपातिक है।

उपरोक्त चारों विप्रतिषेधों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो हम पाते हैं कि चारों विप्रतिषेध के पक्ष बुद्धिवादी मान्यता के अनुरूप है जबकि चारों विपक्ष अनुभववादी मान्यता के अनुरूप हैं। विप्रतिषिधों के माध्यम से काण्ट ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि बुद्धिवाद एवं अनुभववाद दोनों ही निरपेक्ष रूप से सत्य नही हैं। दोनों की एक साथ रखने पर दोनों एक–दूसरे को निष्प्रभावी कर देते हैं। काण्ट यहाँ कहते हैं कि विप्रतिषेधों के ये पक्ष–विपक्ष किसी दार्शनिक चिंतन का परिणाम नहीं हैं अपितु ये प्रज्ञा के स्वभाव के कारण उत्पन्न होते हैं। प्रज्ञा समस्त ब्रह्माण्ड को एक पूर्ण एकता के रूप में आबद्ध करना चाहती है किन्तु ब्रह्माण्ड की पूर्णएकता के संवेदनों के अभाव में वह ऐसा करने में असफल रहती है। प्रज्ञा के प्रत्ययों पर यह बुद्धि–विकल्पों का अनुचित प्रयोग एवं बुद्धि विकल्पों की क्षमता के बाहर है।

काण्ट इन चारों विप्रतिषेधों में व्याप्त विरोध की समस्या का समाधान करने के लिए चारों विप्रतिषेधों को दो भागों में विभक्त करते है। इसमें से दो विप्रतिषेधों का सम्बन्ध गणित से है तथा शेष दो विप्रतिषेधों का सम्बन्ध गति विज्ञान से है। इन दोनों प्रकार के विप्रतिषेधों की पृथक–पृथक विशेषताएं हैं। प्रथम एवं द्वितीय विप्रतिषेध जिनका सम्बंध गणित से है, के बारे में काण्ट कहते हैं कि उनके पक्ष एवं विपक्ष दोनों गलत हैं क्योंकि दोनों एकांगी या आंशिक सत्य है। अतः उनके बीच विरोध का सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक विप्रतिषेध का तीसरा विकल्प भी हो सकता है जो पक्ष एवं विपक्ष के समन्वय से निर्मित है। जैसे– जगत न तो देश है और न काल है अपितु आभास है।

शेष तृतीय एवं चतुर्थ विप्रतिषेध, जो गति विज्ञान से सम्बधित है, के बारे में काण्ट कहते हैं कि इसमें पक्ष एवं विपक्ष में कोई वास्तविक विरोध नही है क्योंकि दोनों भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण से कहे गये हैं। इसके पक्ष में पारमार्थिक दृष्टिकोण प्रतिविम्बित होता है तथा विपक्ष में व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रतिविम्बित होता है। तृतीय एवं चतुर्थ विप्रतिषेध के पक्ष एवं विपक्ष धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। इन्हें

तर्क के माध्यम से न तो सिध्द किया जा सकता है और न असिद्ध। ये तर्क के विषय न होकर आस्था के विषय हैं।

तृतीय एवं चतुर्थ विप्रतिषेध धार्मिक एवं नैतिक रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इसमें धर्म सम्बंधी नियतिवाद की अवधारणा तथा नैतिकता सम्बंधी स्वातन्त्र्य संकल्प की अवधारणा को उठाया गया है। काण्ट कहते हैं कि कारणता नियम एवं स्वातन्त्र्य संकल्प की अवधारणा दोनों ही पृथक–पृथक दृष्टिकोणों से तर्क संगत हैं। कार्य–कारण नियम की उपयोग इन्द्रियानुभविक जगत के सम्बन्ध में किया जाता है। इन्द्रियानुभविक जगत में कार्य–कारण श्रृंखला की व्याख्या का क्रम समाप्त नहीं होता है। किसी घटना की पूर्व व्याख्या असंभव है। किसी घटना या वस्तु के कारण के रूप में निरपेक्ष कारण की अवधारणा अनुभव के आधार पर नहीं की जा सकती हैं जबकि पारमार्थिक रूप से निरपेक्ष कारण की अवधारणा संभव है। इस प्रकार दोनों दृष्टिकोणों से विचार किया जाये तो प्रत्येक घटना या वस्तु दोहरी कारणता से सम्वाद है। पारमार्थिक दृष्टि से निरपेक्ष कारण पर निर्भर है जबकि व्यावहारिक दृष्टि से कार्य–कारण श्रृंखला से सम्बद्ध है।

इस प्रकार पारमार्थिक दृष्टि से संकल्प स्वातंत्र्य की अवधारणा को स्वीकार किया जा सकता है किन्तु इसकी यथार्थता को पारमार्थिक दृष्टि से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। नियतिवादियों द्वारा दिये गये तर्कों का प्रयोग स्वातंत्र्य संकल्प की अवधारण के विरुध्द नहीं किया जा सकता है। मनुष्य व्यावहारिक दृष्टि से स्वतंत्र है और इसी कारण वह अपने ऐच्छिक कर्मों के लिए उत्तरदायी भी है। नियतिवादियों द्वारा उठायी गयी आपत्तियाँ पारमार्थिक स्वतंत्रता से परे हैं किन्तु ये इन्द्रियानुभव की सीमा के परे होने के कारण प्रामाणिक नही मानी जा सकती हैं। वस्तुतः व्यावहारिक दृष्टि से स्वातंत्र्य संकल्प को स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से इसमें समस्या उत्पन्न होती है। जो व्यावहारिक एवं पारमार्थिक दृष्टि की उपेक्षा के कारण होती है। यदि इन दोनों का समन्वय कर दिया जाये तो समस्या का निराकरण हो जाता है।

19.8 निष्कर्ष– सृष्टि विज्ञान के अन्तर्गत विप्रतिषेधों के पक्ष एवं विपक्ष प्रज्ञा की कल्पना मात्र है। यदि पक्ष एवं विपक्ष के आधार पर जगत के स्वरूप, उद्‌भव एवं प्रयोजन पर वाद–विवाद किया जायेगा तो कोई. भी पक्ष पूर्णतः प्रामाणिक या अप्रामाणिक सिद्ध नही होगा। इन विप्रतिषेधों पर तार्किक बहस निरर्थक है क्योंकि निश्चित समाधान की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। ये प्रज्ञा की संकल्पना पर आधारित काल्पनिक तर्क हैं। ये सृष्टि विज्ञान को मिथ्या सिद्ध करते हैं।

19.9 शब्दावली

(1) स्वयं भू–जो अपना कारण स्वंय हो।

(2) नियतिवाद– सब कुछ पूर्व निर्धारित है, में विश्वास रखने वाला सिध्दान्त।

19.10 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न –

(1) तर्काभास क्या है?

(2) विप्रतिषेध को परिभाषित करें।

(3) द्रव्यत्व का तर्काभास क्या है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(1)तर्काभास को परिभाषित करते हुए इसके प्रकारों की विस्तृत व्याख्या करें।

(2) विप्रतिषेध से आप क्या समझते है? सृष्टि विज्ञान के चारों विप्रतिषेधों की विवेचना करें।

19.11 उपयोगी पुस्तके –

(1)काण्ट का दर्शन – संगम लाल पाण्डेय

(2)काण्ट का दर्शन – सभाजीत मिश्र

.....000.....

खण्ड – 6

इकाई–20 – ईश्वर-विषयक युक्तियों का खण्डन

संरचना–

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 ईश्वरीय अस्तित्व सिद्धि की युक्तियाँ

20.2.1 प्रत्यय सत्ता मूलक युक्ति

20.2.1.1 काण्ट द्वारा प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति का खण्डन

20.2.1.2 प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति का काण्ट कृत खण्डन का मूल्यांकन

20.2.2 सृष्टि वैज्ञानिक युक्ति

20.2.2.1 काण्ट द्वारा सृष्टि वैज्ञानिक युक्ति का खण्डन

20.2.3 भौतिक–धार्मिक युक्ति

20.2.3.1 काण्ट द्वारा भौतिक–धार्मिक युक्ति का खण्डन

20.3 नैतिक–युक्ति

20.4 काण्ट की नैतिक युक्ति के विरुद्ध आपत्तियाँ

20.5 निष्कर्ष

20.6 शब्दावली

20.7 प्रश्नावली

20.8 उपयोगी पुस्तकें

.....

20.0 उद्देश्य – प्रस्तुत इकाई –'ईश्वर विषयक युक्तियों का खण्डन' की प्रस्तावना के अन्तर्गत ईश्वर को परिभाषित करते हुए ईश्वरीय अस्तित्व सिध्दि के लिए दी गयी परम्परागत युक्तियों की क्रमशः चर्चा की गयी है। सर्वप्रथम प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति का वर्णन करते हुए काण्ट द्वारा इसके खण्डन में दिये गये तर्कों को प्रस्तुत किया गया है तथा काण्ट के खण्डन का मूल्यांकन भी किया गया है। तत्पश्चात सृष्टि-वैज्ञानिक युक्ति का वर्णन करते हुए काण्ट द्वारा इसके खण्डन को प्रस्तुत किया गया है। अन्त में भौतिक–धार्मिक युक्ति का उल्लेख करते हुए काण्ट द्वारा इसके खण्डन हेतु दिये गये तर्कों को व्यक्त किया गया है। अन्ततः

ईश्वरीय अस्तित्व के लिए काण्ट द्वारा स्वीकृत नैतिक युक्ति का वर्णन करते हुए इसके विरुद्ध उठायी गयी आपत्तियों को दर्ज करते हुए निष्कर्ष –निगमित किया गया है।

3.1 प्रस्तावना– ईश्वर धर्म के अन्तर्गत स्वीकृत सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान सत्ता है। वह जगत का निर्माता, संचालक एवं संहारक है। साधक ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के द्वारा अपने जीवन से दुःखों का नाश एवं मुक्ति प्राप्त कर सकता है, ऐसे विश्वास से साधक अपनी धार्मिक मान्यताओं एवं विधि-विधानों के अनुरूप ईश्वर की उपासना करता है। साधक ईश्वर के समस्त कर्म–नियमों का आधार मानता है। यह भी विशेष परिस्थितियों में ईश्वर चमत्कार भी करता है ताकि मानव कल्याण सुनिश्चित हो सके। ईश्वर का प्रत्यय बुद्धिपरक ईश्वर–मीमांसा का विषय है। धार्मिक व्यक्ति मूलतः आस्था एवं विश्वास के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है। वह मानता है कि तर्कों का प्रयोग जागतिक विषयों के सम्बंध में किया जाता है किन्तु ईश्वर जागतिक विषयों के समान भौतिक वस्तु नहीं है इसलिए वह तर्कों की सीमा के परे है। फिर भी साधक अपने विश्वास को अंधविश्वास से बचाने के लिए, अपनी धार्मिक मान्यताओं को बौद्धिक, तार्किक एवं औचित्यपूर्ण सिद्ध करने के लिए तथा अपने धर्म के विरुद्ध लगनेवाले आक्षेपों का समुचित निराकरण करने के लिए तर्कों का उपयोग करता है। इसी क्रम में वह ईश्वरीय अस्तित्व को भी तर्कों के माध्यम से सिद्ध करने का प्रयास करता है।

20.2 ईश्वरीय अस्तित्व सिद्धि की युक्तियाँ :–

काण्ट ने अपने चतुर्थ विप्रतिषेध में ईश्वर को एक अनिवार्य एवं पूर्ण सत् माना है। वह आदि कारण या स्वयंभू है। वह सिर्फ एक व्यष्टि है और जगत का कर्ता है। ईश्वर-विधा ईश्वर को सिद्ध करने के लिए तीन युक्तियां देती है। जो निम्नलिखित है –

- प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति
- सृष्टि-वैज्ञानिक युक्ति
- भौतिक धार्मिक/प्रयोजन मूलक युक्ति

20.2.1 प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति (Ontalogical Argument) – प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति के समर्थक ईश्वर के पूर्ण प्रत्यय के द्वारा ही ईश्वर की वास्तविक सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। उनका मानना है कि पूर्ण ईश्वर के प्रत्यय मे सभी गुण समाहित हैं। अस्तित्व भी एक गुण है जो पूर्ण ईश्वर के प्रत्यय में समाहित है। यदि पूर्ण ईश्वर के प्रत्यय में ईश्वरीय अस्तित्व को शामिल नहीं किया जायेगा तो ईश्वर की पूर्णता का खण्डन हो जायेगा। अतः ईश्वर के पूर्ण प्रत्यय में ईश्वरीय अस्तित्व भी निहित है। इस युक्ति के समर्थकों में संत एन्सेल्म, देकार्त, स्पिनोजा, लाइबनीज, हेगल इत्यादि विचारक शामिल हैं। इस युक्ति के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं–

(1) एन्सेल्म के अनुसार ईश्वरीय भावना सभी प्रत्ययों में सर्वोच्च है। जिसका अस्तित्व विचार एवं वास्तविकता दोनों में हो उसकी सत्ता उस सत्ता से उच्चतर है, जिसका अस्तित्व केवल विचार में है। अतः ईश्वर सर्वोच्च होने के कारण विचार एवं वास्तविकता दोनों में है। इसीलिए ईश्वर वास्तविक परमसत्ता है।

(2) देकार्त के अनुसार जिस प्रकार त्रिभुज के ज्ञान में ही यह निहित है कि उसके तीनों कोण मिलकर दो समकोण के बराबर होते हैं, उसी प्रकार ईश्वर की पूर्णता में यह निहित है कि ईश्वर का अस्तित्व है। पुनः देकार्त कहते हैं कि मेरी बुद्धि में पूर्ण एवं अनन्त ईश्वर का प्रत्यय है। इस विचार का कोई न कोई कारण अवश्य होगा। इस विचार का कारण स्वयं मैं नहीं हो सकता क्योंकि मानव अपूर्ण है। अतः ईश्वर के प्रत्यय का कारण पूर्ण एवं अनन्त ईश्वर ही है। (3) स्पिनोजा के अनुसार अस्तित्व अनन्तता के अनेक गुणों में से एक है। चूँकि ईश्वर अनन्त है, अतः ईश्वर का अस्तित्व है।

(4) लाइबनीज के अनुसार प्रत्येक चिदणु के दो पक्ष है– वास्तविक एवं संभावित। जो चिदणु विकास के पथ पर सबसे आगे होते हैं वे सबसे ज्यादा सक्रिय एवं वास्तविक होते हैं। ईश्वर परम चिदणु है। अतः सबसे ज्यादा सक्रिय एवं वास्तविक है।

(5) हेगल के अनुसार ईश्वर का विचार अद्वितीय एवं अलौकिक विचार है। अतः ईश्वर के विचार मात्र में ईश्वरीय सत्ता निहित है।

20.2.1.1 काण्ट द्वारा प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति का खण्डन–काण्ट प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति को दोषपूर्ण मानते हैं क्योंकि इस युक्ति में अस्तित्व को गुण के रूप में स्वीकार किया गया है जबकि अस्तित्व गुण न होकर गुण की प्रागपेक्षा है अर्थात् गुण की पूर्ववर्ती शर्त है। पहले कोई वस्तु अस्तित्ववान होती है। तत्पश्चात उसमें गुणों की स्थापना की जा सकती है। यदि अस्तित्व को गुण के रुप में स्वीकर कर लिया जायेगा तो अस्तित्व रुपी गुण के आश्रय के रुप में अन्य अस्तित्व की कल्पना करनी पड़ेगी। इससे यह क्रम अन्तहीन हो जायेगा, जो अनवस्था दोष को जन्म देता है। विश्लेषी दर्शन में भी अस्तित्व को विधेय (गुण) के रुप में स्वीकार नहीं किया जाता है।

पुनः काण्ट कहते हैं, कि किसी वस्तु के प्रत्यय/विचार मात्र से वस्तु की वास्तविकता सत्ता (अस्तित्व) सिध्द नहीं किया जा सकता है। प्रत्यय मात्र से केवल प्रत्यय की सत्ता सिध्द होती है, उसका वास्तविक अस्तित्व सिध्द नहीं होता है। प्रत्यय के अनुरुप बाह्य जगत में वस्तु होना अनिवार्य नहीं है। इस सन्दर्भ में काण्ट की प्रसिध्द उक्ति है। कि यदि कोई व्यक्ति अपने मन में सौ डॉलर की कल्पना कर ले तो उसकी जेब में वास्तव में सौ डॉलर नहीं आ सकते हैं। अगर प्रत्यय मात्र से किसी की वास्तविक सत्ता सिद्ध होती तो सभी भिखारी महलों में रहते। (महल के प्रत्यय की कल्पना करके)

त्रिभुज के दृष्टान्त के माध्यम से इस युक्ति के समर्थक पूर्ण ईश्वर के प्रत्यय में ईश्वरीय अस्तित्व को न मानता वदतोव्याघात कहते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार त्रिभुज को त्रिकोणात्मक न मानना आत्मव्याधाती है उसी प्रकार पूर्णता के प्रत्यय में अस्तित्व को न मानना भी आत्मव्याघाती है। किन्तु काण्ट कहते हैं कि आत्मव्याघात तब होता है जब त्रिभुज के प्रत्यय को स्वीकारा जाये और त्रिभुज के त्रिकोण होने को स्वीकार न किया जाये। किन्तु यदि त्रिभुज के प्रत्यय एवं त्रिभुज के त्रिकोण होने दोनों को ही न

स्वीकार किया जाये तो कोई व्याघात नहीं होता है। उसी प्रकार पूर्ण ईश्वर के प्रत्यय और अस्तित्व दोनों को स्वीकार न किया जाये तो कोई व्याघात नहीं होगा।

पुनः काण्ट कहते हैं कि अस्तित्व सूचक कथन संश्लेषणात्मक होते हैं और इनका सत्यापन अनुभव के आधार पर ही किया जा सकता है। चूँकि ईश्वर का अनुभव नहीं होता है। अतः ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार काण्ट अपने तर्कों के माध्यम से यह सिद्ध करते हैं कि प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति से मात्र पूर्ण ईश्वर के प्रत्याश की सत्ता सिद्ध होती है। ईश्वर के वास्तविक आस्तत्व की सत्ता सिद्ध नहीं होती है।

20.2.1.2 प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति का काण्ट कृत खण्डन का मूल्यांकन – किसी वस्तु के सार तत्व (प्रत्यय) एवं उसके अस्तित्व को अभेद नहीं माना जा सकता है। इस तर्क के आलोक में ईश्वर के पूर्ण प्रत्यय से ईश्वरीय अस्तित्व की सिद्धि नहीं की जा सकती है। एन्सेल्म के समकालीन विचारक गैनिलो ने भी इस युक्ति का निराकरण किया था। किन्तु इसके प्रत्युत्तर में एन्सेल्म ने कहा कि सारतत्व एवं अस्तित्व में विभिन्नता जागतिक वस्तुओं के संदर्भ में प्रभावी होती है, ईश्वर के संदर्भ में नहीं अर्थात् ईश्वर के सम्बन्ध में अस्तित्व एवं सारतत्व में अभेद है। केयर्ड का भी मत है कि ऐसा कोई विषय नही है जो विचार पर निर्भर न हो। समस्त सत्ता चेतना पर आश्रित है।

यद्यपि प्रत्यय सत्तामूलक तर्क निर्णायक रूप से ईश्वर के पूर्ण प्रत्यय में ईश्वर अस्तित्व निहित हैं, को सिद्ध नहीं कर सकी किन्तु धर्मानुयायियों के लिए इसका विशेष महत्व है क्योंकि यह ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि हेतु प्रागनुभविक तर्क है।

20.2.2 सृष्टि वैज्ञानिक युक्ति (Cosmological Argument)– यह युक्ति कारणता सिद्धान्त पर आधारित है जिसके अनुसार प्रत्येक घटना का कारण अवश्य होता है और कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। इस जगत में कुछ भी अकारण नहीं है। सबकुछ सकारण है । इस युक्ति के अनुसार यह जगत भी एक कार्य है, जिसका कारण अवश्य होना चाहिए जगत में कार्य–कारण श्रृंखला के अंतिम कारण या आदि कारण के रूप में ईश्वर को मान लिया जाता है। ईश्वर स्वयंभू (Self-caused) है। ऐसा इसलिए माना जाता है क्योंकि यदि ईश्वर का भी कारण मान लेंगे तो यह श्रृंखला अंतहीन हो जायेगी और अनवस्था दोष उत्पन्न हो जाएगा। इसी प्रकार यदि एक वस्तु का कारण दूसरी वस्तु को मान लिया जायेगा तो इतरेतराश्रय दोष (Fullacy of Interdependence) उत्पन्न हो जायेगा इस युक्ति के समर्थक प्लेटो, अरस्तू, एक्विनास इत्यादि हैं।

यद्यपि इस युक्ति का प्रारम्भ इन्द्रियानुभव से होता है तथापि यह युक्ति अनुभव की सीमा का उल्लंघन करके स्वतंत्र रूप से ईश्वरीय अस्तित्व को प्रभावित करने का प्रयास करती है। यह युक्ति अनुभव पर समस्त संभाव्य विषयों को समर्पित कर सृष्टि की अवधारणा प्रस्तुत करने का प्रयास करती है।

20.2.2.1 काण्ट द्वारा सृष्टि वैज्ञानिक युक्ति का खण्डन–

काण्ट इस युक्ति से सहमत न होने के कारण इस युक्ति का खंडन करते हैं। वे कहते हैं कि यद्यपि सृष्टि वैज्ञानिक युक्ति की शुरुआत अनुभव से होती है तथापि कारणता को स्वीकार कर लेने पर यह आनुभविक न रहकर प्रागनुभविक हो जाती है। इसमें कारणता बुध्दि विकल्प समाहित है जो कि प्रागनुभाविक है। इस प्रकार यह युक्ति भी प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति का छंद्म रूप है, जिसका उन्हीं तर्कों के द्वारा खण्डन किया जा सकता है जिनके द्वारा प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति का किया गया है।

काण्ट कहते हैं कि यदि इसे इन्द्रियानुभविक युक्ति मान भी लिया जाये तो भी इन्द्रियानुभव के आधार पर केवल प्राकृतिक जगत में स्थित आपातिक एवं अनिवार्य सम्प्रत्ययों को ही प्राप्त कर सकते हैं. ईश्वर का सम्बध प्राकृतिक जगत से न होकर पारमार्थिक जगत से है। अतः अनुभव के आधार पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि निरपेक्ष अनिवार्यतः किसी सत्ता में वास्तविक रूप में पाया जाता है।

पुनः काण्ट कहते हैं कि इस युक्ति में कारणता के आधार पर ईश्वरीय अस्तित्व को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है किंतु कारणता एक बुद्धि विकल्प है जिसका प्रयोग केवल जागतिक पदार्थों के सन्दर्भ में किया जा सकता है। ईश्वर अर्थात् पारमार्थिक सत्ता के सम्बंध में बुद्धि–विकल्प कारणता का प्रयोग अनुचित है, जिससे इन्द्रिय भ्रम उत्पन्न होता है न कि ईश्वरीय अस्तित्व की सिद्धि होती है।

यदि ईश्वर को कार्य–कारण श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में जगत का आदि कारण मान लिया जाये तो ईश्वर इस भौतिक जगत का एक भाग हो जायेगा क्योंकि कारणता का प्रयोग भौतिक जगत की सीमाओं के अन्दर ही किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में ईश्वर को भी भौतिक तत्व मानना पड़ेगा जबकि ईश्वरवादी ईश्वर को आध्यामिक चिंतन तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं।

इस युक्ति में ईश्वर को जगत का आदि कारण मानते हुए स्वयं ईश्वर को स्वयंभू या अकारण बताया गया है। ईश्वर को स्वयंभू या अकारण कहना स्वयं कारणता सिद्धांत का खण्डन है। इससे युक्ति में अन्तर्विरोध उत्पन्न हो जाता है। ईश्वर को अकारण कहना स्वयं ही कारणता के नियम का परित्याग करना है।

वस्तुतः यह युक्ति ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने बजाय जगत के कारण को सिद्ध करने का प्रयास करती है। ऐसी स्थिति में यह संभव है कि जगत का कारण ईश्वर न होकर ईश्वर से भिन्न कोई अन्य सत्ता हो।

काण्ट के उपर्युक्त तर्कों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि सृष्टि वैज्ञानिक युक्ति निर्णायक रूप से ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं कर सकती है क्योंकि कारणता की तथ्यात्मक अनिवार्यता भी प्रत्ययात्मक, विचारात्मक या अमूर्त घटक है इसीलिए काण्ट इसे प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति का प्रछन्न रूप मानते हैं, जो सत्तामूलक तर्क के सभी दोषों से युक्त है।

20.2.3 भौतिक–धार्मिक युक्ति (Physico Theological Argument)– यह युक्ति जगत में विद्यमान वस्तुओं की संरचना, व्यवस्था, समायोजन नियमबद्धता, सौंदर्य एवं प्रयोजन के आधार पर समायोजन, कर्ता व्यवस्थापक एवं प्रयोजनकर्ता के रूप में ईश्वर की सत्ता का अनुमान करती है। अरस्तू, प्लेटो, एक्विनास,

लाइबनीज, विलियम पेले, न्याय–वैशेषिक इत्यादि इस युक्ति का समर्थन करते हैं। यह सृष्टि परम विवेकी तत्त्व की रचना है। वह पूर्ण एवं परम विवेकी तत्त्व ईश्वर है। ईश्वर के अस्तित्त्व को प्रमाणित करने के लिए दी जाने वाली युक्तियों में यह युक्ति सबसे प्राचीन है। अतः धर्म दर्शन एवं धर्मशास्त्र दोनों में इसका अत्याधिक महत्व है।

20.2.3.1 काण्ट द्वारा भौतिक–धार्मिक युक्ति का खण्डन– काण्ट के अनुसार यह युक्ति भी दोषपूर्ण है क्योंकि यह भी इन्द्रियानुभविक जगत का परित्याग कर प्रागनुभविक रूप से ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित करने का प्रयास करती है। यह युक्ति प्राकृतिक जगत में व्याप्त समायोजन, व्यवस्था, सौंदर्य इत्यादि के सामंजस्य के आधार पर प्राकृतिक जगत के कुशल शिल्पी के रूप में ईश्वर के अस्तित्त्व को प्रमाणित करती है। किंतु इस युक्ति के आधार पर सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं होती है क्योंकि जिस प्रकार एक महल के निर्माण के लिए शिल्पी को उपादान सामग्री की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जगत की रचना के लिए ईश्वर को उपादान सामग्री की आवश्यकता होगी। ऐसे में जगत के निर्माण के लिए ईश्वर उपादान सामग्री पर निर्भर हो जायेगा, जिससे ईश्वर की पूर्णता खण्डित हो जायेगी।

पुनः काण्ट कहते हैं कि यदि इस युक्ति को स्वीकार भी कर लिया जाये तो यह युक्ति सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर के अस्तित्त्व को सिद्ध नहीं करती है, अपितु यह सृष्टिकर्ता को सिद्ध करती है जो मानव के समान सीमित नहीं है किन्तु वह सृष्टिकर्ता ईश्वर है, यह सिद्ध नहीं करती है। वह सृष्टिकर्ता ईश्वर से भिन्न कोई अन्य सत्ता भी हो सकती है।

यह युक्ति कारण भेद पर आधारित एक साम्यानुमान है और साम्यानुमान को आगमन विधि के अन्तर्गत रखा जाता है। हम जानते हैं कि आगमन विधि के अन्तर्गत निगमन निष्कर्ष अनिवार्य न होकर संभाव्य होते हैं। इसके साथ ही आगमनात्मक विधि का उपयोग इन्द्रियानुभविक जगत के संदर्भ में ही किया जा सकता है। चूँकि ईश्वर का प्रत्यय अनुभवातीत या पारमार्थिक है। अतः ईश्वर तक आगमन विधि की पहुँच नहीं है। यही कारण है कि ईश्वरीय अस्तित्व को प्रमाणित करने में आगमन– विधि असफल हो जाती है।

वस्तुतः भौतिक–धार्मिक युक्ति का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि यह सृष्टि वैज्ञानिक युक्ति के समान ही जगत की वस्तुओं के कारण के रूप में ईश्वर की सत्ता को सिद्ध कसे का प्रयास करती है किन्तु कारणता बुद्धि–विकल्प है, जिसका प्रयोग इंद्रियानुभविक जगत के संदर्भ में ही किया जा सकता है, पारमार्थिक तत्त्वों के सन्दर्भ में नहीं। अतः ईश्वर के सम्बन्ध में इसका प्रयोग अनुचित एवं निष्कर्ष को दोषग्रस्त करने वाला है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काण्ट ईश्वर के अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए दी गयीं तीनों युक्तियों को अपने तर्क के आधार पर खण्डन करते हैं और यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि ईश्वर के अस्तित्व को तार्किक युक्तियों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता है। वे कहते हैं कि ईश्वर, आत्मा एवं जगत प्रज्ञा के प्रत्यय हैं जो वास्तविक न होकर संकल्पना मात्र हैं। ये वास्तविक सत्ता या ज्ञान के विषय नहीं हैं। प्रामाणिक ज्ञान केवल व्यावहारिक जगत की ही हो सकता है। प्रज्ञा के प्रत्ययों को तर्क

के आधार पर सिद्ध या असिद्ध नहीं किया जा सकता है। जो बुद्धि से परे है वह ज्ञान का विषय न होकर आस्था (Faith) का विषय है।

काण्ट कहते हैं कि यद्यपि ईश्वर को मानवीय संरचना के अन्तर्गत ज्ञान का विषय नही बनाया जा सकता है और न इसके अस्तित्व को प्रमाणित किया जा सकता है तथापि नैतिक नियमों की रक्षा के लिए ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकार करना अनिवार्य है। यहाँ काण्ट प्रज्ञा के प्रत्यय के रुप में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार न करके अन्तरात्मा के आधार पर ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। वे ईश्वरीय अस्तित्व को नैतिकता की पूर्वमान्यता के रूप में स्वीकार करते हैं। ईश्वर नैतिक जीवन की आधारशिला है। इस प्रकार काण्ट तार्किक दृष्टि से अज्ञेयवादी होते हुए भी नैतिक दृष्टि से ईश्वरवादी हैं क्योंकि वे ईश्वर में आस्था रखते हैं। वे ईश्वरीय अस्तित्व को सिद्ध करने वाली तार्किक युक्तियों का खण्डन कर स्वयं ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए नैतिक युक्ति का प्रतिपादन करते हैं वे कहते हैं कि आस्था के क्षेत्र में बुद्धि का हस्तक्षेप अनावश्यक है।

20.3 नैतिक युक्ति (Ethical Argument) –

नैतिक युक्ति के तहत काण्ट नैतिक नियमों की महत्ता एवं वस्तुनिष्ठता के आधार के रूप में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करते हैं। रैशडेल एवं मार्टिन्यू ने भी इस युक्ति का समर्थन किया है। वे कहते हैं कि भौतिक नियमों की महत्ता के लिए ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकार करना आवश्यक है क्योंकि नैतिक नियमों का आधार ईश्वर है। ईश्वर के अभाव में नैतिक नियम स्वार्थ के दलदल में फँस जायेंगे।

काण्ट कहते हैं कि मनुष्य को निरपेक्ष आदेश एवं कर्तव्य की चेतना से प्रेरित होकर कर्म करने चाहिए। किन्तु शुभ संकल्प की उत्पत्ति तभी होगी जब कर्म के सापेक्ष आनन्द का भी समावेश हो। आनन्द के समावेश के लिए ईश्वर को मानना आवश्यक है। इसलिए काण्ट नैतिकता की पूर्वमान्यता के रूप में ईश्वर को स्वीकार करते हैं। पुनः काण्ट कहते हैं कि अन्तश्चेतना के स्रोत के रूप में ईश्वर को स्वीकार करना उचित है अन्तश्चेतना ईश्वर की ध्वनि है।

काण्ट ईश्वर में चार गुणों को स्वीकार करते हैं जो इस प्रकार हैं–

(1) दृष्टान्तमूलक गुण– इसके अनुसार ईश्वर सभी मनुष्यों का उसी प्रकार पालन–पोषण करता है, जिस प्रकार एक पिता अपनी संतान का करता है।

(2) औपचारिक गुण जैसे सर्वज्ञता।

(3) निषेधात्मक गुण–इसके अनुसार ईश्वर में दुर्गुणों का अभाव है।

(4) नैतिक गुण–ईश्वर नैतिक गुणों से युक्त है। जैसे–न्यायी, सत्यनिष्ठ, पूर्ण शुभ इत्यादि। इन गुणों में नैतिक गुण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वर के बारे में काण्ट का मत अज्ञेयवाद और ईश्वरवाद दोनो है। वइ अपने विश्वास में और नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में ईश्वरवादी हैं। अपने तर्क और 'शुद्ध बुद्धि की आलोचना' में अज्ञेयवादी हैं। वह तर्कतः अज्ञेयवादी हैं और श्रद्धा के बल पर ईश्वरवादी हैं। उन्होंने तर्क और श्रद्धा का समन्वय किया है।

20.4 काण्ट की नैतिक युक्ति के विरुद्ध आपत्तियाँ– काण्ट स्वयं ईश्वरीय अस्तित्व को प्रमाणित करने वाली परम्परागत युक्तियों का खण्डन करने के उपरान्त स्वयं नैतिक युक्ति के द्वारा ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करने है। किन्तु आलोचक काण्ट की नैतिक युक्ति के विरुद्ध आपात्तियाँ करते हैं–

(1) आलोचकों के अनुसार नैतिकता का उद्‌भव एवं विकास समाज में होता है। समाज धर्म से कई अधिक प्राचीन अवधारणा है जबकि ईश्वर धर्म के अंतर्गत स्वीकार्य अवधारणा है। अतः नैतिक नियमों के आधार के रूप में ईश्वर को मानना आवश्यक नही है। नैतिक नियम वस्तुतः समाज में रहने वाले मानव के आचरण को नियमित करते हैं।

(2) यदि नैतिक नियमों को ईश्वरीय माना जायेगा तो हम ईश्वरीय आदेश (नैतिक नियम) को नहीं जान पायेंगे क्योंकि ईश्वर इंद्रियानुभव से परे है। इस प्रकार नैतिक नियमों का निर्धारण नहीं कर पायेंगे। श्रुतियों के माध्यम से भी ईश्वरीय आदेश को जानने का प्रयास फलीभूत नहीं होगा क्योंकि विभिन्न श्रुतियों में परस्पर भिन्नता एवं विरोध पाया जाता है।

(3) काण्ट ने शुभ संकल्प की उत्पत्ति के लिए ईश्वरीय अस्तित्व को आवश्यक माना है, जो कि एक प्रकार का विश्वास है और विश्वास सदैव सत्य नहीं होता है।

(4) काण्ट ने अन्तश्चेतना का स्रोत ईश्वर को माना है जबकि अन्तश्चेतना का स्रोत ईश्वर न होकर समाज है। हम जिस समाज में रहते हैं उसी समाज की मान्यताएं ईश्वर की ध्वनि प्रतीत होती है। यदि अन्तश्चेतना का स्रोत ईश्वर होता तो सभी की ध्वनि एक जैसी होती किन्तु ऐसा नहीं होता है। यथा हिन्दू समाज में रहने वाले मनुष्य की अन्तश्चेतना मूर्ति पूजा की पक्षधर होती है जबकि मुस्लिम समाज में रहने वाले व्यक्ति की अन्तश्चेतना मूर्ति पूजा विरोधी होती है।

20.5 निष्कर्ष– ईश्वरमीमांसा में ईश्वर की संकल्पना को वास्तविक सत्ता के रूप में स्थापित करने के लिए दी गयी युक्तियाँ काण्ट के विस्थापक तर्कों के समक्ष अपना प्रभाव खो देती हैं। ईश्वर के इंद्रिय संवेदनों के अभाव में यह पारमार्थिक सत्ता हो जाता है जिसके विषय में बुद्धि एवं भाषा के द्वारा किसी प्रकार का निर्णय निगमित नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः बुद्धि के द्वारा न तो ईश्वर की खण्डन किया जा सकता है और ना ही ईश्वरीय अस्तित्व की स्थापना की जा सकती है। जब प्रज्ञा बुद्धि– विकल्पों का अनुचित प्रयोग कर ईश्वरीय अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास करती तो ईश्वर–मीमांसा के तर्क अन्तर्विरोधों से ग्रस्त हो जाते हैं, जिन्हें व्याघात (Contradiction) कहा जाता है। ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए दी गयी युक्तियों को एक–दूसरे की पूरक कहा जा सकता है। धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से इन तर्कों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसी को ध्यान में रखकर काण्ट अन्ततः नैतिकता की पूर्वमान्यता के रूप ईश्वरीय अस्तित्व को स्वीकार कर लेते हैं।

20.6 शब्दावली

(1) व्याघात – एक–दूसरे के विपरीत।

(2) संकल्प – बुद्धि के द्वारा धारणा बनाना।

20.7 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न –

(1) ईश्वरीय अस्तित्व सिद्धि हेतु युक्तियों की आवश्यकता क्यों है?

(2) प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति क्या है?

(3) सृष्टि वैज्ञानिक युक्ति को स्पष्ट करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(1) प्रत्यय सत्तामूलक युक्ति को परिभाषित करते हुए इसके खण्डन हेतु काण्ट द्वारा प्रस्तुत तर्कों को स्पष्ट करें।

(2) भौतिक–धार्मिक युक्ति का काण्ट किस प्रकार वर्णन करते हैं, सविस्तार उत्तर दें।

(3) ईश्वरीय अस्तित्व की सिध्दि के लिए काण्ट द्वारा दी गयी नैतिक युक्ति की विवेचना करें।

20.8 उपयोगी पुस्तकें

(1) पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव एवं विकास– हरिशंकर उपाध्याय

(2) सामान्य धर्म दर्शन एवं दार्शनिक विश्लेषण– याकूब मसीह

(3) धर्म दर्शन की मूल समस्याएं – वेद प्रकाश वर्मा

(4) धर्म दर्शन– ऋषि कान्त पाण्डेय

****